आगमधरसूरि

-: प्रकाशक :-

श्री जैन पुस्तक प्रचारक संस्था,

गोपीपुरा, सूरत.

ध्यानस्थ-स्वर्गत

आगमोद्धारक आचार्यदेवश्री

आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाराजश्रीके

जीवनमें घटित अनेक प्रसंगों की जानकारी

तथा

मुख्य प्रसंगों की प्रतिकृतियों सहित

आगमधर-सूरि

नामक ग्रंथ

विक्रम संवत् २००४ माघ शुक्ला ३ शुक्रवार के रोज

सूरत के श्री वर्द्धमान जैन ताम्रपत्र-आगममन्दिर की

पुज्य श्री के वरद करकमलों द्वारा

प्रतिष्ठा को २५ वर्ष संपूर्ण होने के

उपलक्ष में

आज विक्रम संवत् २०२९ माघ शुक्ला ३ मंगलवार के

मंगल प्रभात में

प्रकाशित हो रहा है।

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः

आगमोद्धारक-संग्रह : २८

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

आगमधर - सूरि

मूल ले०-पू० क्षमासागरजी महाराज

अनुवादक :- प्रो. बाबूलाल टी. परमार एम. ए; साहित्यरत्न
एम. टी. बी. आर्ट्स् कोलेज, सूरत.

: प्रकाशक :
श्री जैन-पुस्तक प्रचारक-संस्था गोपीपुरा, सुरत.

: प्रकाशक :

झवेरी शांतिचंद छगनभाई

श्री जैन पुस्तक प्रचारक संस्था

गोपीपुरा, सूरत.

प्रतियां ५००] प्रथम संस्करण [मूल्य १०-००

विक्रम संवत् २०२९] वीर संवत् २४९९ [आगमोद्धारक संवत् २३

: प्राप्तिस्थान :

जैन आनन्द पुस्तकालय

गोपीपुरा, सूरत.

: मुद्रक :

वसंतलाल रामलाल शाह

प्रगति मुद्रणालय,

खपाटिया चकला, सूरत.

आगमोद्धारक आनंदसागर सूरीश्वरजी महाराज

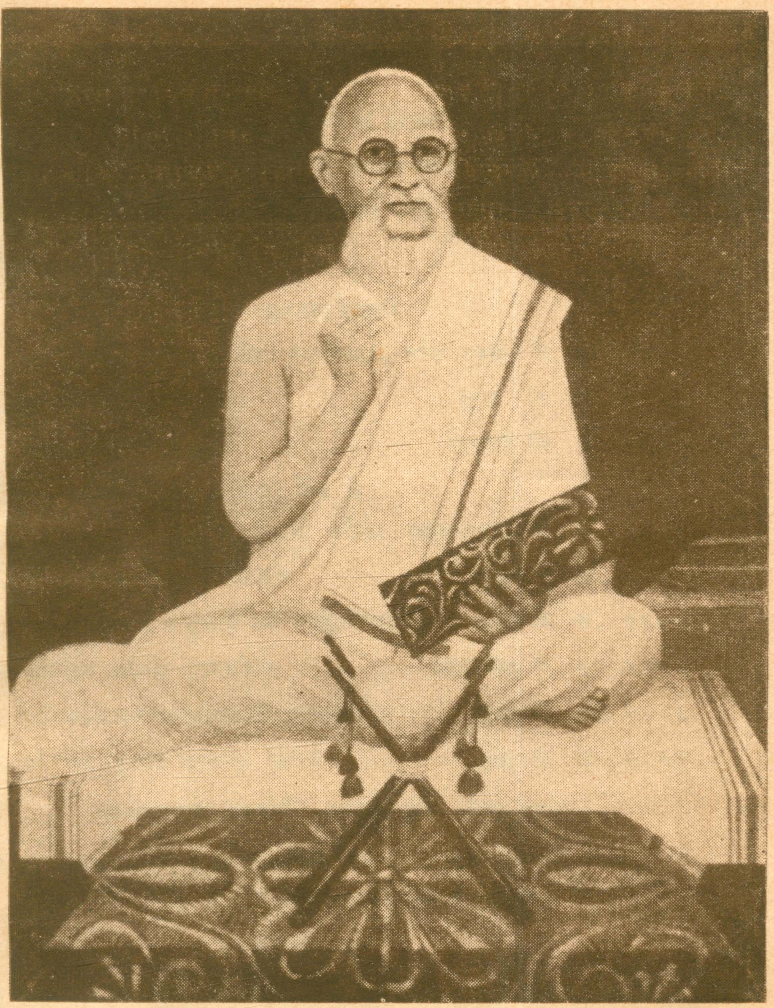

जन्म : विक्रम सं. १९३१ आषाढ वदी ०)) कपडवंज
दीक्षा : वि. सं. १९४७ माघ सुदी ५ लींबडी
पंन्यास पद : वि. सं. १९६० आषाढ सुदी १३ अहमदाबाद
आचार्य पद : वि. सं. : १९७४ वैशाख सुदी १० सुरत
निर्वाण : (स्वर्गवास) वि. सं. २००६ वैशाख वदी ५ शनिवार सुरत,

भूमिका

उद्देश्य, रहस्य, रूपरेखादि व्यक्त करनेवाली भूमिका ग्रंथ की झांकी है तथा परंपरा से सभी लघु-गुरु ग्रंथों में होती है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक, नैबंधिक, जीवनचरित्र, उपन्यास नाटक आदि तथा वैद्यकीय, ज्योतिषिक, नैतिक या धार्मिक-किसी भी प्रकार के ग्रंथ पढ़ने से पहले अधिकतर भूमिका पढ़ने से ग्रंथ का विषय-दर्शन होता है।

'श्री आगमधर-सूरि' नामक इस ग्रंथ में पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेवश्री **आनंदसागरसूरीश्वरजी** महाराज का संक्षिप्त जीवनचरित्र है। इस ग्रन्थ को पढ़ने में सहायक हो इस हेतुपूर्वक पूज्य आचार्यदेवेशका

संक्षिप्त परिचय

पूज्य श्री मन वचन तथा काया के योगत्रय से श्रेष्ठ जैनागम के प्रकाशन में सदा कार्यरत रहते थे। आप योग तथा अयोग (योगायोग) के विवेक में निपुण, गांभीर्य गुणगौरवयुक्त आगमोद्धारक बिरुद धारण करनेवाले थे। आपने इस दुषमकाल में (कठिनकालमें) स्वयं में महानाद शब्द को सत्य सिद्ध किया है। वर्तमानयुग में अर्धपद्मासनावस्था में निर्वाण प्राप्त करनेवाले परम पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाराज इस तरह अपने कार्यों से जगतप्रसिद्ध हैं, फिर भी आपका परिचय दिया जा रहा है।

आप जैन वाङ्मयका उत्कर्ष साधने में तथा सिद्ध करने में अविरत कार्यप्रवृत्त रहते थे। उसी तरह पूर्वाचार्यों की प्रौढ़कृति का पठन-पाठन तथा संपादन करने में तल्लीन रहते थे। आपने विविध विषयों से संबधित छोटी-बड़ी अनेक कृतियाँ रची हैं। आपने जैन

जनता के प्राणस्वरूप आगमों की सुरक्षा के लिए उन्हें भारतभर में सुप्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र तथा सूर्यपूर में श्रमणभगवान महावीर परमात्मा के २५०० वर्ष के शासनकाल में अभूतपूर्व श्री वर्धमान जैन आगममंदिर तथा श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्रागम मंदिर का निर्माण कर उनमें क्रमशः शिलोत्कीर्ण तथा ताम्रपत्रारूढ करवाया। आगम-भगवान जिनेश्वर की वाणी-इस कलिकाल में भी जिनेश्वर भगवान के विरहकाल में संसारसमुद्र पार करने में नौका समान सहायक है। सुदेव-सुगुरु तथा सुधर्मरूपरत्नत्रयी की अखंड आराधना के लिये आगम अति आवश्यक हैं। यही आगम प्राचीन काल में कंठस्थ रहते थे, (भद्रबाहुस्वामीकी प्रतिकृति देखिये) महान शक्तिशाली गीतार्थ आचार्य भगवान तथा समर्थ विद्वान मुनिवर ऐसी अप्रतिम शक्ति के स्वामी थे। कालके विषम प्रवाह में पूर्वस्थिति न रहने से कालान्तर में समय के पारखी गीतार्थ पूज्य देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमणने आगमोंको लिपिबद्ध किया। (देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमणकी प्रतिकृति देखिये) ये आगम कई सदियों तक ताडपत्रों तथा हस्तलिखित पोथियों में सुरक्षित रहे। वर्तमान मुद्रणकला के युग में आगमोद्धारकजीने आगमों को संपूर्ण शुद्ध संशोधित करके अच्छे टिकाउ लेजर पेपर पर छपवाकर ४५ मूल आगमों की पेटियाँ बडे बडे शहरों में रखवायीं (आगमोद्धारकश्रीकी प्रतिकृति देखिये) आपने आगम आदि शास्त्रोंकी वाचनाएँ निम्नलिखित शहरों में दी।

पाटण	–	अमदावाद
पालीताणा	–	रतलाम
सुरत	–	कपडवंज

अनेक साधु–साध्वियोंने इन अमोल वाचनाओंका पूरा लाभ उठाया। श्री जैनानंद पुस्तकालय की ओर से अनेक छोटे–बड़े शहरों में ज्ञान-भंडार स्थापित करनेवाले आपश्रीके जीवन के धार्मिक प्रसंगोंमें से मुख्य प्रसंग निम्नानुसार हैं।

ज्ञानसंस्थाएँ

१. सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सुरत वि. सं. १९६४
२. तत्त्वबोध जैन पाठशाला सुरत वि. सं. १९६८
३. श्री आगमोदय समिति भोयणी वि. सं. १९७१
४. श्री राजनगर (अहमदाबाद) जैन श्वे. मू. धार्मिक इनामी परीक्षा अहमदाबाद वि. सं. १९७३
५. श्री जैन–आनंद पुस्तकालय सुरत वि. सं. १९७५
६. सेठ नगीनभाई मंछुभाई जैन साहित्योद्धार फंड सुरत वि. सं. १९८६
७. श्री जैन आनंद ज्ञानमंदिर जामनगर वि. सं. १९९२
८. श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी पाठशाला सुरत वि. सं. २००२
९. श्री जैन पुस्तक प्रचारक संस्था सुरत वि. सं. २००५

तीर्थयात्राके छह'री' पालते हुए भव्य संघ

वि. सं. १९६५ बंबई से अंतरीक्ष–पार्श्वनाथ सुरत निवासी स्व. संघवी अमेचंद स्वरूपचंद की ओर से

वि. सं. १९७१ पाटन से भीलडीयाजी

वि. सं. १९७६ सुरत से पालीताणा (सिद्धाचलजी) सुरत निवासी स्व. संघवी जीवनचंद नवलचंद की ओर से।

वि. सं. १९९४ जामनगर से रैवतगिरि तथा सिद्धाचलगिरि। जामनगर निवासी स्व. संघवी पोपटलाल धारसीभाई तथा स्व. संघवी चुनीलाल लक्ष्मीचंद की ओर से।

जीवनकी बाजी लगाकर तीर्थरक्षण किये

१. सम्मेत शिखरजी महातीर्थ पर बंगले का बनना रुकवाया।

२. अंतरीक्ष–पार्श्वनाथ तीर्थ में दिगंबरो के मुकदमे में कोर्टद्वारा सत्यवादी तथा विजयी घोषित हुअे।

३. उदयपुर–केशरीयाजी तीर्थमें मूलनायकजी के मंदिरपर ध्वजादंड चढ़वाकर तीर्थको तपागच्छीय जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजकों का तीर्थ सिद्ध किया।

तीर्थोद्धार

१. मांडवगढ़ महातीर्थ, २. भोपावर महातीर्थ, मालवप्रदेशमें धर्मका प्रचार तथा अनेक जिनमंदिरोंका जीर्णोद्धार करवाया।

आपश्रीने राजाओंका भी प्रतिबोधित किया

मालवप्रदेशमें शैलानानरेश दिलीपसिंहजी महाराजको प्रतिबोधित कर जीवदया का डंका बजवाया तथा समेलीया और वंचेडके राजाओंको भी प्रतिबोध किया। उसी तरह आप जैनशासन पर हुअे स्व–पर आक्रमण के प्रतिकार में सर्वप्रथम रहे। आपका सारा जीवन जैन-शासनकी सेवामें ही व्यतीत हुआ।

पालीताणामें करीब २५०० प्रतिमाजी का अंजनशलाका महोत्सव हुआ जिसमें ४०,००० चालीस हजार मानव समुदाय उमड़ पड़ा था। तेरह दिनों के इस महोत्सव काल में स्मशानघाट बंद रहा, किसीकी मृत्यु नहीं हुई। यह शासन का प्रभाव है। पूर्वभव के महा पुण्य से ही यह संभव है। सचमुच आपश्री के महान् पुण्योदय से ही ऐसा बन पाया है।

आजीवन आगमसाहित्यसेवा, संघसेवा, तीर्थसेवा तथा शासनको दीपानेवाले धार्मिक कार्य–उद्यापन, उपधान, दीक्षा, प्रतिष्ठा करवानेवाले तथा अंत समयमें पंचमकालमें अद्वितीय अंतिम आराधना करनेवाले पूज्यपाद आगमवाचनादाता, आगमपुरुषके उपदेशक, युगप्रधान सदृश, विक्रम संवत १९९९ माघ वदी २ को पालीताणास्थित आगममंदिरमें बिराजित प्रतिमाजी आदि की अंजनशलाका तथा माघ वदी ५ को प्रतिष्ठा; विक्रम संवत २००४ माघ सुदी ३ शुक्रवार को सुरतस्थित श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्रागममंदिरमें बिराजित १२० प्रतिमाजी आदिकी प्रतिष्ठा करनेवाले सुरतस्थित शेठ मंछुभाई दीपचंद की धर्मशालामें विक्रम संवत २००५ के चातुर्मास में अपना अंतसमय नजदीक जानकर अंतिम आराधना हेतु 'आराधना मार्ग' नामक ग्रंथ की रचना करनेवाले विक्रम संवत् २००६ वैशाख सुदी ५ से पंद्रह दिनो के अनशन पूर्वक अर्धपद्मासन मुद्रामें मौनावस्था में आपश्री विक्रम संवत २००६ वैशाख वदी ५ शनिवार स्टा० टा० १६–३२ (दोपहर के ४–३२) अमृत घडीमें अनन्य पट्टधर गच्छाधिपति आचार्यदेवश्री माणिक्यसागरसूरीश्वरजी महाराज के स्वमुखसे चतुर्विध संघकी उपस्थितिमें नमस्कार महामंत्र का स्मरण करते करते निर्वाण को प्राप्त हुअे।

आपश्री के बालदीक्षित शिष्य मुनि श्री अरुणोदयसागरजी म० ने वि० सं० १९९१ मिगसर सुद १४ को दीक्षा ग्रहण की उस दिनसे पूज्यश्री के जीवनपर्यंत अनुमोदनीय सेवा की।

गुरुदेवश्री आज तो हमारे बीच नही है फिर भी सुरतमें गोपीपुरामें श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्रागममंदिर आज भी आपकी स्मृतिस्वरूप है। उसके सामने सरकारी स्पेशल आर्डरसे श्री आगमोद्धारक

संस्थाकी जगह में परम पूज्य आगमोद्धारक गुरुदेवश्री के पार्थिव शरीर का अग्नि संस्कार किया गया। तथा उसी जगह पर रु. ८८,००० की लागत से बने भव्य गुरुमंदिर में परम पूज्यश्री की ध्यानस्थ दशा में प्रतिमा बिराजमान की गई है। जिनकी आज्ञा में आज ४०० से अधिक साधु-साध्वी ज्ञान-ध्यान तपस्या आदिकी आराधना कर रहे हैं ऐसे अनन्य पट्टधर गच्छाधिपति आचार्य भगवान श्री माणिक्यसागरसूरीश्वरजी म० ने १०,००० दस हजार मानव समुदाय के बीच गुरुदेवश्री की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की।

पूज्य आगमोद्धारकश्री का प्रेरणादायी जीवनचरित्र पाठकोंका मार्गदर्शक बने यही अभ्यर्थना।

विक्रम संवत २०२९ श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्र आगममंदिर प्रतिष्ठादिन माघ सुदी ३ मंगलवार, सुरत.	आ० श्री आनंदसागरसूरीश्वर- शिष्य गुणसागर

प्रकाशक की ओर से

यह हिन्दी अनुवाद कैसे प्रकाशित हुआ ?

ग्रन्थ का प्रकाशन, लेखन और अनुवाद करना अवश्य कठिन कार्य है। प्रकाशन और लेखन में एक भाषा का ज्ञान अपेक्षित होता है, परन्तु अनुवाद के लिए दो भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार की आवश्यकता होती है। जैसे यदि मूल ग्रन्थ गुजराती में हो और उसका हिन्दी में अनुवाद करना हो तो गुजराती एवं हिन्दी—दोनों भाषाओं के व्याकरण का ज्ञान, और लाक्षणिक प्रयोगों एवं अन्य विशेषताओं

के साथ अभिव्यक्ति की क्षमता अनुवादक के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त धर्मगुरु के जीवन चरित्र के अनुवादक के पास धर्म विषयक ज्ञान तथा श्रद्धा का भी योग हो तो सोने में सुगन्ध समझिये। इन सब योग्यताओं की दृष्टि से **प्राध्यापक बाबूलाल टी. परमार** एम. ए. साहित्यरत्न को सर्वथा सक्षम देखकर उन्हें 'आगमधरसूरि' (मूल गुजराती) ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का कार्य सौंपा गया। आप सूरतके एम. टी. बी. कॉलेज में पिछले सत्रह वर्षों से हिन्दी-अध्यापन का कार्य कर रहे है। आपने 'अनेकान्त व स्याद्वाद' नामक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया है और 'जैन धर्म सार' के हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवादों का शुद्धीकरण भी किया है।

'आगमधरसूरि' के प्रस्तुत अनूदित संस्करण के लिए प्राध्यापक महोदय का जितना आभार मानें उतना कम है। आपने न केवल सुव्यवस्थित, सुन्दर, परिष्कृत हिन्दी में अनुवाद किया है, अपितु उसके प्रूफ-संशोधनादि का कार्य भी पूरी लगन के साथ निभाया है। ऐसे परिश्रमजन्य तथा दीर्घ समय माँगनेवाले कार्य को आपने सर्वथा निःस्वार्थ भाव से कोई पारिश्रमिक लिए बिना सम्पन्न किया है, अतः हम आपकी त्याग भावना की हृदय से सराहना करते हैं।

प० पू० आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न—प्रखर अनुरागी वैयावृत्त्य-परायण पू० मुनिराज श्री गुणसागरजी महाराजने आगमोद्धारक संग्रह के १ से ३० ग्रन्थों को मुद्रित करवाने का भगीरथ कार्य पिछले २५ वर्षों में किया है। ग्रन्थों की सुचि निम्नानुसार है:—

१ तात्त्विक प्रश्नोत्तर सार्थ
२ उपांग प्रकीर्णक सूत्र विषयक्रम
३ पर्व–देशना (व्याख्यान)
४ श्री स्थानांगसूत्र (व्याख्यान)
५ प्रशमरति और संबन्धकारिका
६ लघुसिद्ध प्रभाव्याकरण सलघुतम-नामकोश
७ षोडशक (व्याख्यान)
८ आगमीय सूक्तावल्यादि
९ प्रज्ञापनोपांग भाग–२
१० उपदेश रत्नाकर–अनुवाद
११ नवपद माहात्म्य
१२ तात्त्विक प्रश्नोत्तराणि संस्कृत
१३ आराधनामार्ग (सभावार्थ)
१४ आचारांगसूत्र (व्याख्यान)
१५ आराधना मार्ग (गुजराती)
१६ तीर्थंकर पदवी सोपान
१७ आगमोद्धारक लेख संग्रह
१८ आगमोद्धारककी अमोघ देशना
१९ आगमोद्धारककी अमृतवाणी
२० आगमोद्धारककी अमृतदेशना
२१ नवपद माहात्म्य
२२ पर्व माहात्म्य
२३ तप और उद्यापन
२४ अष्टाह्निका माहात्म्य
२५ सागर समाधान भाग १
२६ सागर समाधान भाग २
२७ आगमधरसूरि (गुजराती)
२८ आगमधरसूरि (हिन्दी)
२९ आगमोद्धारक के वचनामृत
३० आगमोद्धारक साहित्य संग्रह

नोट :—-निम्न पुस्तकों के नंबर दुहरे हैं।

(१४) षोडशक प्रकरण भाग २, (१५) आगमोद्धारक देशना संग्रह (व्याख्यान) आगमोद्धारक वचनामृत में आगमोद्धारकसूरि ग्रन्थांक १ है उसके बदले आगमोद्धारक संग्रह नं. २९ समझें।

साथ ही, आगमोद्धारक संग्रह के मुद्रित होते हुए अनेक ग्रन्थों में शतावधानी पू० पंन्यासजी श्री लाभसागरजी महाराजने भी परिश्रम किया है। मुद्रित होते हुए प्रत्येक ग्रन्थ में पू० मुनिराजश्री अरुणोदय-

सागरजी म०, मुनिराज श्री शशिप्रभसागरजी म०, बालमुनि श्री महाबल सागरजी म० आदि ने सुन्दर सेवा दी है। उक्त सभी पूज्य मुनियों के हम अत्यन्त ऋणी हैं।

'आगमधरसूरि' ग्रन्थ में आये हुए जीवन प्रसंगों को पढ़कर चिंतन-मनन करें यही हमारी भावना है।

हम इतने ग्रन्थों का प्रकाशन करने में समर्थ हो सके उसमें मुख्यतः पू० साधु भगवन्तों तथा पू० साध्वीजी महाराजों एवं श्रावक श्राविकादि का जो हार्दिक सहयोग मिला है उसके लिए हम उन सबके अत्यन्त आभारी हैं।

विक्रम संवत् २०२९
श्री आगमोद्धारक गुरुमंदिर प्रतिष्ठादिन
माघ सुदी ३ मंगलवार
सूरत

पानाचंद साकेरचंद मद्रासी
अमरचंद रतनचंद झवेरी
शान्तिचंद छगनभाई झवेरी

*

द्रव्य-सहायकों की नामावली

५०१-०० स्व. तलकचंद नवलचंद झवेरी

आपके सुपुत्र रतनचंदभाई, पुत्रवधू रमिलाबहन और पौत्र रमेशभाई, सुरेशभाई और दिनेशभाई इस प्रकाशनमें प्रथम द्रव्य सहायक हैं किन्तु आप सौराष्ट्रमें विचरते हुए प० पू० आगमोद्धारक आचार्यश्री आनन्दसागर-सूरीश्वरजी महाराज को सबसे पहले वि० सं० १९६३ में सूरत पधारने की विनंति करनेवाले थे और साथमें श्री जैनानन्द पुस्तकालयके आधारस्तंभ झवेरी अमरचंद मूलचंद भी थे। अर्थात् पूज्यश्री के सूरत पधारनेमें प्रथम निमित्तभूत होनेसे यहाँ पर दोनों को याद करना आवश्यक है।

११०१-०० प० पू० आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागर-सूरीश्वरजी म० के बालदीक्षित शिष्य मुनिराजश्री अरुणोदयसागरजी म० के सदुपदेशसे सूरत छापरीआ शेरी बड़े उपाश्रयमें ज्ञान की आमदनीमें से।

५०१-०० सूरत (माली फलीया) साध्वीजी के उपाश्रय में ज्ञानकी आमदनीमें से फूलकोरबहन फकीरचंद नेमचंद ट्रस्ट की ओर से हा. घेलाभाई अभेचंद झवेरी।

५०१-०० शेगांव श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ। ज्ञानकी आमदनीमें से।

५०१–०० वि. सं. २०२९ महासुद ३ मंगलवार के शुभदिन सूरत में हुए पू० गणिवर्य श्री रैवतसागरजी म० की पंन्यासपदकी यादगार में और अहमदाबाद खुशालभुवन के चातुर्मास में ज्ञानकी आमदनीमें से खुशालदास गोकलदास ट्रस्ट की ओर से।

३०१–०० तीर्थाधिराज पालीताणा में वि. सं. २०२९ में मढ़ी निवासी शा. नेमचंद जीवणजी और धर्मपत्नी तारा बहनने की हुई धर्माराधना निमित्त उनकी ओरसे।

२५१–०० जामनगर निवासी सुश्रावक अमृतलाल गलालचंद झवेरी स्वकुटुंब श्रेयार्थ उनकी ओर से।

२५१–०० देवबाग जैनसंघ की ओर से।

२५१–०० सुरत निवासी, प. पू. ध्यानस्थ गुरुदेव के परम अनुरागी कान्तिलाल जेकिशनदास वखारीआ की ओर से स्वकुटुंब श्रेयार्थ।

२५१–०० विदुषी साध्वीजी श्री तिलकश्रीजी म० कि सुशिष्या सा० श्री मृगेन्द्रश्रीजी म० की शुभ प्रेरणा से।

१०१–०० बुहारी निवासी स्व. डॉ. हेमंतकुमार रतिलाल के स्मरणार्थ उनकी मातृश्री भानुबहनकी ओरसे।

५०–०० बुहारी निवासी स्व. झवेरचंद पन्नाजी शाह के स्मरणार्थ।

५०-०० बुहारी निवासी स्व. मूलीबहन पीतांबरदासके स्मरणार्थ उनकी सुपुत्री नंदनबहनकी ओरसे।

५०-०० बुहारी निवासी मणीलाल नत्थुचंद शाह की ओर से।

२५१-०० सूरत निवासी स्व. कांतिलाल साकेरचंद मद्रासी के स्मरणार्थ उनकी धर्मपत्नी लीलुबहन, सुपुत्र नवीनभाई, सुपुत्री कुमुदबहन तथा पुत्रवधू की ओर से।

२५१-०० सूरत निवासी गुलाबचंद कस्तूरचंद चोकसी की धर्म-पत्नी रमिलाबहन और सुपुत्र निरंजनभाई की ओर से।

२५१-०० स्व. मुनिराज श्री नरेशसागरजी म० के स्मरणार्थ सूरत निवासी वीरचंद हरजीवननी कुं. की ओर से हा. मगनभाई और चंपकभाई।

२०१-०० सूरत निवासी स्व. केशरीचंद मगनलाल लाकडावालाकी धर्मपत्नी मंजुलाबहन और अग्रज शाह फकीरचंद मगनलाल की ओर से।

१०१-०० समेत शिखर तीर्थोद्धारिका स्व. विदुषी सा. श्री रंजन-श्रीजी म. की शिष्या विदुषी सा. श्री प्रवीणश्रीजी म. की शुभ प्रेरणा से।

१०१-०० विदुषी सा. श्री निरुपमाश्रीजी की शुभ प्रेरणासे अहमदाबाद जैन सोसायटी के श्राविकाओं के उपाश्रय में ज्ञान की आमदनीमें से।

१०१-०० सूरत निवासी खीमचंद उत्तमचंद कापडीआ और उनकी धर्मपत्नी जशवंती बहन की ओर से।

१००-०० *जामनगर निवासी सेवाभावी सद्गृहस्थ की ओर से।*

विषयानुक्रम

पृष्ठ	विषय
१	अध्याय
१	महापुरुष का शैशवकाल ।
२	जन्म ।
३	अक्षरारम्भ ।
४	गेंद-बल्ले का खेल ।
५	दर्द और उसका दफन ।
६	ज्ञान और तत्वज्ञान
२	अध्याय वैवाहिक जीवन
७	विवाह का बखेडा ।
८	मनोमंथन ।
८	मातापिता से अनुनय ।
९	हेमू की हार ।
९	राग में वैराग्य ।
११	भाग्यशाली रात की बात ।
३	अध्याय
१३	राजनगर की ओर ।
१४	पिताजी का मनोमन्थन ।
१५	रास्तेमें बातचीत ।
१६	श्री गुरुचरणमें ।
१७	हेमचन्द्रकी असफलता ।
१८	दीक्षा की प्रतिज्ञा ।
१९	गाँव की गोदमें ।
१९	पिताकी भावना ।
२१	आनन्द का उदधि ।
२१	माता की ममता ।
२२	हेमचन्द्र का उत्तर ।
४	अध्याय
२३	सिंह स्वतन्त्र हो गया परन्तु ।
२३	बाह्य मनका उपद्रव ।
२४	अन्तरात्मा की ध्वनि ।
२५	अन्धकारमय प्रभात ।
२६	बातका बतंगड ।
२७	सौराष्ट्रमें संयम ।
२८	उपसर्गों का आरम्भ ।
२९	राज्याज्ञा ।
२९	राज्याज्ञा का उत्तर ।
३०	दूसरी राज्याज्ञा ।
३१	स्पष्ट वक्ता ।
३२	त्यागी से रागी ।
३२	कंठे (आभूषण-विशेष) की चाह ।

पृष्ठ	विषय
३३	आभूषण आया अथवा गया ? ।
३४	धर्मबन्धु का संकेत ।
५	अध्याय संयम और ज्ञान ।
३५	गुरु के चरणों में ।
३५	पुत्र के मार्ग पर पिता ।
३५	मगनभाई के मनोरथ ।
३६	भावना सफल हुई ।
३६	विहार और महाविहार ।
३७	अध्ययन में संकट ।
३९	छत्र छिन गया ।
३९	मरुधर की ओर ।
४०	पालीमें पदार्पण ।
४३	प्रभावकता की छाप ।
४३	आगम-अध्ययन विषयक स्वप्न ।
४४	वाचना विधि ।
६	अध्याय पंन्यास-पद ।
४७	अहमदाबादमें ।
४७	अमोघ—देशना (उपदेश)
४९	विहार ।
५०	पेथापुर—परिषद ।
५०	व्याख्यान ।

पृष्ठ	विषय
५१	कपडवंज की ओर ।
५२	विदा समय की देशना ।
७	अध्याय
५४	सूरत शहर में ।
५५	स्वागतम् ।
५६	चैत्य परिपाटी ।
५६	निर्ग्रन्थ के द्वारा ग्रन्थोद्धार ।
५८	मुनीश्वर की भावना ।
५९	आगम-ग्रन्थोद्धार की बात ।
६०	एक लाख रुपये ।
६१	आगमोद्धारक ।
८	अध्याय
६३	मोहमयी में निर्मोही ?
६३	मोहमयी ।
६४	लालबाग ।
६४	शिखरजी आन्दोलन ।
६६	सिंहगर्जना ।
९	अध्याय
६९	अन्तरिक्षजी के किनारे ।
६९	कहाँ जा रहे थे ।
७०	दिगंबरों का दंगल ।

पृष्ठ	विषय
७१	उदारता का उदधि ।
७२	न्यायाधीश सेवक बन गये।
७३	धैर्य की चरम सीमा ।
७४	न्यायालय का नेक निर्णय।
७५	आनन्द!आनन्द !! आनन्द !!! ।
१०	अध्याय
७६	आगम-वाचनाएँ ।
७६	अकाल ।
७७	पुनः पनपा ।
७८	पुनः स्थापना ।
११	अध्याय आचार्य पदवी ।
८१	सूरतमें सूरिपद ।
८२	रथ-यात्रा ।
८४	पदवी-प्रदान ।
८७	आशीर्वचन ।
८८	आशीर्वचन का उत्तर
८९	अनाथों के नाथ।
९०	पुस्तकें और पुस्तकालय ।
९२	मध्य भारत के शैलाना नरेशको प्रतिबोध-मालवा कीं ओर ।
९४	पूर्व भारत, उत्तर प्रदेश में प्रयाण ।
९४	हिंदु विश्व-विद्यालय में ।
९६	बंगाल विहार ।
९७	समाचारों का सार ।
९८	कलकत्ते में प्रवेश ।
९८	जैन हिन्दी साहित्य ।
९९	मुर्शिदाबाद का सौभाग्य ।
१००	एक भव्य दीक्षा-महोत्सव !
१०१	संघ का आनंद ।
१०२	वर्षीदान-यात्रा ।
१०२	विहार ।
१३	अध्याय
१०४	दिगंबरों का उपद्रव ।
१०५	गुजरात की भूमि पर ।
१०५	विचित्र हवा ।
१०६	संस्थात्रयम् ।
१०७	नाटक न टिका ।
१४	अध्याय
१०९	रक्षक से भक्षक ।
१०९	राजा के अराजक विचार !

पृष्ठ विषय

११० आगमोद्धारकश्री का समझाना ।

१११ निष्ठुर उत्तर ।

१११ यात्रा-बन्द का ऐलान ।

११२ न्यायालय का न्याय ।

११३ स्थायी निधि ।

११४ कानून हटा पर कलंक न मिटा ।

१५ अध्याय देवद्रव्यकी रक्षा ।

११५ गौरांग जाति की नीति ।

११५ भ्रांतिपूर्ण दलीलें ।

११६ प्रतिकार ।

११८ अर्पण का तात्पर्य ?

१६ अध्याय मुनि-संमेलन

१२० संमेलन का उद्देश्य ।

१२१ प्रारूप का हल ।

१२२ अहमदाबाद का हर्ष ।

१२३ नगर-प्रवेश ।

१२३ सम्मेलन ।

१२४ भंग और रंग ।

१२५ ममत्वहीनता

पृष्ठ विषय

१७ अध्याय

बडौदा रियासत का कलंक ।

१२६ नगर और नगर के राजा ।

१२७ विरोध का झंझावात

१२८ आधुनिक सभ्यता ।

१२९ समझाने के प्रयत्न ।

१२९ बालदीक्षा की उपयोगिता ।

१८ अध्याय आगम-मंदिर ।

१३३ तन्मयता ।

१३४ प्रशस्त-विषाद ।

१३५ सुप्रभातम् ।

१३६ पाषाण प्रतर का विचार ।

१३६ अद्वितीय विचार ।

१३७ पवित्र भूमि ।

१३७ रेखाचित्र निर्णय ।

१३८ कार्यारंभ ।

१३९ महोत्सव का प्रारंभ ।

१४० अयोध्यानगरी की रचना

१४० कुम्भ स्थापन ।

१४१ च्यवन कल्याणक ।

१४२ जन्म कल्याणक ।

पृष्ठ	विषय

१४३ विवाह-विधि और राज्याभिषेक

१४४ दीक्षा कल्याणक।

१४५ केवलज्ञान कल्याणक और देशना

१४५ देशना।

१४६ अंजन शलाका विधि।

१४८ गद्दी–प्रतिष्ठा।

१५१ दर्शन के द्वार।

१९ अध्याय बहता पानी निर्मला

१५२ कपडवंज की ओर।

१५२ समाज का सम्मेलन।

१५३ अनासक्त योगी।

१५४ समता की सिद्धि।

१५७ बंबई की ओर।

१५७ देशना।

१५८ विदा।

१५८ बम्बई के प्रिय मेहमान।

१५९ प्रवचनों की बौछार।

१५९ मोहराजा का षड्यन्त्र।

१६० कोन्फरन्स के काले प्रस्ताव।

१६१ हितचिंतक हृदय।

१६१ विहार।

२० अध्याय सागरजी और सूरत

१६२ प्रवेशयात्रा।

१६३ गहुँली या रत्नावली?।

१६४ श्री सूरतके सकल जैन संघ से बिनती।

१६५ ताम्रपत्र–आगममंदिर।

१६६ वचन–सिद्धि।

१६७ बाजीपुरा में प्रतिष्ठा।

१६८ अप्रतिम प्रतिष्ठा।

१६९ स्थिरता।

२१ अध्याय महाप्रयाण।

१७१ कालकी गति।

१७१ कार्य अधूरे नहीं रहे।

१७२ महा व्याधि।

१७३ आराधना और भावना।

१७४ मौन में मुनिराज।

१७४ अर्धपद्मासनावस्था में अवसान

१७५ दीपक बुझ जाता है।

१७७ भयानक आघात।

१७८ अन्तिम यात्रा।

१७९ धर्मपुत्र के हाथों अग्निदाह

१८० गुरु–मंदिर।

१८२ अनुमति।

पृष्ठ विषय

१८३ अन्तिम प्रस्तावना।

१८४ गंथ समर्प्पण।

परिशिष्ट १

१ आगममन्दिर चतुर्विंशतिका।

६ श्री वर्धमानजिनागममन्दिर-प्रशस्तिः।

११ श्री वर्धमानजैनताम्रपत्रागम-मन्दिर प्रशस्तिः।

१२ गुरुवर्याष्कम्।

१३ गुरुदेवाष्टकम्।

१४ श्री आनन्दसागरसूरीश्वरस्तुत्यष्टकम्।

१६ गुणस्तुतिः।

१८ गुणस्तुतिः।

२२ स्तुत्यष्टकम्।

२३ श्री आगमोद्धारक-गुरुदेव विरहवेदनागर्भस्तुत्यष्टकम्।

२५ आगमोद्धारक-स्तवः।

२६ प्रकीर्णस्तुतयः।

पृष्ठ विषय

परिशिष्ट-२

२७ श्री संघ निमंत्रणपत्रिका। (पालीताणा)

३४ श्री संघ निमंत्रणपत्रिका। (सुरत)

परिशिष्ट-३

४० पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीजी के चातुर्मासों तथा विशिष्ट प्रसंगों की रूपरेखा।

५१ चातुर्मास-सूचि।

५२ उपधान-तप।

५३ विशिष्ट संस्थाएँ।

५४ आगमोद्धारक रचित कृतिसंदोह।

५९ मुद्रित।

६३ संपादित ग्रंथ-सूचि।

६८ आगमिक ५३ विषय।

७० आगमिक संपादित कृतियाँ।

७२ आगमोदय समितिकी स्थापना।

आगमोद्धारक आनंदसागर सूरीश्वरजी महाराज

जन्म : वि. सं. १९३१ अषाढ वदी ०)) कपडवंज

दीक्षा : वि. सं. १९४७ माघ सुदी ५, लींबडी

पंन्यास पद : वि. सं. १९६० आषाढ सुदी १३ अहमदाबाद

आचार्य पद : वि. सं. १९७४ वैशाख सुदी १० सुरत

निर्वाण : (स्वर्गवास) वि. सं. २००६ वैशाख वदी ५ सुरत

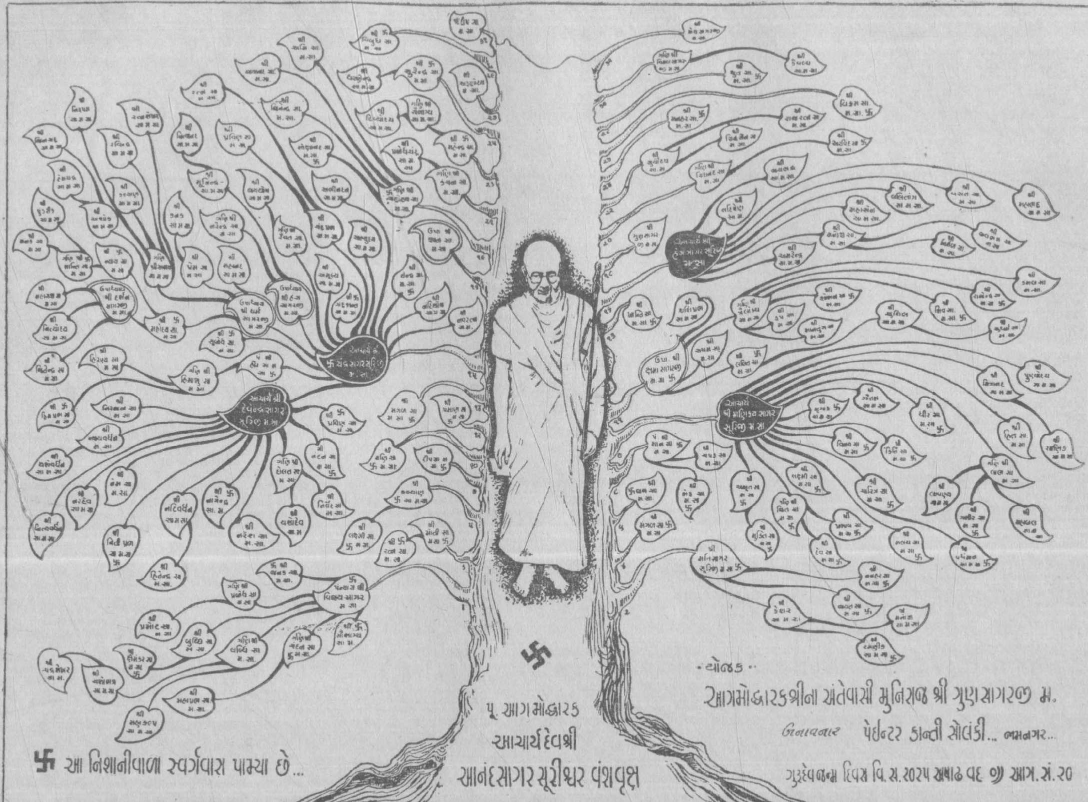
પૂ. આગમોદ્ધારક
આચાર્યદેવશ્રી
આનંદસાગર સૂરીશ્વર વંશવૃક્ષ
આ નિશાનીવાળા સ્વર્ગવાસ પામ્યા છે...
• યોજક •
આગમોદ્ધારકશ્રીના અંતેવાસી મુનિરાજ શ્રી ગુણસાગરજી મ.
બનાવનાર પેઈન્ટર કાન્તી સોલંકી... ભાવનગર...
ગુરૂદેવજન્મ દિવસ વિ.સ.૨૦૨૫ અષાઢ વદ ૭)) આગ.સં.૨૦

શૈલાના-નરેશ પ્રતિબોધક આગમોદ્ધારક આગમવ્યાખ્યાતા
આચાર્ય મહારાજ ૧૦૦૮ શ્રીમાન શ્રી આનંદસાગર સૂરીશ્વરજી
સમૃદ્ધીત શાસ્ત્ર ગ્રંથોનું શ્રી જૈન આનંદ - પુસ્તકાલય ગોપીપુરા, સુરત
સ્થાપના - વીર સંવત ૨૪૪૫ વિક્રમ સંવત ૧૯૭૫ ઓગસ્ટ સને ૧૯૧૯ ...

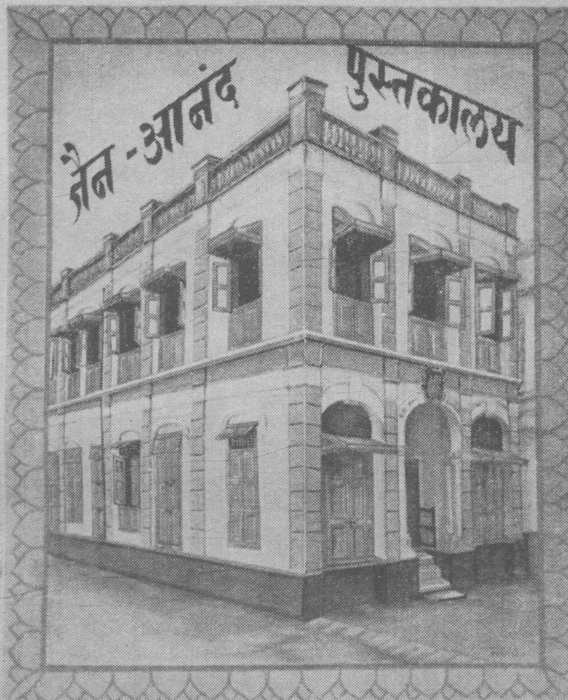

પરમ પૂજ્ય આગમોદ્ધારક આચાર્યદેવશ્રી આનંદસાગરસૂરીશ્વરજી મહારાજના શિષ્યરત્ન
મુનિરાજશ્રી અરુણોદયસાગરજી મહારાજના ઉપદેશથી
ઝવેરી ગોપાળજી કપુરચંદના પુત્ર પ્રવિણચંદ્રના શ્રેયાર્થે તેમના પુત્ર પરેશકુમાર તથા તેમના માતુશ્રી
ગંગાબેન, ભાઈ પ્રાણલાલ જૈન માનવની તરફથી ભેટ.

जैन आनंद पुस्तकालय सुरत

स्थापना : वीर सं. २४४५ वि. सं. १९७५

राजप्रतिबोध और जीवदयापट्टक

पूर्वकालीन तीन आगम – वाचनाएँ

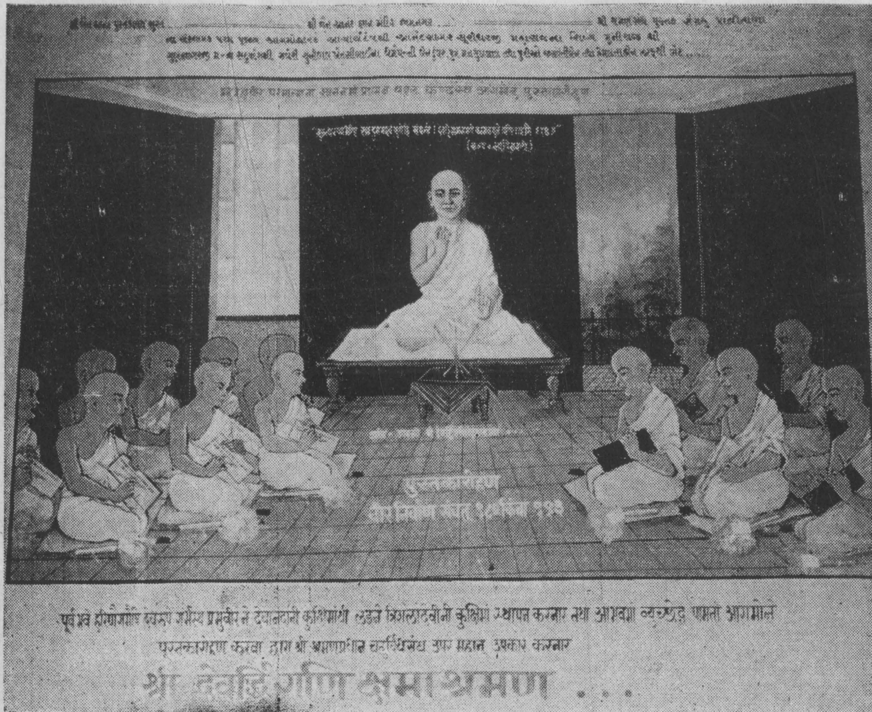

आगम पुस्तकारूढ हुए ।

वर्तमानकालीन आगम - वाचना

लाखों रुपयोंके व्यय से निर्मित अद्वितीय अदृष्टपूर्व

श्री वर्द्धमान-जैन-आगम-मंदिर

सिद्धक्षेत्र (पालीताणा)

प्रतिष्ठा : सं. १९९९ माघ वदी ५, गुरुवार

लाखों रूपयोंके व्ययसे निर्मित अभूतपूर्व

श्री वर्द्धमान-जैन-ताम्रपत्रागम-मंदिर

सुरत

प्रतिष्ठा—सं. २००४ माघ सुदी ३ शुक्रवार

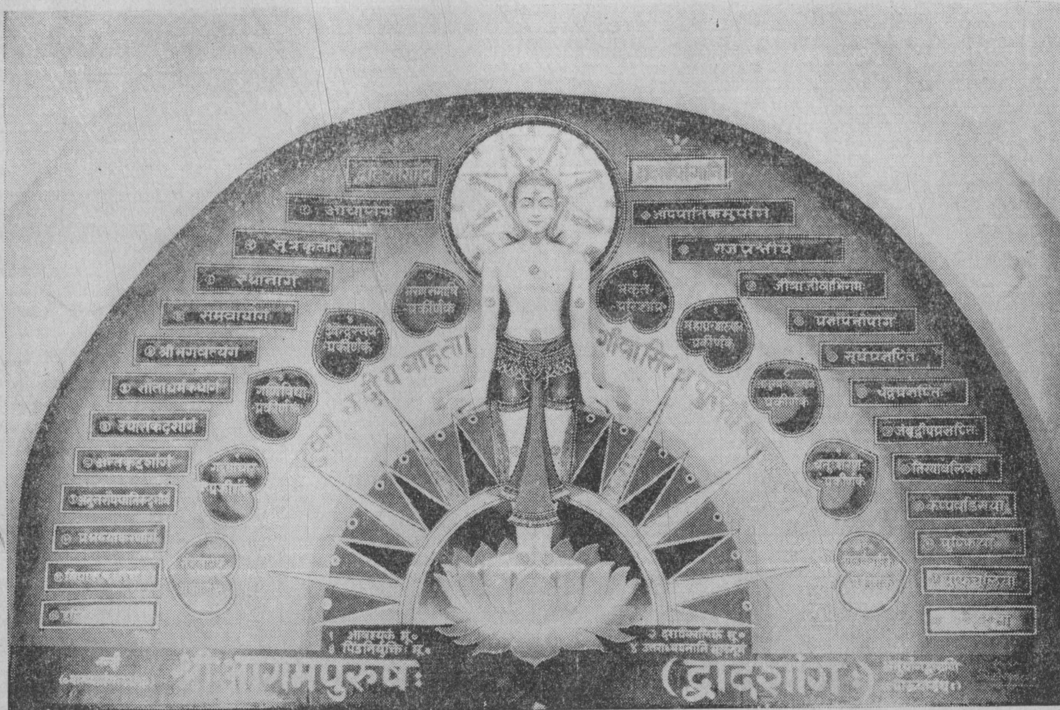

सुवर्णाक्षरी आगमपुरुष, श्री वर्द्धमान जैन ताम्रपत्रागममंदिर सुरत.

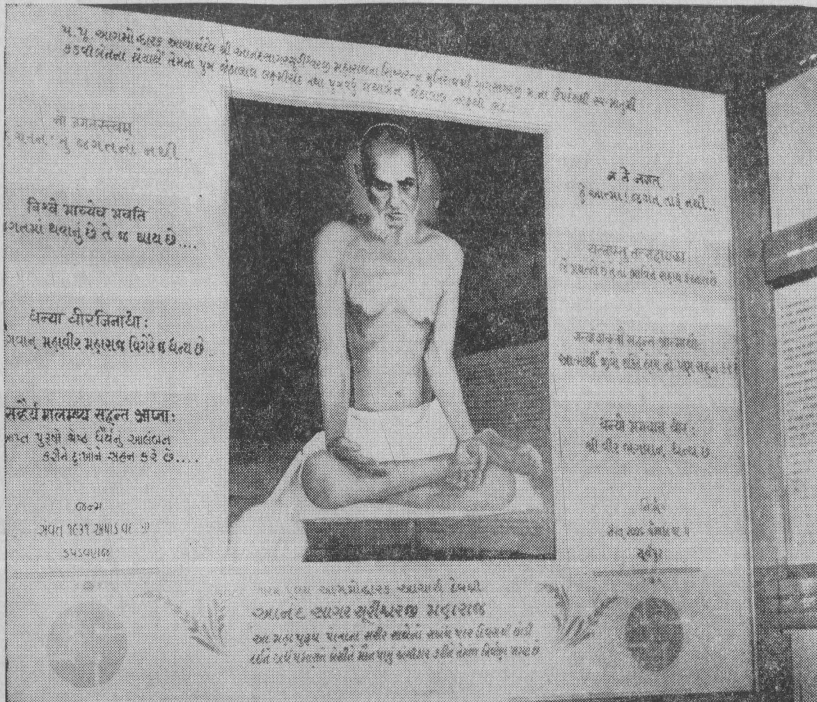

ध्यानस्थ गुरुदेव

आगमोद्धारक गुरु मंदिर, सुरत

प्रतिष्ठा : सं. २००७ माघ सुदी ३ शुक्रवार

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

आगमधर सूरि

पहला अध्याय

महापुरुष का शैशवकाल

जहाँ अनन्त उपकारी तीर्थंकर भगवान्, गणधर महाराज आदि अनेक महापुरुष हुए हैं उस दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के मध्य खंड में 'गुजरात' नामक प्रदेश है। इस गौरवमय गुजरात में देशकी शान बढ़ानेवाला एक नगर है जो अपने प्रसिद्ध वस्त्र-उद्योग के कारण 'कर्पट वाणिज्य' कहलाता था परन्तु लोगों में 'कपड़वंज' के नाम से विख्यात है।

यहाँ के जिनालय एवं जैनेतरों के मंदिर इस नगर की धर्म-भावना के साक्षी हैं। दया और दान इस नगर के विशिष्ट गुण हैं। नगरकी महिलाएँ शील और सदाचारसे अलंकृत थीं। उनमें रूप-लावण्य था परन्तु उच्छृंखलता नहीं थी।

वीतराग परमात्मा के शासन के अनुयायी अनेक समृद्ध श्रावक परिवार इस नगर की विशिष्ट शोभा एवं प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करते थे। इन में श्रेष्ठिवर्य श्री मगनभाई का नाम सम्मान-पात्र एवं लक्ष्मीका विश्रामगृह था।

श्रेष्ठिवर्य श्री मगनभाई की सुपत्नीका नाम यमुना था। त्रिवेणी संगम की यमुना नदी अनेकों को शांति और तृप्ति देती है उसी तरह यह यमुना अनेक सन्तप्त तथा अतृप्त हृदयों को शांति एवं तृप्ति प्रदान करनेवाली आर्य सन्नारी थी।

जैसे गोलकुंडा की खानको कोहिनूर हीरा दुनियाको देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था वैसे इस रत्न-प्रसविनी यमुना कों महाज्योतिर्धर पुत्ररत्न की भेंट जिनशासन कों देने का महासौभाग्य प्राप्त हुआ था। कोहिनूर हीरा जहाँ भी गया वहाँ चिंता और भय का वातावरण छा गया, उस के हेतु अनेक मनुष्यों का खून बहा और असंख्य दुष्कृत्य हुए जबकि इस पुत्ररत्नने अहिंसा-अमृतका निर्झर प्रसारित किया जिसमें अनेकानेक आत्माओं के भयंकर पाप नष्ट हो गये। इस पुत्ररत्न ने अज्ञान के अन्धकार में ज्ञानका प्रकाश किया। कोहिनूर भयदाता बना, यह पुत्ररत्न अभयदाता बना।

जन्म

भगवान् महावीर के निर्वाण को २४०१ वर्ष हुए थे। आषाढ़की मेघ-घटाएँ आकाशमें गर्जना कर रही थीं मानों जगतको पुत्ररत्न की बधाई देती हों।

[बिजलियाँ प्रकाश पुंज बिखेर रही थीं मानो पुत्ररत्न के जन्मकी खुशीमें दीपमाला जलाती हों। सूर्य और चन्द्र भी आकाश में एक स्थल पर आ मिले थे। वे विचार मग्न थे और धीरे धीरे बात कर रहे थे कि एक ज्योतिर्धर का जन्म होने ही वाला है; यह बालक कहीं हमारे प्रकाशको निस्तेज तो नहीं कर देगा? शीतल, मन्द आह्लादक

पवन चल रहा था, धरती शस्यश्यामला बन कर मानव-हृदयको आनन्दित कर रही थी।]

ऐसे मंगलमय वातावरण में अमावास्या की रात्रि के मध्यकाल में रत्नकुक्षी यमुनाने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया।

जन्म के शुभ अवसर पर श्रेष्ठिवर्य श्री मगनभाईने उचित उत्सव मनाया, आंगी करवाई, और दान दिया। शुभ मुहुर्त पर पुत्ररत्नका नामकरण-संस्कार किया गया। सबकी उपस्थिति में हर्षमय वातावरणमें 'हेमचन्द्र' नाम दिया गया। ज्योतिषयोंने ज्योतिष देखकर भविष्यवाणी की कि 'यह बालक युगावतार महापुरुष होगा।'

अक्षरारम्भ

द्वितीया का चन्द्र जैसे दिन दिन बढ़ता जाता है वैसे यह हेमचंद्र भी दिन दिन बढ़ रहा है। उसके शरीर, रूप, रंग, आकृति, ज्ञान, वृद्धि, सत्त्व, आदि बाह्य एवं आन्तरिक विभूति की वृद्धि हो रही है। धीरता और वीरता-ये दो गुण तो हेमचन्द्र के प्रिय मित्र, सच्चे साथी और उन्नति करनेवाले थे।

मातापिता के स्नेहपूर्ण लालनपालन में हेमचन्द्र पाँच वर्ष का हुआ। इतनी छोटी उम्र में ही वह सारे मुहल्ले और जैनकुल का प्रिय बन गया। मातापिताने शुभ दिन देख कर उसे ज्ञानाभ्यास के लिये स्कूलमें दाखिल किया। पुण्यवान् हेमचन्द्रने जिस रोज स्कूलमें प्रवेश किया उस रोज अध्यापकों को खुश किया गया और विद्यार्थियों के मुँह मीठे करवाये गये।

हेमचंद्र में अपूर्व प्रतिभा थी; ज्ञान-प्राप्ति की अभीप्सा थी। उसमें अद्भुत निडरता थी। करुणा और वात्सल्य कूट कूट कर भरे

हुए थे। उसमें कोमलता एवं कठोरताका भी समुचित समावेश था। उसमें गजब का सत्त्व था, भय कों भी उसके पास आने में भय लगता था।

उसका ज्ञान दिन ब दिन बढ़ता गया, उसकी पढ़ाई देख कर शिक्षक भी विचार में पड़ जाते। वे दूसरे बालकों को इस बालक से पढ़वाते। इस तरह हेमचंद्र एक साथ विद्यार्थीपद एवं गुरुपद–दोनों पदों का उपभोग कर रहा था।

गेंद–बल्ले का खेल

बाल्यावस्था तो खेलकूदप्रिय होती ही है! एक दिन शामको स्कूल की पढ़ाई के बाद सब लड़के मुहल्ले में गेंद और बल्ले का खेल खेल रहे थे। वे सब खेलमें इतने तल्लीन थे कि उन्हे स्थान और समयका ध्यान ही नहीं रहा। अचानक एक लड़के के द्वारा गेंद सरकारी दीये से जा टकराया। दीये के बाहरका काँच गेंदके आघात से चूर चूर हो गया। खेलनेवाले सभी विद्यार्थी तुरन्त भाग खडे हुए, न गया धीरज की मूर्ति सा केवल एक हेमचन्द्र।

थोड़ी ही देर में दीर्घकाय लाठीधारी नगररक्षक सिपाही वहाँ आ पहुँचा। उसने भयानक अट्टहास्य करते हुए कहा, 'क्यों रे लड़के! इस दिये का काँच तूने क्यों फोड़ डाला?' नगररक्षक सिपाही तो बस हेमचन्द्र को ही अपराधी मान कर डाँटने फटकारने लगा, तब हेमचन्द्रने कहा, 'मैंने सरकारी दीया या उसका बाहरी आवरण तोड़ा ही नहीं है। मुझे आप से डरने की कोई जरूरत नहीं है। मेरा कोई कसूर नहीं, अतः आप मेरा कुछ नहीं कर सकते।'

बालकका वीरोचित और सभ्यतापूर्ण उत्तर सुनकर सिपाही हतप्रभ हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि इस लड़केके सामने मेरी एक न

चलेगी। यह तो कोई निराला ही मालूम होता है। इसे छेड़कर कहीं मैं ही मुसीबत में फँस जाऊँगा। यह सोचकर वह धन्यवाद देकर चला गया।

दर्द और उसका दफ़न

विद्याभ्यास एवं बालक्रीडा में समय बीत रहा था। इस अरसे में एक बार हेमचंद्र के गले पर एक मूजी किस्मका फोड़ा उभर आया। यह बालक कई बातों में जैसा आनका पक्का था, वैसा यह फोड़ा भी जिद्दी निकला। माँ बापने बहुत इलाज करवाया पर वह न मिटा। मिट जाय तो वह जिद्दी फोड़ा ही क्या? बहुत दर्द होता था, परन्तु हेमचन्द्र सहनशीलताका अगाध समुद्र था। यह असह्य वेदना उसके ज्ञानाभ्यास तथा खेलकूदमें विघ्न डालना चाहती थी, परन्तु सहनशीलता उसे विघ्न डालने से रोकती थी।

वृन्दावन का कन्हैया एक दिन जब मचल गया और उसने बलराम को हैरान कर दिया तो यशोदाने उसे एक थप्पड़ मार कर और धमकाकर शान्त किया था वैसे ही यह हेमू भी एक दिन नटखटपन पर उतर आया और अपने बड़े भाई–जो उम्र में दो वर्ष बड़े थे–मणिभाई को हैरान कर छोड़ा, तब यमुनामाताने उसके गाल पर थप्पड़ मारने के लिए हाथ उठाया। चपल हेमूने मुँह घुमा लिया परन्तु ममतामयी माता का हाथ गले के उक्त फोड़े पर पड़ा। फोड़ा फूट गया और दर्द बहुत बढ़ गया परन्तु इस पराक्रमी हेमूकी आँखों से आँसू का एक बूँद भी न निकला। फोड़े में से मवाद वगैरह निकाल कर बाह्य व्रणशामक दवाई लगाई गई। माताके ममतामय हाथ ने दर्द को दफ़न कर दिया–वह थप्पड़ चमत्कारमय थप्पड़ सिद्ध हुआ।

ज्ञान और तत्त्वज्ञान

व्यावहारिक ज्ञान के अध्यापक से हेमचन्द्र व्यावहारिक ज्ञान सीख रहा था, साथ ही गुरुदेवों से अध्यात्म-सम्बन्धी ज्ञान भी प्राप्त कर रहा था। उपाश्रय में या उपाश्रयके बाहर कहीं भी किसी तत्वज्ञानी या वैरागी पुरुष के आगमन के समाचार मिलते ही तुरन्त हेमू वहाँ पहुँच जाता। मौन रह कर उनकी चर्चा सुनता। कुछ पूछने की इच्छा होने पर धीरे से पूछता और यदि अच्छी तरह समझ में न आता तो 'हाँ' न कहता परन्तु पुनः समझानेकी प्रार्थना करता।

हेमू की उम्र तो अभी कुल ग्यारह वर्षकी थी परन्तु उसकी ज्ञान-पिपासा तथा तत्वजिज्ञासा प्रौढ़ों की सी थी! वह कभी कभी विचारों में ऐसा तल्लीन हो जाता था मानो पूर्वजन्म में कोई समाधि सिद्ध किया हुआ महायोगी हो!

उसकी विचार-शक्ति और तर्कशक्ति देख कर मातापिता को हर्ष हो इसमें तो आश्चर्य ही क्या! परन्तु जिन्हें भी उसकी इस शक्ति का साक्षात्कार होता वे भी आश्चर्यमुग्ध हो जाते!

*

दूसरा अध्याय

वैवाहिक जीवन

विवाह का बखेड़ा

हेमचन्द्र बारह वर्षका हुआ। उस जमाने में जिनके यहाँ छोटी उम्र में शादी हो जाती वह परिवार इज्जतदार माना जाता था। मोह में पड़े हुए मातापिता तो पलनेमें झूलते हुए शिशुको ब्याहने की लोरियाँ सुनाते और सांसारिक रंग पक्का करते थे।

यमुना माताको बारह वर्ष के हेमूकी शादी करने की अभिलाषा जगी। समृद्ध घर था ही, अतः अनेक कन्याओंके मातापिता अपनी भाग्यवती पुत्रीके विवाह की बात करने सेठ मगनभाई के घर आ चुके थे परन्तु इन्हें कोई जल्दी न थी।

माता यमुना अपने पुत्रका विवाह करने का सुख जल्दी ही देखना चाहती थी। उन्होंने अपने पति से इस विषयमें आग्रह किया। आग्रह हठाग्रह में परिणत हुआ 'किसी भी तरह हेमू की शादी शीघ्र ही होनी चाहिए' इस इच्छाने उनकी हिम्मत और भी बढ़ा दी। उन्होंने किसी तरह श्रेष्ठी मगनभाई को अपनी बात स्वीकार करने को मजबूर किया।

दोनों कुलों की शुद्धि देख कर एक भाग्यवती एवं गुणवती कन्या के साथ सगाई की गई। रुपया और नारियल स्वीकार किया गया। मिष्टान्न से सबका मन और मुँह मीठा किया गया!

मनोमंथन

हेमचंद्र, जिसके लिए यह सब हो रहा था, गहरे सोचमें पड़ गया ! मुझे इतनी छोटी उम्र में ही क्यों माया के कोमल बन्धनमें बाँधा जा रहा है ? क्या संसार में जन्म लेनेवालेको ब्याह करना ही चाहिए ! क्या जीवन का यह अनिवार्य कर्तव्य है ! क्या ब्याह के बिना सुख नहीं है ! इस गुळामी से क्या फायदा ? नहीं, मुझे यह ममता का बन्धन नहीं चाहिए ! मैं तो गगन में मुक्त विहार करनेवाले पक्षी जैसा बना रहूँगा। मैं वायु की तरह निर्बन्ध रहूँगा। मैं अपनी स्वतन्त्रता को नष्ट होने देना नहीं चाहता।

मातापिता से अनुनय

एक दिन प्रातःकाल हेमचंद्र मातापिता को नमस्कार कर मौन खड़ा रहा। मातापिताने पूछा, 'वत्स, तुम उदास क्यों हो ? कुछ कहना चाहते हो ! अब तो तुम्हारा विवाह निकट आ रहा है, उदास रहोगे तो कैसे चलेगा ? जो तुम्हारी इच्छा हो सो हमें बताओ, हम अवश्य ही तुम्हारा हित करेंगे।

हेमचन्द्रने कहा—'पिताजी ! पिताजी ! कृपया मुझे इस बन्धनमें मत डालिये। मेरा मन इस पथ पर जाने को तनिक भी उत्सुक नहीं है ! मैं इन जजीरों में बँधना नहीं चाहता। मेरी स्वतंत्रता मत छीन लीजिये ! मैं विवाह—बन्धन को नहीं निभा सकूंगा ! मेरे हृदय में त्यागी बनने की अभिलाषा है, अतः इस झंझट को नहीं सम्हाल सकूँगा। आप मेरे हितैषी हैं, मुझे शादी के बखेड़े में न डालिये।

यह बात सुनकर पिताजी तो कुछ पिघले परन्तु माताजीने कहा "पुत्र ! तुम आज्ञाकारी हो ! मैं सदा तुम्हारा भला ही चाहती हूँ !

त्याग-मार्ग तो लोहे के चने चबाने से भी अधिक कठिन है! इस सीधे चढाव पर चढ़ना तुम्हारा काम नहीं! तुम तो संसार में कुलदीपक के रूपमें शोभा पाने योग्य हो! दीक्षा-फीक्षा अपना काम नहीं, जाओ मौज करो, आनन्द में रहो!

हेमू की हार

इसके बाद माताने शादी की जल्दी मचा दी। ज्योतिषी ब्राह्मणों को बुलाया। ज्योतिष के अनुसार मांगलिक दिन निश्चित किये। कुंकुमके छींटे देकर कुंकुम पत्रिकाएं भेजी गई! अशोक के पत्तों के तोरण बांधे गये। धवल मंडप बना, विजयस्तंभ रोपा गया! ठाट बाट से बारात चढ़ी कोकिलकंठी महिलाओंने मंगलगीत गाये। सब लोग मंडपमें आये। बारह वर्षका किशोर हेमू विवाह-वेदी पर बैठा। अग्नि की साक्षी में सप्तपदी का मंत्रोच्चार प्रारम्भ हुआ। वर वधू का हस्तमिलाप (पाणिग्रहण) हुआ। अग्नि की चार प्रदक्षिणाएँ करवा कर हेमू को विवाह-सूत्र में बाँध दिया गया।

युग-प्रचलित बालविवाह की प्रथामें हेमू का होम हो गया! इतनी सारी भीड़ के सामने अकेला बेचारा क्या करे! यह भी समयकी बलिहारी है, कि भविष्यमें जो आगमोद्धारक बनने के लिए जन्मा था उस महापुरूष को बारह वर्षकी कच्ची उम्र में ही बिना सोचे समझे उसकी इच्छाके विरुद्ध विवाह की बेड़ी पहना दी गई। सुखी परिवारों में तो छोटी उम्र में ब्याह करना ऊँची खानदानी और प्रतिष्ठा का चिह्न माना जाता था!

राग में वैराग्य

जिस पुण्यवतीका हेमचन्द्र के साथ पाणिग्रहण हुआ था उस नववधू का नाम था माणेक! वरवधू घर आये, तब माता यमुना की

खुशी का पार न था! माता को ऐसा मालूम हुआ माना मेरे घर आज कल्पवृक्ष फला है, मोतियों की वृष्टि हुई है। आज मैं कृतकृत्य हो गई!

पुत्रवधू का मुख देखकर यमुनाने प्रसन्न हृदयसे आशीर्वाद दिये "बेटा! सौभाग्यवती हो, मेरे कुलदीपकको सम्हालना। अब तुम मेरे घरका माणिक बनना! यह घर, यह धन, ये आभूषण, फरनीचर सब तुम्हारा है। हम भी तुम्हारे हैं! तुम हमारी गृहलक्ष्मी हो, हमारे कुल को आलोकित करना!"

पुत्रवधू माणेकने सास के चरणों में सिर रख दिया और मधुर स्वर में विनयपूर्वक बोली "माताजी! आज से मैं आपकी तथा आपके पुत्र की दासी हूँ! आपके पुत्रकी अर्धांगिनी हूँ, तन-मन से सेवा करूँगी, आपके आशीर्वाद हमें सुखी रखेंगे?"

हर्षविह्वल माता यमुना पुत्रवधू के गुण गाते गाते कभी थकती नहीं! गाँवकी कोई सखी या स्वजन आवे तो माँ उसके सामने भी माणेककी प्रशंसा करती। यमुनाको माणेक एक देवी के समान प्रतीत हुई। माणेक भी यमुनासास की सेवा करती, ईज्जत करती, उनकी आज्ञा पालती और पैर दबाती थी। थोड़े दिनों में माणेकने घरका कामकाज भी सम्हाल लिया। ऐसी विनम्र पत्नी मिलने पर भी हेमचन्द्र आकर्षित नहीं हुआ। वह पूर्वभवका वैरागी था! इस जन्म में जबरदस्ती से नारी के पाश में डाला गया था, अतः उसे और अधिक वैराग्य होने लगा। सिंह-शावक को कैद करने पर जैसी अनुभूति होती है वैसी हेमचन्द्र को होने लगी! उसे अपनी भावना और स्वतन्त्रताका दम घुटता मालूम हुआ।

हेमचन्द्र दिन ब दिन अधिक विरक्त दिखाई देने लगा। उसके हृदयमें माणेककी ममता कोई परिवर्तन न कर सकी। वह नववधू उलझन में पड़ गई। हेमचन्द्र के पिताको इस बातकी खबर हुई, इतना ही नहीं, उसके ससुरको भी पता लग गया।

एक दिन ससुरजीने हेमचन्द्रको बुलाकर समझाया, "भाई, बड़े होकर तुम्हें अपने पिताका धन बढ़ाना है। उसकी रक्षा करनी है, मान–प्रतिष्ठा बढ़ानी है। तुम्हें अपनी पत्नी की रक्षा पालन–पोषण–संवर्धन करना है। इस तरह वैरागी बननें से नहीं चल सकता। अब सयाने हो रहे हो, तुम्हें अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।"

"मैं अपनी आत्मा के कल्याण–मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता हूँ। कोई मेरी इस भावनाको नहीं रोक सकता। मैं अपने विचारों से एक कदम भी पीछे हटना नहीं चाहता। आप लोगोंने बाल्यावस्था में मुझे विवाह बंधन में फँसा कर मुझ पर अत्याचार किया है, परन्तु मेरी भावना पर बलात्कार करनें की शक्ति आप में किसी में नहीं है। मैं अपनी वैराग्य की भावना में वज्र सा कठोर एवं पहाड़–सा अचल रहूँगा।"

हेमचन्द्रका ऐसा उत्तर सुनकर सब शान्त तो हो जाते परन्तु दिल उलझन में पड़ जाता था। फिर भी इस किशोर दम्पतीका जीवन बाह्य दृष्टि से सबको सुखशान्तिपूर्वक चलता दिखाई देता था।

भाग्यशाली रात की बात

संसार अपनी गति से चल रहा है। यह बालदम्पती भी इस प्रवाह में बह रहे हैं। एकांत में बातें होती हैं। घर के एकांत में हस्तक्षेप करने की किसे हिम्मत हो सकती है। नववधू माणेक को कई तमन्नाएं उठती हैं, परन्तु आर्य–नारी पति के सिवा किससे कहे?

पतिका वैराग्यमय व्यवहार और पिता की बातें सुन कर वह कुछ उदास हो जातीं थी, परन्तु जब उसे खयाल आता कि उसका पति एक चिन्तक ओजस्वी पुरुष है तब वह विधि का उपकार मानती और न्योछावर होती।

इस नववधू ने एक रात अपने पति से पूछा, 'स्वामि! आपको सांसारिक वासना नहीं सताती। क्या मैं पसन्द नहीं आती? मुझ में कोई कमी है? क्या मुझमें आपकी सेवा करनेकी योग्यता नहीं है? किस बात में मैंने आपको असन्तोष होने दिया है? मेरा अपराध हो सो बताइये। आप कहें सो प्रायश्चित ले कर तपस्या कर के शुद्ध बनूँगी, अपनें प्रियतम को प्रसन्न करने के लिये मैं व्रत-मनौती करूँगी, तप-जप करूँगी। कहिये प्राणनाथ! कहिये, मैं क्या करूँ?

पूर्वजन्म के वैरागी हेमचन्द्रने कहा, "माणेक, तुम्हारी बात तो सही है, परन्तु मेरा मन संसार की ओर नहीं ढलता, वासना की ओर नहीं मुड़ता। मैं वासना के दलदल में फँस कर अपनी आत्माकी बरबादी करना नहीं चाहता, साथ ही मुझे यह भी अच्छा नहीं लगता कि तुम्हारी आत्मा की बरबादी हो। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारा कोई दोष है और मैं तुमसे नाराज हूँ। मुझे संसारकी ओर सचमुच कोई आकर्षण नहीं है। मुझे जबरदस्ती ब्याह दिया गया है। आज भी मेरी आन्तरिक अभिलाषा भगवान महावीर प्रभु द्वारा निर्देशित प्रव्रज्याके पथ पर पद धरने की है। तुम भी आत्मकल्याणके पथ पर प्रयाण करो।"

दुनियाकी दृष्टि में तो हेमचंद्र और माणेकका जीवन गृहस्थ-जीवन, दाम्पत्य-जीवन बन चुका था।

❋

तीसरा अध्याय

हेमचन्द्र के बड़ भाई को पहले से ही वैराग्य था, परन्तु उस जमाने की यह तासीर थी कि छोटी उम्र के लड़कों को विवाह-बन्धन में जकड़ दिया जाता था। उनके बड़े भाई मणिलाल को भी इस बन्धन में बाँधा जा चुका था, परन्तु विधाता की इच्छा मणिभाई को सरलता से दीक्षा दिलाने की थी, और हेमचन्द्र को कठिनाइयों का सामना करवा के दीक्षा दिलाने की-वीर पुरुषका बिरुद दिलाने की थी। अतः विधाताने बड़े भाई की अर्धांगिनी को बीचमें ही दुनिया से उठा लिया। दूसरी कन्याएँ मणिभाई से ब्याह करने को तैयार थीं, परन्तु उन्होंने नहीं माना। पिताजी भी भीतर से दीक्षा दिलाने को तैयार थे, परन्तु तत्कालीन समाज इतनी छोटी उम्र में दीक्षा के विरुद्ध था। पिताकी सम्मति भी कुछ नहीं कर सकती थी, इसलिए पिताने मध्यम मार्ग अपनाया।

राजनगर की ओर

"बेटा मणिलाल! यह मेरे ध्यान में है कि तुम्हारी संयम लेने की इच्छा है। मैं तुम्हारी भावना में विघ्न डालना नहीं चाहता। मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम शासनको शोभित करो। तुम अपने आत्म-कल्याण के पथ पर गमन करो, मैं तुम्हें अन्तरसे आशीर्वाद देता हूँ। मैं यहाँ तुम्हें संयम दिलाने की स्थिति में नहीं हूँ। समाज के भीषण नागपाश में से बाहर आना मेरे लिए कठिन है। इसलिए तुम अहमदाबाद जाओ। उधर अच्छे महात्मा पुरुषको खोज कर आत्माका कल्याण करना और शासन को शोभित करना।"

इस बात की ख़बर चतुर हेमचन्द्रको लग गई। हेमचन्द्र अधिक वैरागी और अधिक उत्साही था। उसे त्यागमार्ग के प्रति अधिक आकर्षण था। बड़े भाई के अहमदाबाद जाने का समय आया तब हेमचन्द्रने पिताजी से कहा, "पिताजी, मुझे भी भाई साहब के साथ अहमदाबाद जाना है, आज्ञा दीजिये।"

पिताजी का मनोमन्थन

पिताजी को तुरन्त समझ में आ गया। मन में सोचा, यह भी त्याग के पथ परही प्रयाण करना चाहता है। मन विचारमें पड़ गया, क्या करूँ? दोनों पुत्रों को त्याग के पथ पर जाने दूँ?

मोह-विह्वल मन विचलित हो गया। उसमें से धीमी आवाज उठी—'दोनों पुत्रों को बावा बना देना है? मूर्ख! सावधान! ऐसे राजकुमार-से सुपुत्र किसी किसी को ही मिलते हैं। अरे, ऐसे पुत्रोंकी प्राप्ति के लिए कई लोग हजारों मनौतियाँ मनाते हैं। तुम्हें ऐसे सपूत मिले हैं, और तुम उन्हें साधुओंकी जमात को सौंप रहे हो! तुम अभागे हो अभागे।' परन्तु अन्तरात्माने मधुर स्वरमें कहा, 'हे पुण्यात्मा मगनलाल! तुम जगत में भाग्यशाली हो। तुम्हारे यहाँ जन्मे हुए ये दोनों पुत्र तुम्हारे कुल को आलोकित करेंगे। शासन-ज्योति प्रकटाएँगे। तुम मोहाधीन मत बनो। आत्मज्योति प्रकट करनेवाले पुत्ररत्नों के तुम पिता हो। उन्हे त्याग मार्ग पर जाने में सहायता दो। तुम धन्य हो जाओगे। तुम्हारे पुत्र गुण-गण के स्वामी बनेंगे।

हेमचन्द्र के पिताने गहरे मनोमन्थन के अन्तमें निर्णय किया—'दोनों पुत्र संयम-मार्ग भले अपनाएँ। पुत्र तो हर भव में मिलेंगे। सूअर और कुत्तेके भव में बहुत से पुत्र होते हैं, उससे क्या लाभ।

ऐसे त्यागपथ पर जाने वाले पुत्र कहाँ!' उन्होंने हेमचन्द्र को निकट बुलाकर सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—'वत्स। क्या तुम्हें भी संयम मार्ग पर चलना है? क्या तुम्हें भी आत्मस्वरूप की लगन लगी है? जाओ बेटा! तुम भी अपने बड़े भाई के साथ जाओ। मैं तुम्हारे पवित्र कार्य में अवरोध बनना नहीं चाहता। तुम अपनी आत्मा का उद्धार करना और अनेक आत्माओं के उद्धारक बनना। आज जिनशासन निस्तेज होता जा रहा है। तुम इसे पुनः जगमगाता हुआ कर दो। आज शासन की दशा देखी नहीं जाती। तुम जैसे उसका उद्धार करेंगे तो मैं भी सौभाग्य समझूँगा। मैं शासनोद्धारक पुत्रों का पिता माना जाऊँगा। जाओ पुत्र, तुम अपने भाई के साथ जाओ।''

रास्ते में बातचीत

दोनों भाई अहमदाबाद के लिए रवाना हुए। कपडवंज में कोई नहीं जानता कि वे दोनों किस कामसे जा रहे हैं! यमुना माता मानती थी कि मणिलाल का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वह आबहवा बदलने जा रहा है। लोगों का भी ऐसा ही ख़याल था। केवल पिताजी ही सच बात जानते थे।

रास्ते में बड़े भाईने हेमचन्द्र से कहा, 'भाई, यदि तुम्हारा यह ख़याल है कि मैं इलाज के लिए या आबहवा बदलने अहमदाबाद जा रहा हूँ, या थोड़े दिन आराम करने जा रहा हूँ तो तुम धोखे में हो। जबसे मैंने कपडवंज छोड़ा है तबसे मुझे पूर्ण शान्ति है। मैं परमात्मा के शासन की दीक्षा लेने के लिए निकला हूँ। मैं संसारकी दावाग्नि में जलना नहीं चाहता। तुम्हें जो जँचे सो करना। मैं अब गृहस्थ वेष में कपडवंज नहीं आऊँगा।'

हेमचन्द्र ने कहा "ज्येष्ठ भ्राता ! आप जिस राह जा रहे हैं उस राह पर जाने का तो मैंने कभीका निर्णय कर लिया है। मैं कितने ही दिनों से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मुझे संयम मिले; पंख होते तो मैं ज्ञानी गुरू के चरणों में बैठ कर संयमकी साधना कर रहा होता, परन्तु पंख न होनेसे विवश था। जो आपकी भावना है वही मेरी भी है। मैं संयमी बनूँगा, आत्मानन्दी बनूँगा।"

इस तरहका अपूर्व भावनामय वार्तालाप करते हुए दोनों भाई अहमदाबाद आ पहुँचे।

श्री गुरुचरण में

तपगच्छ–गगन–दिनमणि श्री बुद्धिविजयजी महाराजश्री के शिष्यरत्न अपूर्व संयमधर महामुनिश्री नीतिविजयजी महाराज अहमदाबाद की भूमि को पावन कर रहे थे। दोनों भाई उनके चरणकमलों के वंदनार्थ गये। दोनों भाईयोंने गुरुचरणमें स्वस्तिक किये, ऊपर एक नारियल रखा।

महात्मा श्री नीतिविजयजी महाराज समझ गये कि 'ये पुण्यात्मा संयम लेने आये मालूम होते हैं, परन्तु नारियल दोनों के बीच एक ही रखा है, अतः फिलहाल एक को संयम मिलेगा। दूसरे को ग्रहण करनें में देर लगेगी। उसे कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ेगा।' मुनीश्वरने यह भविष्यवाणी मनमें ही दबा रखी।

गुरुदेवने पूछा–"भाग्यशालियो ! किस शुभ संकल्प से यहाँ आए हो ?"

"गुरुदेव ! हम आपके चरणों में दीक्षा लेने की इच्छा ले कर आये हैं। कृपा कर हमें तारिये। आप हमारे तारणहार गुरु बनिये। हम आपके शिष्य बनने की इच्छा से ही आये है।" दोनों भाइयोंने ऐसा

उत्तर दिया। तब गुरुदेवने पुनः कहा, "महानुभावो ! संयम बच्चोंका खेल नहीं है। इसमें अनेक कष्ट, अनेक परीषह, अनेक उपसर्ग सहन करने पड़ते हैं। यहाँ मन-चाहा भोजन नहीं मिलता, भिक्षा-चर्यासे जीवन चलाना होता है। अनेक प्रलोभनों के बीच मन को वश में रखना होगा। गाँव गाँव नंगे पैरों घूमना होगा। ग्रीष्म का ताप, जाड़ों की भीषण ठंड, चौमासे की बरसात सहन करनी होगी। खुरदरी शय्या पर सोना और खुरदरे सादे वस्त्र पहनना होगा। बोलो, यह सब कर सकोगे !"

"गुरुदेव" इतना कहते ही दीक्षार्थी पुण्यात्माओं की आँखोंसे झर झर आँसू झरने लगे। "भगवंत ! आप जो बातें कहते हैं उनका हमने कई बार विचार किया है। आपने हमारी परीक्षा और हमारे मन की जाँच करने के लिए पूछा सो बहुत अच्छा किया। कृपामय ! कृपया हमें शीघ्र ही पवित्र दीक्षा दीजिये।"

हेमचन्द्र को असफलता

दिव्यज्ञानी मुनि जरा ध्यान-मग्न हुए। उन्हें ज्ञानदृष्टि से दोनों आत्मा सुयोग्य प्रतीत हुए। एक का भाग्य दीक्षा-पोषक था, दूसरे के भाग्यमें अवरोध थें, उसे कसोटी पर चढ़ना था। अतएव आर्षदृष्टा मुनिने बड़े भाई से दीक्षा लेने को कहा और हेमचन्द्र से कहा, "ठहरो और देखते रहो।"

बड़े भाईने छोटे भाई से कहा, "भाई हेमचन्द्र ! यद्यपि तुम्हारा वैराग्य मुझसे अधिक है, दीक्षा की भावना तीव्र है, तुम में दीक्षा की योग्यता भी मुझसे अधिक है, तथापि तुम्हारे कर्म कुछ और बाकी मालूम होते हैं। परन्तु तुम पुरुषार्थ करना और दीक्षा ग्रहण करना।

तुम मुझसे कहीं अधिक समर्थ बनोगे। मैं तुम्हें अन्तिम आशीर्वाद देता हूँ कि "तुम शीघ्र ही अपनी आत्माका कल्याण करनेवाले बनो।"

महात्मा नीतिविजयजी महाराजने मणिलालको दीक्षा दी। वे मणिलाल मिटकर पूज्य मणिविजयजी महाराज बने। रागी मिटकर त्यागी बने।

दीक्षा की प्रतिज्ञा

हेमचन्द्र के हृदयको यह बात सता रही थी कि घटादार वटवृक्ष के समान बड़े भाई तो माया के बंधन तोड़ कर चले गये और मैं नहीं जा सका। 'भवितव्यते! तेरा क्या इरादा है?' हेमचंद्र अधीरता से चिल्ला उठा, 'मैं संयम अवश्य लूँगा, अवश्य लूँगा।'

हेमचंद्रको अपनी दादी के साथ राजनगर से पवित्र धाम भोयणी तीर्थ की यात्रा करने का अवसर मिला। वहाँ जाकर उसने कुमार संयमी श्री मल्लिनाथ भगवान् के पास प्रतिज्ञा की–"हे भगवान्! मैं दीक्षा लूँगा। दीक्षा लिए बिना नहीं रहूँगा। हर हालत में उस पथ पर जाने की मुझे तू शक्ति दे! भंते! मुझे त्याग के पथ पर ले चल, मायाके बंधन काट फेंकने में सहायता दे। मेरे विघ्न हरो भगवान्! भगवान्! अग्निज्वाला के समान संसार में मुझे नहीं जलना है। मैं किसी न किसी तरह संयम अवश्य लूँगा।"

गाँव की गोदमें

बड़े भाईने दीक्षा के मार्ग पर प्रयाण किया, छोटा भाई पुनः कपडवंज आया। उनका आना न आना एक सा था। घरमें भी उनका व्यवहार उदासी महात्मा का सा था। सुख–वैभवकी उनके घर में कोई

कमी न थी। देवांगना के समान प्रेममयी पत्नी प्रार्थना करती थी, परन्तु इस निर्लेप हृदय पर कोई असर नहीं होता था। वे पत्नी के होते हुए भी भाव-ब्रह्मचारी का जीवन जीते थे। ध्यान, मनन, ज्ञानचर्या तथा कषायजय के हेतु ही सारा समय बिताते थे। सोलह वर्ष की उम्र में ही हेमचन्द्र की ऐसी स्थिति हो गई थी कि उन्हें त्यागी गृहस्थ अथवा स्थितप्रज्ञ कह सकते हैं।

माता यमुना, पत्नी माणेक, सास, ससुर और गाँव के लोगों के एकत्रित विरोध के बावजूद हेमचन्द्र समताभाव से सब नाटक देख रहे थे। पिताजीको भी ऐसी बातों में जरा सा हिस्सा लेना पड़ता था परन्तु उनकी आन्तरिक इच्छा पुत्र के मार्ग को सरल बनाने की थी।

पिता की भावना

हेमचन्द्र के पिता स्वयं भी दीक्षा लेने की इच्छा रखते थे। वे कई बार प्रातःकाल प्रतिक्रमण के बाद यह भावना करते थे, "हे चेतन! यह शरीर अपवित्र है, नश्वर है, दुःख का सर्जक है। आखिर इस शरीर को अग्नि की धधकती लपटों के बीच रखकर फूँक दिया जाएगा। हे चेतन! इस शरीर पर आसक्ति, पुत्रादि की ममता, संसार की वासना तुझे कहाँ ले जाएगी!

"पुद्गल की पराधीनता तुझे अनादि अंधकार में डाल देगी, तेरे आत्मा के गुणों को लूट लेगी। मानव जन्म फिर मिलना अत्यन्त दुर्लभ हो जाएगा। जिन शासन की प्राप्ति दुर्लभतर होगी, कषाय तुम्हारे आत्मा के अनन्त वैभव को पल पल लूट रहे हैं। सांसारिक स्वजन एवं स्नेही भी आन्तरिक धन को लूट रहे हैं। आत्मा की किसीको परवाह नहीं है।

हे चेतन ! तू सावधान हो कर अपना सम्हाल ले, जाग और खड़ा हो जा ।

"मेरे पुत्र को पहले संयम की प्राप्ति हो तो अच्छा नहीं तो उसकी माता, पत्नी, सास-ससुर उसे संयम ग्रहण नहीं करने देंगे । असंख्य विघ्न डालेंगे। मैं एक सच्चे पिता के कर्तव्य से च्युत हुआ गिना जाऊँगा । पहले अपने पुत्रको शासन के लिए समर्पित कर दूँ ।" ऐसे विचारों के अन्त में हेमचन्द्रको पास बुलाकर बिठाया और प्रेमपूर्वक सिर पर हाथ रख कर कहा, "बेटा ! तुम मोक्ष-मार्ग के पूर्ण अभिलाषी हो । तुम्हारी नस नस में दीक्षा की भावना थिरक रही है । तुम प्रत्येक श्वास में उसकी इच्छा करते हो । दीक्षा लिए बिना तुम्हें कपडवंज आना पड़ा यह बात तुम्हें हजार बिच्छुओं के डंख से भी ज्यादा डंख दे रही है । मैं यह जानता हूँ । मैं तो आज भी यही चाहता हूँ कि तू संयम ग्रहण कर । तू अनेक आत्माओं का उद्धारक बनेगा, शासन-स्तंभ बनेगा ।

"मुझ में सामाजिक बन्धनों के तोड़ फेंकने की शक्ति नहीं है, अन्यथा तुम और मैं यहीं धूमधाम से दीक्षा ग्रहण करते। पाँचवें आरे के प्रभाव से आज तो ऐसी मान्यता है कि 'दीक्षा लेना कायर का काम है ।' ऐसे विचारों के प्रचार के कारण अच्छे व्यक्ति दीक्षा ग्रहण करते हिचकते हैं ।

"प्राचीन काल में महाराजा, राजकुमार, राजरानियां तथा राजकुमारियाँ दीक्षा ग्रहण करते थे । क्या वे कायर थे ? परन्तु आज के युग का दुर्भाग्य है कि असमर्थ हो सो साधु बनता है ऐसी लोगों की धारणा हो गई है ।

"तुम संयमी बनकर चुनौती का सामना करो। संयम के मार्ग को मुक्त बनाओ। दीक्षा की विजय पताका फहराओ। अपनी माता या पत्नी के मोह में न पड़ना। तुम्हें मेरा हार्दिक आशीर्वाद है कि तुम संयम लो, और साधुओं के सेनानी बनो।"

आनन्द का उदधि

पिताजी की बात सुनकर हेमचन्द्र का हृदय आनन्द के उदधि में तैरने लगा। मेरी तो इच्छा थी ही, तिस पर पिताजी ने गुप्त परन्तु दृढ सहयोग दिया। अब मैं दीक्षा लेकर ही रहूँगा। इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिए। दीक्षा ही मेरा प्राण है, दीक्षा ही मेरा जीवन है, दीक्षा ही मेरा सर्वस्व है।

माता की ममता

माता यमुना को इस बात की खबर लग गई। पुत्र के प्रति ममताने माता के हृदय पर काबू जमा दिया। मेरा पुत्र दीक्षा के यह हो ही कैसे सकता है। मोहराजा ने यमुना से कहा— "तेरा पति तो पागल हो गया है। वह अपने पुत्र को वंचित करना चाहता है। उसमें बुद्धि नहीं है। तेरा घर संपत्ति-वैभव, दास-दासी, धनधान्य से परिपूर्ण है। अतः ऐसे रत्न-सम पुत्र को दीक्षा की अनुमति देने की मूर्खता *न कर बैठना, किसी भी तरह उसे दीक्षा न लेने देना।"*

"बेटा हेमू! क्या तुम दीक्षा लेना चाहते हो?" इतना कह कर माता आगे बढ़ी—"तुम्हारा यह काम नहीं है। घर में क्या कमी है? तुम्हारे बिना मेरा कौन है? गुलाब की पँखुड़ी जैसी तुम्हारी पत्नी का क्या होगा? तुम्हारा सुकोमल शरीर गाँव गाँव भटकने के लिए नहीं

बना है। तुम्हारी मृदुल काया तपस्या के लिए नहीं गढ़ी गई है। तुम्हें धर्म करना है तो घर में करो। दीक्षा तुम्हारा काम नहीं, आइन्दः दीक्षा का नाम न लेना।"

हेमचन्द्र का उत्तर

"माँ! हे माँ! तू यह क्या कह रही है? यह सब क्षणिक है, नश्वर है। कर्म-बन्धन करवानेवाला है। मैं अपने अखंड आत्मा की साधना के लिए दीक्षा ही लूँगा। तुम निर्बल न बनो। तुम्हें तो मुझको दीक्षा के लिए तैयार करना चाहिए उस के बदले तुम्हीं मना करती हो यह कैसे चल सकता है?

"संसार मे कौन किस का है! मैं माया के बंधनों को चीर डालूँगा। माता! तुम माणेक की चिंता न करो। वह सच्चा माणिक होगी तो दीक्षा लेगी। इस उम्र में यदि मैं परलोक पहुँच जाऊँ तो तुम और माणेक क्या करो? इसकी अपेक्षा दीक्षा में होऊँगा तो जीवित तो गिना जाऊँगा न?"

हेमचंद्र को उसके मित्रो तथा पत्नीने भी वासना का पंछी बनाने के बहुत प्रयत्न किये परन्तु सब प्रयत्न असफल हुए। सास और ससुर की ओर से भी अनेक प्रलोभन, धमकियाँ मिलने पर भी हेमचन्द्र अपने निश्चय से तिल भर भी विचलित नहीं हुए।

*

चौथा अध्याय

सिंह स्वतन्त्र हो गया, परन्तु...

शस्य-श्यामला धरती पर अन्धकारने अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था। पक्षी अपने घोंसलों में छिपे बैठे थे। छोटे बच्चे गहरी नींद सो रहे थे। लगभग सारी दुनिया निद्रादेवी के ध्यान में लीन थी। मात्र संत और शैतान थोड़े जाग रहे थे। संत आत्मध्यान के लिए और शैतान परद्रव्य हरण के लिए।

ऐसी काली अंधेरी रात में हेमचन्द्र उठ खड़ा हुआ। विचार करने लगा—"मोह की मदिरा से मत्त परिवार मुझे त्याग मार्ग पर जाने देगा ही नहीं। जिसे दर्द का भान हुआ है वह दर्दी दर्द मिटाने के सभी उपाय करता है। मुझे भी कुछ करना होगा। इस हेतु से मुझे इसी क्षण चले जाना चाहिए।"

बाह्य मनका उपद्रव

बाह्य मनने चौंककर कहा—"अरे हेमचन्द्र! तू अपनी माँ से दगा करके कहाँ जाता है? अपनी सुन्दरी सती नव-वधू के मुसकुराते हुए मुख को देख। उसकी दशाका विचार कर। पागल! तू जहाँ जानेको तैयार हुआ है वहाँ जरा भी सुख नहीं है। अरे! सुखका नामोनिशान भी नहीं है। तुझे किसी साधुने धोखा दिया है। अपने घर में बढ़ते हुए धन-पुंज को देख। जिसे पानेके लिए लोग अनीति-अन्याय और खून खच्चर मचाते हैं वह तुझे अनायास मिला है। उसे छोड़ कर

आत्मा के अनन्त सुख की मिथ्या भ्रान्ति में न फँस। जा, माताके चरणों में सिर रख कर कह दे—'माँ, आज से तुम्हारे चरणों में ही जीवन जीऊँगा। मेरी पत्नी से कह दो कि मैं आजसे उसे अपनी सहचरी मानूँगा।' आत्मा और परलोक के झूठे भ्रम को जला दे। ये सब तो धूर्तो की बनाई हुइ भ्रमपूर्ण बातें हैं।"

हेमचन्द्र सोचने लगा कि "घरको छोड़ना और अन्तिम नमस्कार करना चाहता हूँ उतने में ही यह क्या? हे मेरे भगवान्! बचाओ, बचाओ।"

अन्तरात्मा की ध्वनि

अन्तरात्मा की मधुर ध्वनि हेमचन्द्र के कानों में पड़ी—"हेमचन्द्र! हेमचन्द्र! तू जिस राह जाना चाहता है वही सही है। माता और पत्नी तुझे रोकती हैं सो स्वार्थ-भावना से। तुम्हारे आत्मा का साथी कोई नहीं है। जब घरमें आग लगी हो तब माता या पत्नी कोई तेरी राह नहीं देखेगी, सबसे पहले खुद ही घर से बाहर निकल जाएँगी। उस समय तू शयनखंड में सोया होगा तो तुझे बचाने कोई पास भी नहीं फटकेगा। बाहर मैदान में आकर चिल्लाएगी—'मेरे पुत्रको कोई बचाओ बचाओ...' परन्तु स्वयं तो कूद कर नहीं जगाएगी।

"वत्स हेमू! तेरा आत्मा अनेक भवों के कर्मों के तापसे जल रहा है। तू इसमें से बाहर निकल, गुरु के चरणों में जा, उनकी शरण ले। ऐसा करने से कोई ज्ञानी पुरुष तेरी निंदा नहीं करेगा, बल्कि वाह वाह करेगा, अनुमोदना करेगा। संसार-रसिक जो कुछ कहें उस पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस समय तुम्हारा आत्मा संसार में विस्फोट के साथ जल रहा है। दौड, इस ज्वालामुखी में से बाहर निकल।

"धन–दौलत और विद्या प्राप्त करने विदेश जानेवालों को माता और पत्नी तिलक करती है। इनमें से कई नहीं लौटते और परलोक सिधार जाते हैं तब ये क्या कर सकती हैं? तू तो तरने का ही मार्ग अपना रहा हैं, अनेकों को तारनेवाला तारक बननेवाला है। चल, उठ, जल्दी कर।"

हेमचंद्र अन्तरात्माकी आवाज़ के साथ नीरव रात्रिमें चल पडा। गाँवके बाहर पैर रखते ही उसे चंद्रने अपनी ज्योत्स्ना से नहला दिया। धीरे धीरे परन्तु दृढ़ कदमों सें वह गया सो गया।

अन्धकारमय प्रभात

चार प्रहरका विश्राम कर सूर्य सात अश्वों के रथ में बैठ कर प्राची के गगन में आ तो गया परन्तु किसी अगम्य कारण से वह उदास था। उसका तेज धुँधला था। कपडवंज के हेमचन्द्र के घर पर ज्योंही उसकी पहली नज़र पड़ी त्यों ही "हेमचन्द्र गुम हो गया, हेमचन्द्र गुम हो गया" के समाचार ने उदासी फैला दी थी—यह देखकर सूर्य भी उदास हो गया। अपने आँसुओं को छिपाने के लिए उसने अपना मुख क्षण भरके लिए बादल को ओट कर दिया।

बात का बतंगड

कपडवंज में ये समाचार पवनवेग सें फैल गये। सब जानते थे कि वह वैरागी महानुभाव था। उसे दीक्षा की रट लगी थी। कभी न कभी वह किसी साधु के चरणों में साधु बननेवाला था ही। बात का बीज बढ गया और तरह तरह की बातें पैदा हुईं।

एक ने कहा–'मूर्ख कहीं था ? इतनी छोटी उम्र में दीक्षा ली जाती होगी ? दीक्षा लेनी ही थी तो क्या बुढ़ापे में नहीं ले सकता था ? मूर्ख अभी से चल पड़ा।'

माणेक की कोई सखी बुदबुदाने लगी–'दीक्षा ही लेनी थी तो मेरी सहेली से शादी क्यों की ? उसका भव नष्ट कर दिया ! मरा रात को चल पडा ! दीक्षा में धरा ही क्या है ? किसीने भभूत डाल दी लगती है। यों तो हेमू दीक्षा ले ऐसा था ही कहाँ ! पर अब मेरी सखी माणेक का क्या होगा ? एक स्पष्टवक्ता युवक ने कहा "बहुत दिनोंसे हेमचन्द्र दीक्षा की बात करता था। यदि उसे यहीं दीक्षा लेने की अनुमति दी होती तो क्या बुरा था ? जिसे संसार में न रहना हो उसे बलात् कब तक रोक सकते हैं ? हेमचन्द्रको अनुमति नहीं मिली इस लिए जाता रहा, इसमें उसका क्या दोष ?"

इतने में कंकू काकी उबल पडी—'मरा माणेक का बाप। हेमू तो पहले ही कह रहा था—मुझे ब्याह नहीं करना है। मैं दीक्षा लेने वाला हूँ, मेरी शादी मत करो, परन्तु उस समय मगनलाल का धन देख-कर माणेक के पिताने अपनी लड़की हेमू के साथ ब्याही। अच्छा घर देखने गया पर जब वर की इच्छा न हो और जबरदस्ती शादी की जाय तो यही नतीजा निकले न ! दैव ही जानता है कि बेचारी माणेक का क्या होगा ?'

झमकूमाई ने बीचमें अपना राग अलापा—जब हेमिये ने शादी से इनकार किया था तभी माणेक को भी इनकार करना चाहिए था। क्या यह पगली नहीं जानती थी कि मैं जिससे ब्याहने चली हूँ वह तो

ब्याहने से पहले ही दीक्षा की बात कर रहा है। माणेकको सोचना चाहिए था कि मेरे स्वामी दीक्षा लेंगे तो मैं क्या करूँगी? इस में उसके पिताका क्या दोष? जम्बुस्वामी की पत्नियोंने दीक्षा ली थी उस तरह से अब इस माणेक को भी दीक्षा लेनी चाहिए।'

इन सबके के बीच यमुना माता, माणेक, ससुर और सास, मोहकी ऐसी घबराहट में पड़ गये कि क्या करें और क्या न करें इसका तुरन्त निर्णय नहीं कर सके।

सौराष्ट्र में संयम

अंधेरी रातमें रवाना हुआ वीर हेमचन्द्र कहीं पैदल तो कहीं वाहन में सफर करता हुआ गाँव, नगर, उपवनोंको पार करता हुआ सौराष्ट्र की भूमि पर आ पहुँचा।

पूज्य प्रवर आगमज्ञाता विद्वद्वर्य मुनीश्वर श्री झवेरसागरजी के चरण-कमलों से पूत बनी लिंबडी नगरी में मुक्तिपुरी का अदम्य प्रवासी हेमचन्द्र आ पहुँचा। गुरुदेव श्री झवेरसागरजी महाराज के पास आकर विधिपूर्वक वंदनादि किया। अवसर देख कर पूज्यश्रीने आगन्तुकसे पूछा—"महानुभाव! किस उद्देश्य से आये हो?"

भंते! मैं कई महीनोंसे संयमकी अभिलाषा पाल रहा हूँ। पहले भी संयम लेने के प्रयत्न किये थे परन्तु भाग्यने साथ नहीं दिया। आज आपके चरणों की शरण में आया हूँ। कपड़वंज छोड़े आठ दिन हुए। एक मात्र अभिलाषा—एक ही तमन्ना—एक ही अरमान है कि मुझे संयम—पथ का पथिक बनाइये। गुरुदेव! मेरा उद्धार कीजिये—उद्धार कीजिये।

पूज्य महात्माने नये आगन्तुक की अच्छी तरह पूछताछ करके जाँच कर ली। उनके मनको प्रतीति हुई कि यह पात्र उत्तम ही नहीं–उत्तमोत्तम है। दीक्षा अंगीकार करने के बाद यह शासनका कर्णधार बनेगा। वे महात्मा अपने ज्ञान से नये आगन्तुक की आँखों में ऐसा तेज निहार सके। यह भी देख सके कि बीच बीच में उपसर्ग और उपद्रव भी होंगे।

हेमचन्द्र को शुभ दिन और मंगलमय मुहुर्त में चतुर्विध संघ-समस्त की सामूहिक उपस्थिति में दीक्षा दी गई। जब धर्म–ध्वज रजोहरण उसके हाथ में आया तब उसके आनन्दका पार न रहा। कई महीनों से जिस दिन की राह देख रहे थे वह आज आ गया। आज का दिन धन्य था, आज की घड़ी धन्य थी। हेमचंद्रका सोलहवां साल चल रहा था, और विक्रम संवत् १९४६ बीत रहा था।

संसारी में से साधु बने हुए हेमचंद्र ज्ञान, ध्यान, तप, संयम की आराधना करनेमें बहुत ही तत्पर बने। संयम की मर्यादाओं का पालन करते थे। नवकल्पी विहार कर अहमदाबाद पहुँचे। इस साधुवृन्द को कल्पना भी नहीं थी कि सेंकडों जिनमन्दिरों एवं हजारों जैन घरों से शोभित क्षेत्र में महा–उपसर्ग आएगा। परन्तु कालबल अद्‌भुत था। संघ–बल छिन्नभिन्न था। नेताहीन टोली की सी दशा श्रावक–संघ की थी। धर्म अन्तिम साँस ले रहा था। त्यागी वर्ग को साथ और आश्रय देने की बात मिट चुकी थी। ऐसी हालत में अनजाने यह मुनिवृन्द राजनगर आ पहुँचा।

उपसर्गों का आरम्भ

मुनि हेमचन्द्र अहमदाबाद में अध्ययनादि कर रहे हैं यह खबर कपडवंज में पहुँच गई। परिवार के लोग विरह–व्यथा में से जरा स्वस्थ

हुए ही थे कि ये समाचार मिले। तुरन्त पावन को पतित करने की योजना बनाई। यमुना माता को यह निश्चित ज्ञात हो चुका था कि उसकी शक्ति काम नहीं देगी, साथ ही सास-ससुर, स्वजन, स्नेही तथा धर्मपत्नी का बल भी कोई असर नहीं करेगा। अतः राज में फरियाद की। सरकार और न्यायालय संसारी का पक्ष ही अधिक लेते हैं। सतयुग की बात जाने दीजिए, यह कलियुग की सरकार की बात है।

राज्याज्ञा

हेमचंद्र को गुजरात राज्य के बड़े अधिकारी की ओर से एक आज्ञापत्र मिला। उसमें लिखा था, "तुम साधु वेष त्याग कर अपने गाँव चले जाओ। वहां तुम्हें गृहस्थ-जीवन बिताना है। तुम विवाहित हो, अतः अपनी पत्नी के भरण-पोषण के अतिरिक्त उसे सन्तोष देने के लिए भी जिम्मेदार हो। तुम इस फर्ज से मुक्त नहीं हो सकते। तुमने आवेश के कारण या अन्य किसी भी कारण से दीक्षा ली हो, तो यह पत्र मिलते ही दीक्षा छोड़ दो यह राज्य का हुक्म है।"

राज्याज्ञा का उत्तर

राज्य का आज्ञापत्र पढ़ कर मुनि हेमचन्द्र सोच में पड़ गये। मुनिप्रवर झवेर सागरजी ने सोचा कि यह अप्रत्याशित उपसर्ग आया है। उपसर्ग तो आनेवाला था परन्तु जैन नगरी होते हुए भी श्रमण का पक्ष लेनेवाला कोई माँका पूत सामने नहीं आया। बिना मूठ के हथियार अनुपयोगी होता है, उसी तरह अकेले महात्मा झवेरसागरजी भी क्या कर सकते थे!

फिर भी वीरता के अधिष्ठाता मुनि हेमचन्द्र ने मुख्य राज्याधिकारीको उत्तर दिया—

"मैं गृहस्थ बनना नहीं चाहता। मैंने अपनी इच्छा से दीक्षा ली है। मैं उसे आमरण पालना चाहता हूँ। मैंने अपनी इच्छासे जो वस्तु अंगीकार की है वह गलत या बुरी नहीं बल्कि आध्यात्म–युक्त कार्य है। मैं अपनी पत्नी के सन्तोष या भरण पोषण का जिम्मेदार नहीं हूँ न मेरा यह फर्ज ही है, क्यों कि मैंने शादी करने से साफ इनकार किया था। बलपूर्वक मेरी शादी की गई है, अतः मैं जिम्मेदार नहीं हूँ परन्तु बलपूर्वक शादी करवानेवाले जिम्मेदार हैं, मैं ने किसी आवेश, आवेग, उद्वेग या ऐसे किसी अन्य कारण से दीक्षा नहीं ली है, अतः मुझे दीक्षा छोडने को कहना न न्यायसंगत है न युक्तियुक्त। इसलिए यह राज्याज्ञा वापस ली जानी चाहिए, और इसीमें न्याय–संगतता है।"

दूसरी राज्याज्ञा

मुख्य राज्याधिकारी इस उत्तर से सोच में पड़ गये। कुछ देर तो उन्हें भी लगा कि बात तो अवश्य विचार करने योग्य है। फिर दूसरी आज्ञा दी—

"तुम साधुवेष छोड़ना न चाहो तो कोई बात नहीं, तुम कपडवंज जाकर अपने अभिभावकों के साथ घर में रहो, घर का भोजन करो और साधुवेष कायम रखो।"

कानून कई बार अन्धा और तर्कहीन होता है। उसे ज्ञान या भान नहीं होता। कानून परिस्थिति को नहीं समझ सकता।

अग्नि सन्त और शैतान को समान गिनती है और दोनों को जलाती है। उसी तरह कानून भी संत और शैतान को हैरान करता और जलाता है। अंधे कानून के अधीन होकर हेमचन्द्र को घर लौट जाना पड़ा. परन्तु वेष तो मुनिका ही रखा।

वेष उतरवाने के अनेक प्रयत्न किये गये। माँ का रुदन, पत्नीका विलाप, ससुरकी धमकी, स्वजनों का समझाना-बुझाना, स्नेहियों का स्नेह सब व्यर्थ गया तब पुनः सरकार के पास पहुँचे। अबकी हेमचन्द्रको न्यायालय में जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने वकील नियुक्त नहीं किया। सत्रह वर्ष की उम्र में स्वयं ही अपने वकील बने।

स्पष्टवक्ता

"मेरे विरुद्ध आज जो मुकदमा पेश हुआ है उसके विषय में मैं एक जैन साधु के तौर पर नीचे मुताबिक कैफ़ियत पेश करता हूँ—

आज मुझ पर दावा किया गया है और उसके द्वारा मुझे संसार में लौटने को मजबूर किया जा रहा है, परन्तु इस तरह मजबूर करना बिल्कुल गैरवाजिब है।

मैंने अपनी शादी के वक्त बार बार चेतावनी दी थी कि मैं संसार में जुड़ना नहीं चाहता, इतना ही नहीं बल्कि जैन साधु बनना चाहता हूँ, और इसलिए दीक्षा लूँगा। मेरी ऐसी स्पष्ट चेतावनी के बावजूद ज़बरदस्ती मेरी शादी की गई थी। अतएव अब मेरे दीक्षा-ग्रहण से जो परिणाम आएँ उनके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ, परन्तु ज़बरदस्ती से मेरी शादी करनेवाले ही उत्तरदायी हैं।

इस कारण मैं साधुवेष छोड़ना नहीं चाहता। सदा इसी वेष में रहना चाहता हूँ। ग्रहण की हुई दीक्षा बनाये रखने का ही मेरा इरादा है।"

त्यागी से रागी

कुछ समय बाद उन्हें संयमी वेष छोड़ना पड़ा। फिर जैसे थे वैसे बन गये। व्रत गये, नियम गये, त्याग और वैराग्य गये। वासना हावी हो गई, उपासना जल गई। रंग-राग उभरने लगे, मौज़-शौक़ झलकने लगे। उनका व्यवहार ऐसा हो गया कि किसी को भी यह सन्देह होने लगे कि क्या यह भी कभी साधु बना होगा? बाह्य दृष्टि से वे पूर्ण विलासी संसारी हो गये। कोई अन्तरको नहीं पहचान सका कि यह तो एक नाटक था। अरे, खुद पिताजी भी चिंतित हो उठे। मेरा पुत्र ऐसा—संस्कार-धाम से संस्कारहीन—बन गया? न धर्म न ध्यान, न स्वाध्याय, न वाचन? स्वाध्याय से भी च्युत? वस्तुतः यह सही नहीं था। हेमचन्द्र का वास्तविक आन्तरिक स्वरूप कोई देख सका न जान सका।

कंठे (आभूषण-विशेष) की चाह

एक दिन पत्नी ने एकान्त में कहा—स्वामि! आप मुझे क्या नई डिज़ाइन के जेवर नहीं बनवा देंगे? एक सुन्दर कंठा बनवा दीजिए। ये पुरानी डिज़ाइन के मेरे आभूषण ले लीजिए और मुझे नये बनवा दीजिए।

बेचारी भोली नारी। क्या यह हेमचन्द्र तेरा बना है? याद रख, यह तुझे बनाकर फिर चला जाएगा। इस वक्त जो कहना हो सो कह दे, माँगना हो सो माँग ले; थोड़े दिनों बाद नया खेल देखना।

प्रियतम हेमचन्द्रने कहा—"लाओ, तुम्हें रत्नजटित कंठाभरण बनवा दूँ। उस आभूषण को पहन कर तुम स्वर्ग-सुन्दरी बन जाओगी। तुम्हें भी अपना जीवन धन्य मालूम होगा। तुम्हें परी के रूप में देख कर मैं भी खुश होऊँगा। इन पुरानी डिज़ाइन के गहनों से नया कंठाभरण बनवा कर तुम्हें पहनाऊँगा।"

आभूषण आया अथवा गया?

हेमचन्द्र ने पिताजी से बात की। मुझे पत्नी के लिए इन पुराने गहनों में से नई डिजाइन के अलंकार बनवाने हैं, सो आप बनवा दीजिए, या मुझे अनुमति दें तो मैं बनवा लूँ।

"हेमचन्द्र! देखो, मुझे कुछ दिनों बाद अहमदाबाद जाना है। तुम भी मेरे साथ आना। अपनी पत्नी के लिए तुम्हें जैसे जँचे वैसे जेवर बनवाना।" पिताजीने कहा।

"पिताजी, मैं आपके साथ आऊँगा।" हेमचन्द्र ने उत्तर दिया।

माता यमुना और पत्नी माणेक को अलंकार बनवाने के लिए अहमदाबाद जाने के समाचार मालूम हो गये। उन्हों ने सोचा, पुनः नहीं लौटेंगे तो? हमारा जीता जागता चेतन अलंकार चला जाय, तब जड़ अलंकार की क्या जरूरत?" माता और पत्नी ने कहा, "हमें गहने नहीं चाहिए। तुम्हें अहमदाबाद जाने की जरूरत नहीं।" ससुर तथा अन्य स्वजन भी आ गये। कहने लगे—"अलंकार नहीं बनवाने हैं। अलंकारों के बदले कहीं हमीं बन जाएँगे तो! अतः तुम अहमदाबाद नहीं जाओगे।"

"मैं कोई आपका गुलाम नहीं हूँ, मैं स्वतन्त हूँ। मैं जहाँ जाना चाहूँ वहाँ जाने का मुझे अधिकार है। आप मुझे नहीं रोक सकते।" हेमचन्द्र का ऐसा उत्तर सुनकर सब मौन रह गये।

पिता और पुत्र अहमदाबाद गये। वहाँ वे विद्याशाला में उतरे। मार्ग की तथा कार्य की थकावट थी, अतः रात को देर से नींद आई। सुबह उठने में देर हो गई। प्राची में सूर्योदय हुआ, परन्तु ये भाग्यवान् नहीं उठे। देर से उठने पर एक नित्य-नियमित श्रावकने ठंडी आवाज में कहा—

धर्मबन्धुका संकेत

"भाई हेमचन्द्र! तुमने तो सामायिक, प्रतिक्रमण आदि सब कुछ छोड़ दिया। यह तुम्हें शोभा नहीं देता।"

पूर्व परिचित श्रद्धालु श्रावक के मुख से ऐसे वचन सुनकर हेमचन्द्रका सिर झुक गया। लज्जा-भार से नेत्र नत हो गये। धीमी दृढ आवाज में उत्तर दिया—

'धर्मबन्धु! छोड़ा है परन्तु पुनर्ग्रहण के लिए।'

ऐसे तो हेमचन्द्र हृदय से वैरागी थे ही। उन्हें उत्कंठा थी ही कि पुनः मुनि वेष कब प्राप्त हो। इसी हेतु से अहमदाबाद आए थे। रात को श्री जंबुस्वामीजीका रास—पद्य-बन्ध-चरित्र—पढ़ा था। अतः जागरण हुआ था-रात को देर से सोये थे।

प्रातः क्रियाओं एवं नित्य-नियमों से निवृत्त हो, दोपहरका भोजन कर अतिथिगृह में आराम करने के लिए बाईं करवट लेट रहे थे।

उस समय हेमचन्द्रने पिताजी से कहा—"पिताजी! आप मुझे दीक्षा दिलवा दीजिए। मेरा मन आज दीक्षा के लिए उत्कंठित है। कृपया अब मुझे कपड़वंज न ले जाइये। गत रात्रि में श्री जम्बुस्वामीजी का चरित्र पढ़ते समय दृढ़ निर्णय किया है कि मैं दीक्षा लूँगा। आप कृपा कर सहयोग दीजिए।"

"बेटा हेमचन्द्र! मैं तुम्हारी भावना में विघ्नभूत नहीं बनूँगा।"

पाँचवाँ अध्याय

संयम और ज्ञान

गुरु के चरणों में

यशस्वी और तेजस्वी महात्मा झवेरसागरजी महाराज के चरणों में हेमचन्द्र ने विक्रम संवत् १९४७ माघ शुक्ला ५ के दिन पुनः उल्लास पूर्वक दीक्षा ग्रहण की। हेमचन्द्र कुमार से मुनि आनन्दसागरजी महाराज बने। एक दिन की आशा आज फलीभूत हुई। उनका रोम रोम उमंग से प्रफुल्लित था। सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो कर सच्ची स्वतन्त्रता की आभा उनके मुख पर चमक रही थी। अब तो दीक्षा के मार्ग पर आगे कदम बढ़ा रहे थे।

पुत्र के मार्ग पर पिता

श्रेष्ठी श्री मगनलाल कपड़वंज गए। सास-ससुर मोह में चकचूर थे। मगनलाल को अकेले आये हुए देख कर वे लोग उन पर ऐसे टूट पड़े जैसे शिकारी शिकार पर टूट पडते है। अपशब्दों की वर्षा कर दी। हैरान-परेशान करने में कोई कमी न रखी।

मगनभाई के मनोरथ

युद्धखोर को भी शांतिवादी जीत सकता है, इस नियम के अनुसार समता के सागर जैसे श्री मगनभाई ने सब कुछ सहन किया, और उचित मार्ग अपनाया। उनके मन-मंदिर में एक हलचल मच गई—क्या संसार

ऐसा है ? कोई आत्मा आत्मकल्याण के मार्ग पर जाता हो तो उसमें विक्षेप पर विक्षेप डालते रहना ? धन-दौलत, माल-असबाब, और स्वजनों का यही दुःखद स्वरूप है ? समय पर कोई किसीका नहीं होता। ऐसे काजल-काले कारागार में रह कर मैं कब तक सड़ा करूँगा ?

ऐसे विचारों के जोर पर व्यवहार के कार्य मगनभाई ने जल्दी निपटा दिये। तत्पश्चात् सिद्ध गिरि राजकी यात्रा के लिए रवाना हुए। देवाधिदेव के दर्शन कर कृतार्थ हुए। भगवान् की स्तुति कर प्रार्थना करने लगे—

भावना सफल हुई

'हे संसार के तारक ! तू सब को तारता है, पर मुझे क्यों नहीं तारता ? मेरा कौनसा अपराध है ? प्रभो ! अब तो तेरा शासन मेरी नस नस में रम रहा है। कपडवंज छोड़ आया हूँ, अब लौट कर नहीं जाऊँगा। करुणासिंधो ! मुझे चारित्र की प्राप्ति हो, भव-भव में प्राप्ति हो, तेरा सेवक बनूँ, तेरी आज्ञाका पालक बनूँ। हे भगवन् ! तेरे सिवा मेरा कौन है ? तू विश्वका उद्धारक है, तो मेरा भी उद्धार कर।'

यात्रा करके रवाना हुए। प्रतापी मुनीश्वर श्री प्रताप विजयजी से भेंट हुई। उनके चरणों में सर्वविरति महाचारित्र स्वीकार किया। इसे कहते हैं 'भावना भवनाशिनी।' वीर संवत् २४२० का मंगलमय वर्ष था। श्रेष्ठी मगनभाई मिटकर मुनिप्रवर श्री जीवविजयजी महाराज बने।

विहार और महाविहार

नूतन मुनि जीवविजयजी पूज्य गुरुदेव के साथ संयम की साधना करते हुए ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे। सुन्दर तप-जप करते थे। वयोवृद्ध होने के कारण अधिक ज्ञान की आशा नहीं थी, फिर भी योग्य

प्रयत्न करते और समिति–गुप्ति–धर्मोका एवं दस यतिधर्मोका सुन्दर पालन करते थे। इस तरह विहार करते हुए पेटलाद नगर में पधारे।

अलग अलग स्थान पर अलग अलग गुरुदेवों से संयम ग्रहण करने वाले पिता और दो पुत्रोंका देवयोग से आज संयमावस्था में पेटलाद नगर में मिलन हो गया। पूर्वावस्था के अपने पुत्रों को संयम की उत्तम आराधना करते देख कर पिताकी आत्माको बहुत शांति मिली। उन्होंने मुनित्वको प्रकाशमान् करनेका आशीर्वाद दिया।

समय कभी नहीं रुकता। वह तो सतत अविरत गतिसे चलता जाता है। उसमें कब क्या होनेवाला है यह तो अनन्तज्ञानी के सिवा कौन जान सकता है!

मुनिराज श्री जीवविजयजी एकाएक दर्द के शिकंजे में आ गये। सुयोग्य एवं निरवद्य औषधोपचार शुरू किया परन्तु...परन्तु दो वर्ष के अल्प दीक्षा–पर्याय में अल्पजीवी व्याधि में आषाढ़ शुक्ला २ के दिन उनका जीवन–दीप बुझ गया। मुनि जीवविजयजी काल–धर्म को प्राप्त हुए। थोड़े समय में ये महानुभाव साधना कर गये।

अध्ययन में संकट

गुदड़ी के लाल के समान मुनि आनन्द सागरजी उत्तम शास्त्राध्ययन कर रहे हैं। श्री गुरुदेव ज्ञानी हैं। शिक्षा देने का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा है, फिरभी एक बात की बड़ी भारी कमी थी।

मुनिवर श्री आनन्द सागरजी को व्याकरण सीखने की उत्कंठा जगी। गुरुदेव सहमत हुए। उस लघु व्याकरण का नाम 'सिद्धान्त–रत्निका' था। परन्तु वह या उसके जैसे दूसरे व्याकरण कहाँ से लाये जाएँ।

प्रयत्न शुरू किये परन्तु कहीं ढंग नहीं बैठा। जगह जगह ज्ञान-भंडारों के अध्यक्षों और कार्य-वाहकों को कहलवाया। परन्तु एकाधिकार और संपूर्ण-स्वामित्व भोगनेवाले उपाश्रयों के श्रावक ठेकेदारों को लाखों के मूल्य की पुस्तकें दीमक के हवाले करने में अपनी हेठी नहीं लगती थी परन्तु उन्हे एक पवित्र और अध्ययनशील साधु के हाथ में छोटासा ग्रन्थ सौंपने में कँपकँपी छूटती थी। उस समय व्याकरण जैसे ग्रन्थ मिलना मुश्किल था तो आगमों की तो बात ही क्या?

इस तरह के दकियानूस अग्रणियों की बदौलत करोड़ों के मूल्य के और पवित्रताके प्रतीक-से आगम-ग्रन्थ, चरित्र आदि शीर्ण-विशीर्ण हो गये हैं। ये लोग आगम-ग्रन्थों को अंधेरी कोठरी में बन्द रखने में अपना मनगढंत धर्म मानते थे।

गुरु और शिष्य-दोनों व्याकरण की खोज में प्रयत्नशील थे, परन्तु शीघ्र परिणाम नहीं आया। छः महीनों के सतत और सख्त परिश्रम के बाद किसी सज्जन के हृदय में भावना जगी और उसने अंधेरी कोठरी की अलमारी में बन्द एक व्याकरण की प्रति-सो भी अपूर्ण और दीमक लगी हुई—निकाल कर दी। फिर भी उक्त कार्यकर्त्ता को धन्यवाद देना ही रहा।

व्याकरण का अध्ययन शुरू किया। केवल नब्बे दिनों में यह ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिया, सो भी सूत्र-मात्र नहीं, परिपूर्ण अर्थ के साथ। जिस ग्रन्थकी प्राप्ति में एक सौ अस्सी दिन लगे उसे सीखने में केवल नब्बे दिन।

इस घटनासे ग्रन्थों की दुर्लभता की कुछ कल्पना आप कर सकेंगे। ऐसी अनेक मानव-निर्मित कठिनाइयों की आँधी के बीच भी अगाध परिश्रम तथा अदम्य उत्साह के साथ अध्ययन जारी रखा। पुस्तकों तथा

अध्यापकों के अभाव में भी अद्वितीय विद्वान् बननेवाले महापुरुष और अनेक सुविधाओंके बीच भी विद्वान् नहीं बननेवाले कितने अभिनन्दन के पात्र हैं ?

छत्र छिन गया

अनेक आवरणों के बीच अदम्य उत्साहके बल पर शिष्यको अध्ययन करते हुए देखकर गुरुदेवको आनंद होता था, परन्तु विधाता यह आनन्द देख नहीं सका। गुरुदेव भले चंगे थे, अचानक बीमार पड़े। बीमारी बहुत मामूली थी परन्तु वह प्राणान्तक सिद्ध हुई। वे कराल काल के खप्पर में समा गये। वीर सैनिक की तरह वे समाधि-पूर्वक गये, परन्तु गये सो गये।

कराल काल की विकरालताने मुनि आनंदसागरजी का आनन्द छीन लिया। नूतन दीक्षित मुनि छत्र-रहित हो गये। छत्र छिन जाने के बाद महामुनिकी स्थिति विकट हो गई। गुरुके प्रति प्रेमने हृदयको झकझोर दिया। गुरुका विरह बडा कठिन प्रतीत हुआ। इनकी नाव अभी तो मँझधार में थी, उतने में कर्णधार स्वनाम-धन्य बनकर चला गया। नौ महीने का दीक्षा-पर्याय हुआ था। धीरे धीरे स्वस्थता लाभ कर पुनः स्वाध्याय, ध्यान, तप संयमादि में लीन बने।

मरुधर की ओर

दूसरा वर्षावास अहमदाबाद, शाहपुर में किया। वहाँ से मेवाड़ की ओर विहार किया। उस समय उदयपुर की गद्दी पर बिराजमान यतिवर्य श्री आलमचन्द्रजी नम्र एवं सरल स्वभाव के थे। वे संवेगी साधुओं के प्रति सद्भाव रखते थे। ज्ञानवान् भी थे। अतः ज्ञान प्राप्ति की भावना से उनके पास गये।

यह भी समय की बलिहारी थी कि उस समय साधुओं की संख्या अंगुलियों पर गिनने जितनी थी। लगभग पैंतालीस–अड़तालीस साधु होंगे। उनमें भी आधे तो वयोवृद्ध और केवल स्वकल्याण कर सकें ऐसे थे।

उदयपुर में अध्ययन करते थे परन्तु संयमका पालन सचमुच बड़ी सावधानीं से होता था। अध्ययन के नाम पर अपवादों की मिलावट करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। वे ज्ञानमूर्ति बनने से पहले संयम की जीती जागती प्रतिमा बन चुके थे।

पाली में पदार्पण

वर्षावास (चातुर्मास) से पहले थोड़ा सा विहार करने की भावना से उदयपुर के आसपास के ग्राम्य–विस्तार में गये।

उस समय पाली में मूर्तिपूजा के कट्टर शत्रु स्थानक–वासियों के झुंड उमड़ आये। मूर्तिपूजा के श्रद्धालु श्रावक विद्वान् यतिवर्य श्री आलमचंदजीके पास उदयपुर दौड़े। उन्हें अपने नगर पर आये हुए खतरे की जानकारी दी और कहा कि वहाँ आये हुए स्थानकवासी साधु विद्वान् माने जाते हैं। कंठ मधुर है। अच्छा गाने और बोलने का अभ्यास है। इसके द्वारा लोगों को आकर्षित कर मूर्तिपूजा का विरोध कर रहे हैं। आप पाली पधार कर उनका सामना कीजिए। हम आपकी अच्छी तरह सम्हाल रखेंगे।

यतिवर्य ने कहा 'आप घबराइये नहीं। मैं आपको संवेगी मुनि आनंद सागरजी के नाम सिफारिश–पत्र लिख देता हूँ। वे युवक हैं, विद्वान् और तेजस्वी हैं आपके संघ के लिए उपकारक सिद्ध होंगे। लो यह पत्र।'

सिफारिश-पत्र लेकर पाली-संघ के नेताओंने गाँव-गाँव जाकर इन मुनिवर को ढूँढ़ निकाला। विधिवत् वंदनादि किया। पाली को चातुर्मास का लाभ देने की प्रार्थना संघ की ओर से की। विकट परिस्थिति की सारी बात बता दी और अन्त में यतिवर्यजी का पत्र विनयपूर्वक उनके हाथ में दिया।

मुनिवर्य श्री आनंद सागरजीने पत्र पढा। संघ की बातचीत पर से पाली-संघ पर आई हुई आफत का अनुमान हुआ। ऐसे संकट काल में शासन को समर्पित होनेवाले का क्या कर्त्तव्य होता है? इसका विचार करने लगे। थोडी ही देर में क्षात्र तेजोचित निर्णय किया और संघ के अग्रणी श्रावकों से मधुरवाणी में कहा, "भाग्यशालियो! ऐसे कसोटी के समय में श्रावकों की विनती न हो तो भी शासन रक्षा की खातिर किसी भी पराक्रमी साधु को शासन के सैनिक के नाते आना ही चाहिए। जिस पर आप लोगों की प्रार्थना है, यतिवर्य का आग्रह है, तब तो अवश्य आना चाहिए। फिर भी जैन साधु के नाते जतला देता हूँ कि क्षेत्र-स्पर्शना होगी तो भावना रखूँगा। संघ के अग्रणी 'जिन शासन देव की जय' बोल कर उठे, सस्मितवदन, प्रसन्नचित्त पाली पहुँचे। संघ में आनन्द की लहर फैल गई।

उजड्ड और अज्ञान से भरे हुए शासन द्रोही, मंदिरलोपी आत्माओं के सहवास से उन्मार्ग पर चढे हुए लोगों से बसे हुए कस्बों और गाँवों में विचरण करते हुए मुनिवर श्री आनन्द सागरजी पाली नगर के द्वार पर पधारे।

पाली नगर के संघ का उत्साह अनूठा था। हमारे आँगन में अनजाना दिव्य पुरुष आ रहा है—इस उमंग के साथ स्वागत-यात्रा की

अपूर्व तैयारी हो रही थी। उस दिव्य पुरुष के आगमन के समाचार मिलते ही संघ के उत्साह में बाढ़ आ गई। बड़े ठाठ बाट से सामेला शुरू हुआ।

यह नरकेसरी दिव्य पुरुष एकाकी थे, विचित्र कालबल की यह भी बलिहारी थी। सामेले में बडी बडी पगडियाँ और अंगरखे पहने हुए लंबे चौड़े डीलडौल और मजबूत शारीरिक गठनवाले मरुधर के श्रमणी आए हुए थे।

सामेला विजयस्वरों के साथ धीरे धीरे आगे बढ रहा है। दूसरी ओर उसमें चुपके चुपके धीमी कानाफूसी हो रही है। एक धीमे स्वर ने दूसरे के कान में कहा—'हमारे मुखिया लोग अच्छा साधु पकड़ लाये हैं। यह बेचारे उन मदमस्त झुंडों के सामने क्या करेंगे ?'

महामुनि की देह दुर्बल थी, गठन में नाटे थे। परन्तु वे एक छिपे हुए रत्न थे। कोहिनूर की तरह बाह्य नूर उनके नहीं था। अंदर के नूर को सामेलेवाले देख नहीं सके थे। मैला शरीर, मैले कपडे-अनजाने लोग कैसा अनुमान लगाते। ऐसी शंका फैलने लगी कि कहीं हमारे संघ की नाक तो नहीं कटेगी !

आखिर सामेला जिनमंदिर पहुँचा। वहाँ दर्शन, चैत्यवंदन करके उपाश्रयको पधारे। 'इरियावहिया' आदि करके व्याख्यान के व्यास-पीठ पर दुर्बल और नाटे शरीरवाले महात्मा बिराजमान हुए।

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" गाथा पर विवेचन शुरू हुआ। अच्छा खासा डेढ़ घंटा बीत गया। व्याख्यान समाप्त हुआ, तब शंका करनेवाले और न करनेवाले सभी श्रोता आनंद विभोर होकर नाच उठे।

प्रभावकता की छाप

चातुर्मास आरंभ हुआ। व्याख्यान में ठाणांगजी सूत्रका पठन शुरू हुआ। आगत मुनिवर सामान्य नहीं, अपितु महान् हैं, यह बात दल बाँध कर आए हुए स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधुओं को ज्ञात हुई। उन्होंने सब आडम्बर त्याग कर शान्ति धारण की। उनके मनको पक्का निश्चय हो गया कि यह एक दुर्बल संवेगी साधु ज्ञान में हम सब से प्रबल है। चौमासा बहुत हीं अच्छा हुआ, और मुनि तो फिर विहारको रवाना हुए। मारवाड़ में स्थानकवासी तथा तेरापंथी सम्प्रदायका काफी सामना करना पड़ता था।

उम्र छोटी थी, सिंह की तरह एकाकी थे। साधुको अकेले नहीं रहना चाहिए—यह उत्सर्ग मार्गीय शास्त्राज्ञा है। उन्हें इस आज्ञाका ध्यान था; परन्तु गुणाधिक अथवा समगुणी मुनि न मिले तो अपवाद स्वरूप एकाकी विहरने की आज्ञा थी। यही आज्ञा पालनी पड़े ऐसी उनकी परिस्थिति थी।

दूसरी ओर श्री आगम आदि के अध्ययनकी इन्हें तीव्र अभिलाषा थी, परन्तु गुरु कौन हो? कहाँ और कौन आगम पढ़ाए? यह विचित्र और उलझनभरा प्रश्न था! 'मुझे कोई पढानेवाला नहीं है, ऐसा निर्माल्य उत्तर भी देनेको वे तैयार नहीं थे। अति उत्कट इच्छा और सच्ची भावनाने एक अद्वैत गुरु खोज लिया।

आगम-अध्ययन विषयक स्वप्न

ढलती संध्याका समय था। मरुधरकी धधकती धरती पर विचरते हुए ये मुनीश्वर स्थंडिलभूमि (शौच के लिए) गए थे। पक्षी अपने घोंसलों को लौट रहे थे। गायें चरागाह से चर कर गाँवकी ओर लौट रही थीं।

ऐसे समय में ये मुनीश्वर नदी के किनारे खड्डे में शौच क्रिया से निपट कर लौटते हुए एक प्राचीन और जीर्ण मंदिर के बाहर बिराजे ।

विचारमग्न रहना तो इन मुनीश्वर का व्यसन का । फिर भी इन विचारों में कभी बुराई की बदबू नहीं आती थी, उन में सद्भावना के सुगंधित धूम की महक ही निकलती थी । वे विचार कर रहे थे 'कि 'मुझे आगम कौन पढ़ाएगा ? कहाँ पढ़ने जाऊँ ?' परन्तु कोई उत्तर नहीं मिलता था । उपाश्रय में आकर प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, और संथारा पोरिसी की परन्तु नींद किसी कदर नहीं आ रही थी। आगम-वाचना कौन देगा ? यह विचार उन्हें सता रहा था। इस विचार में ही निद्राधीन हो गये । पुण्य-योग से एक स्वप्न आंया ।

स्वप्न में किसी ज्ञानी गुरु के दर्शन हुए । इन मुनीश्वरने उन्हें वन्दन किया। ज्ञानी गुरु ने पूछा "आनन्द सागरजी ! उदास क्यों हो ?"

"महोदय ! मैं आगम-वाचना देनेवाले गुरु की खोज के विचार में हूँ । मुझे संयम की साधना में कोई चिंता नहीं है, जरा भी दुःख नहीं है । परन्तु 'आगमों का अध्ययन कहाँ जाकर करूँ ?' यही चिंता मन को सता रही है।"

'तनिक भी चिंता न करो । तुम पूर्वभव में अपूर्व श्रुतधर थे। आज तुम्हें दूसरे गुरु की आवश्यंता नहीं है। आगमज्ञान तुम में भरा हुआ है हीं। केवल थोडे से आवरण आ गये हैं, उन्हें दूर करना ज़रूरी है। ये आवरण भी नर्म हैं । एक काम अवश्य करना।"

वाचना विधि

"तुम्हें जो आगम सीखना हो उस आगमग्रन्थ को सामने पट्टे पर अथवा ठवनी पर रखना। फिर उसे जीवंत आगमगुरु मानकर वन्दन

करना । 'वायणा संदिसाहुँ' और 'वायणा लूंगा' ये आदेश माँगना । अन्त में 'इच्छकारी भगवन् पसाय कर वायणा प्रसाद कराइयेजी' कहना । इस विधि के बाद विनय पूर्वक ज्ञानाचार के आठ अतिचारों से दूर रह कर तुम स्वयं ही आगम पढना ।

"इस में एक बात विशेष लक्ष में रखना । जिन आगमों का योगोद्वहन किया हो वे ही आगम पढना । आचार्य-पद-लोलुपों की तरह जोग के बिना न पढना । बस इतना ध्यान रखोगे तो महान् आगमज्ञाता और बहुतों के आगमवाचनादाता बनोगे ।"

दूसरे दिन से यह विधि आंरभ हूई । यों तो हमारे संघ में ज्ञानपंचमी के दिन आगमग्रन्थों, चरित्रग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थोंका वंदन होता है, धूप, दीप, नैवेद्य, फल आदि से पूजा होती है । वास एवं चाँदी के सिक्के पूजन में रखे जाते हैं । इस क्रिया से हम कृतकृत्य हो गये ऐसा झूठा आत्म-तोष लेते हैं । परन्तु दर असल इन मुनीश्वर ने जैसे किया वह सच्ची ज्ञानपूजा है ।

मुनीश्वरने दूसरे दिन आयंबिल किया । श्री हारिभद्रीयवृत्ति युक्त श्री दशवैकालिक सूत्रकी प्रति ग्रहण की । लकड़ी के पट्टे पर उसे प्रस्थापित किया । उक्त प्रतिको वन्दन किया, आदर पूर्वक मस्तक से लगाया तथा जिस प्रकार साक्षात् गुरुके प्रति विनय रखते हैं उसी प्रकार पुस्तक-गुरुके प्रति विनय धारण करते हुए पठन शुरू किया एक बार, दो बार...तीन बार ।

ज्ञानाभ्यासकी तीव्र उत्कंठा, शास्त्रीय पद्धतिका विनय तथा सतत सच्चे दिलका परिश्रम-ऐसे अनेक गुणोंके कारण क्षयोपशम प्रकट होता गया । यहाँ तक कि प्रतियों में लिपिकार के दोष से अथवा दीमक के खा जाने से जो अक्षर या शब्द उड़ गये थे उनकी पूर्ति स्वयं करने लगे ।

कहीं कहीं पंक्तियाँ उपलब्ध नहीं थी, वहाँ पंक्तियाँ बैठानेका प्रयत्न किया। इन मुनीश्वर द्वारा अपने क्षयोपशम से योजित शब्द तो सही निकले ही थे, पंक्तियाँ भी अक्षरशः सत्य निकलीं। तब क्यों न भविष्य में दिया जानेवाला 'आगमोद्धारक' का बिरद समीचीन हो। ऐसे समर्थ और शासन-हित-चिंतक की निंदा करने वाले बहादुर भी बेचारे बहुत से थे। इसका मुख्य कारण ईर्ष्या और द्वेष था।

ज्ञानाभ्यास और धर्म प्रभावना ये दोनों कार्य यह मुनीश्वर एक साथ कर रहे थे। कुछ समय मरुधर में रहकर गुजरात में पधारे और पेटलाद में चातुर्मास किया।

तिथिविषयक भूली हुई अथवा लगभग छिन्नभिन्न हुई पद्धतिका अनेक शास्त्रों के वाचन, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा पेटलादके चातुर्मास में परिमार्जनकर उसकी पुनः शुद्ध स्थापना की और उसी वर्ष संवत्सरी के दिन से उसका अमल किया। यह विक्रम संवत् १९५२ का पुण्य वर्ष था।

वहाँसे विचरण करते करते छाणी पधारे। कुछ काल रह कर विशेष अध्ययन आगे बढ़ाया।

*

छठा अध्याय

पन्यास-पद

अहमदाबाद में—

अहमदाबाद जैन संघ के अपार आग्रह के कारण मुनीश्वर श्री आनन्द-सागरजीने चौदहवाँ चातुर्मास अहमदाबाद में किया। केतकी पुष्प यह नहीं कहता कि मैं यहाँ हूँ लेकिन उसकी सुगन्ध की बहार ही कह देती है कि केतकी पुष्प यहाँ है।

अब इन मुनीश्वर की ख्याति केतकी कुसुम के समान हो गई थी। सांसारिक ताप से संतप्त श्रोता दूर दूर से उनकी वाणी सुनने और उस ज्ञान गंगा में डुबकी लगाने आते थे। आते समय उनके हृदय उद्वेग के भार से भरे मालूम होते थे और जाते समय वाणी-गंगा में स्नान कर फूल-से हलके बने होते थे। अब मुनीश्वर की सेवा में शिष्य भी थे। कतिपय आत्माओं ने सेवा के हेतु अपना जीवन समर्पित किया था। आगमधर न बन सकें तो न सही, परन्तु आगमधर के चरणों की सेवा का लाभ ले कर कृतार्थ बनें तो भी अहो भाग्य, ऐसा सोच कर बहुत से भाग्यवान् सांसारिक जीवन को त्याग कर इन मुनीश्वर की सेवा में सदा के लिए आ रहे थे।

अमोघ-देशना (उपदेश)

वर्षा ने अमृत-बिन्दु बरसाना शुरू किया। ग्रीष्म के ताप से तप्त तृषातुर भूखी धरती शीतल और तृप्त हुई। दूसरी ओर कषायों के ताप

से तप्त और वासना से तृषातुर बनी हुई श्रोताओं की मनोभूमि मुनीश्वर की वाणीरूपी वर्षा की रिमझिम से शान्त और तृप्त हुई। कषाय का उत्ताप गया, वासना ने बिदा ली।

अहमदाबाद की जैन जनता आपसी वैर भाव भूल गई। कुछ अन्दरूनी झाड़-झंखाड़, कूड़ा कर्कट था सो सब स्वच्छ हो गया, क्योंकि इस दिव्य पुरुष का दिव्य प्रभाव चारों ओर अदृश्य रूप में सतत कार्यरत था।

भव्यों की भावना दिन दिन बढ़ती गई। फलतः मुनीश्वर को पदवी-प्रदान की बात चली। अहमदाबाद की जैन जनता ऐसी मुग्ध थी कि उसने सोचा—इन मुनीश्वर को आचार्य बना दें, शासन-नायक बना दें, तपागच्छाधिपति बना दें।

परन्तु यशकी लिप्सा से रहित ये मुनीश्वर पदवी ग्रहण करें यह असंभव था। तिस पर योगोद्वहन किये बिना आचार्य पद लेनेका महापाप तो ये स्वप्न में भी नहीं कर सकते थे। 'तपागच्छाधिपति' पद देना श्रावकों की भक्ति से उत्पन्न बावलापन था। ये मुनीश्वर जानते थे कि तपागच्छ के प्रत्येक समुदाय के मुखिया एकत्र होकर सर्व सम्मति से यह पदवी एक को दे सकते हैं। श्रावकगण अथवा शिष्य अपने गुरुको तपागच्छाधिपति बना दें यह आत्माको डुबानेवाली बात होगी। अजोगी (योगोद्वहन के बिना) आचार्य बनना आत्माको भव-भ्रमण में भुलाएगा। मैं 'तपागच्छाधिपति' विशेषणवाला बिरद धारण कर शासन की मूलभूत प्रणालिका भंग करना नहीं चाहता। जिसे लोकेषणा बहुत सताती हो वह भले अपने आपको तपागच्छाधिपति कहलवाए, परन्तु जब तक सर्वशिष्ट-मान्य न हो तब तक यह पद कैसे लिया जाय?

आखिर संघने गणीपद और पन्यासपदके लिए भावपूर्ण बिनतियों की वर्षा की। मुनीश्वर विधिपूर्वक आगमवाचनाओं के लिए इन पदवियो की आवश्यकता एवं शास्त्रीयता ज्ञात होने से ये पदवियाँ स्वीकार करने को सहमत हुए।

मंगल-प्रभात में कालग्रहण की विधि के साथ श्री भगवतीजी के योग शुरू हुए। शुद्ध आयंबिल और शुद्ध नीवी युक्त छ:मास से अधिकका महातप प्रारंभ किया। ज्ञान के द्वारा पदवीग्रहण करने की योग्यता प्राप्त की ही थी, पर अब उसमें तप जोड़ कर शास्त्रीयता भी प्राप्त कर ली।

पदवी-प्रदानका प्रसंग नज़दीक आता गया और अहमदाबाद की जनताका आनन्द उमरता गया। शहर में तरह तरह की तैयारियाँ होने लगीं। मंदिर मंदिर उत्सव शुरु हुए। धवल मंगल के गीत शुरू हुए। देश-विदेश के आदरणीय पुरुष पधारे। ध्वजा, तोरण, मेहराब, पताका, वैजयन्ति आदि से बाजारों, और मुहल्लों को सजाया गया। अशोक के तोरण बाँधे गये। मोती-अक्षत के चौक पूरे गये। राजकुमारका राज्याभिषेक होता हो ऐसे ठाट बाट और दबदबे के साथ यह महोत्सव मनाया गया।

अहमदाबाद धन्य हो गया—अहमदाबादका जैन संघ धन्य हो गया। इतिहासकारोंने इस वर्ष को ऐतिहासिक माना और सुवर्णाक्षरों से लिखा—विक्रम संवत् १९६० और श्री वीर निर्वाण संवत् २४३०।

विहार

पन्यास-प्रवर श्री आनन्द सागरजी गणीन्द्र ने चातुर्मास पूर्ण कर साधु-मर्यादा के अनुसार विहार किया। विहार के समाचारों से अहमदाबाद की जनता उदास हो गई। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अपना

कोई अत्यन्त निकट का स्वजन जा रहा हो। विदा देने आये हुए नर नारियों की आँखों से आँसुओं की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही थी। आँसुओं की धारा कहती थी-हमें निराधार बना कर कहाँ जा रहे हो! अब हमारा कौन आधार है ?

यह अश्रु-धारा साधु-मर्यादा में मुनीश्वर के लिए विघ्न नहीं बन सकी। विधिवत् विहार हुआ, और विचरते बिचरते बीजापुर तहसील के पेथापुर नगर पहुँचे।

पेथापुर-परिषद्

उस समय पेथापुर में एक विशिष्ट परिषद हो रही थी। पन्यास-प्रवर मुनीश्वर के पदार्पण के समाचार मिलते ही परिषद का रंग और बढ़ गया। जब वे परिषद के पटांगण में पधारे तब पटांगण जय-घोषणाओं के नाद से गाज उठा।

परिषद के अध्यक्ष, माननीय पदाधिकारी, सदस्य आदि अपने उच्च आसन छोड़ कर प्रेक्षकों की तरह सामने आये। मुनीश्वर को सुन्दर काष्ठमय उच्चासन पर बैठा कर अन्य सब लोग श्रोताओं के तौर पर नीचे सामने आ बैठे।

व्याख्यान

मुनीश्वर का प्रेरणात्मक व्याख्यान शुरू हुआ। व्याख्यान का अभिप्राय था " शासन की खातिर समर्पित होना। शासन हमारा है, और हम शासन के हैं। इस शासन की रक्षा और उन्नति के हेतु हम अपने प्राण न्योछावर कर दें तो भी कम है। शासन की रक्षा-सेवा करते हुए मृत्यु आ जाय तो वह मृत्यु भी धन्य है। उसका जीवन भी धन्य है। शासन-सेवा से विहीन जीवन पशु का सा जीवन है।

" आज शासन निस्तेज हो गया है, उसका कारण है हमारा प्रमाद, और उत्साहहीनता। तुम सब जाग उठो, आगे कदम बढाओ। कटिबद्ध हो कर कार्यारम्भ करो। यह जीवन खाने पीने के लिए नहीं बल्कि शासन की खातिर शहीद होने के लिए है। कायर लोग जगत में अच्छी तरह से न जी सकते है न मर सकते हैं। आप सब यहाँ एकत्रित हुए हैं तो एक शुभ संकल्प कर के जाइये कि शासन की सुरक्षा के लिए हम अपने प्राणों की बलि देने में भी नहीं हिचकेंगे। हम शासन के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देंगे। हम मरण का वरण करेंगे परन्तु शासन को निस्तेज नहीं होने देंगे।

पन्यास प्रवर मुनीश्वर के व्याख्यान का जादू का सा प्रभाव पड़ा। एक प्रकार की गर्मी आ गई। परिषद के प्राण तेजस्वी बन गये। वीर निर्वाण संवत् २४३१ के वर्ष की पेथापुर की परिषद सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई।

कपड़वंज की ओर

हमारे चरित्रनायक मुनीश्वर के जन्म से पवित्र और ख्यातिप्राप्त कपड़वंज के जैन श्री संघ के अग्रणियों ने पूज्य-प्रवर मुनीश्वर को कपड़वंज पधारने का हार्दिक आमन्त्रण दिया।

मुनीश्वर ने कहा—"क्षेत्र स्पर्शना।" विचरण करते करते कपड़वंज के किनारे आ पहुँचे हैं—ऐसे समाचार नगर में फैल गए। तुरन्त स्वागत की तैयारी के साथ संपूर्ण स्थानीय जैन संघ नगर के बाहर उमड़ पड़ा। संघ को गर्व था कि हमारे गाँव का लाड़ला आज शासन का विजयी रत्न सिद्ध हुआ है। नगर की सुन्दर नारियाँ विधाता पर वारी जाती थीं, इस महापुरुष को सच्चे मोतियाँ से बधाती थीं।

मोतियों के साथ अक्षत और सोने-चाँदी के सुन्दर चमेली के से फूल भी थे।

यह स्वागत-यात्रा नगर में घूमकर जिनमंदिर होती हुई उपाश्रय आई। उपाश्रय की मानवमेदिनी मुनीश्वर के व्याख्यान में एकरस बन गई थी। उसे समय का भान तक न रहा।

पन्यास प्रवर मुनीश्वर कपड़वंज नगर में जब तक रहे तब तक वहाँ का वातावरण धर्म-मय बन गया था, क्यों कि धर्मराजा स्वयमेव सदेह उस नगरमें पधारे थे। राजा हाजिर हो तब वह नगर राजा के अनुकूल व्यवहार करे यह बात तो जगद्विख्यात है।

चातुर्मास कल्प पूरा हुआ। विहार का समय आ पहुँचा। शिष्य परिवार के साथ सबने विहार किया तब नगर की सीमा तक आये हुए श्रावकों की आँखों से अश्रु-धारा बरस रही थी। श्राविकाओं को तो अपने पुत्र के वियोग का-सा असह्य दुःख हो रहा था। कपड़वंज का महान् सपूत कितने ही वर्षों बाद आया और थोडे ही दिनों बाद चलने लगा – यह दुःख बड़ा विषम था।

विदा समय की देशना

मुनीश्वर एक विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़े रहे। खड़े खड़े ही चातुर्मास-विदा की देशना आरंभ की।

"हे भव्यात्माओ! आप को मेरे प्रति जो अनुराग है उस अनुराग को धर्म में परिणत कर दें। मुझ पर प्रीति आपमें व्यक्ति-राग उत्पन्न करेगी, जब कि धर्म की प्रीति आपको गुणानुरागी बनाएगी। आप सुन्दर धर्म-आराधना करते हैं, परन्तु अभी तक यह आराधना

मोक्ष दिला सके ऐसी नहीं है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए पूर्णतः आत्मानुलक्षी बन कर धर्म-आराधना कीजिये। जल्दी से जल्दी आत्मा की मुक्ति हो, और हम सब शीघ्र ही मोक्ष-सुख प्राप्त करें यही शुभकामना।

अन्त में पुनः एक बार बता दूँ कि आप मेरे प्रति अपने राग को धर्म की ओर मोड़ियेगा। इस तरह से आपकी आत्मा का उद्धार जल्दी होगा। धर्म के प्रति ऐसा राग होगा तब शासन विजयी होगा।

इतना कह कर परोपकार-प्रवण मुनीश्वरने विहार आरंभ किया।

*

सातवां अध्याय

सूरत शहर में

सूरत शहर ! सूरत के लोग खान पान के बहुत शौक़ीन हैं। भारत के शहरोंमें सूरत ऐसा शहर है जहाँ तरकारी सब से अधिक खाई जाती है। यहाँ के निवासी सुखी शान्त और समझदार हैं। उनमें दुःख को भूलने का माद्दा गज़ब का है। वे बुद्धि और कला का समन्वय साधना जानते हैं। यह सब होते हुए भी इनका धर्म-प्रेम भी अद्‌भुत है।

सूरत में नन्दीश्वर द्वीप के मंदिर के फलकों पर १७५ वर्ष से भी पुरानी चित्रकला के नमूने हैं। वहाँ एक सिद्धगिरि का पट है जिसमें सेठ मोतीशा कीं टूँक नहीं क्यों कि यह पट सेठ मोतीशा की टूँक बनने से पहले का है। पूज्यपाद आचार्यदेव श्री ज्ञानविमल सूरीश्वरजी महाराज के मार्गदर्शन के अनुसार इस मंदिर के फलकों पर विशिष्ट कलामय कार्य हुआ है।

सूरत धनकुबेरों का नगर माना जाता था। मराठा, मुगल और ब्रिटिश राज्यों ने कई बार बुरी नीयत से इस नगर में लूटपाट, तोड़-फोड़ कर इसे तहस नहस करने का प्रयत्न किया है। फिर भी सूरत पर महात्माओं की सदा कृपा दृष्टि रही है अतएव समय, नियति और अत्याचारी सल्तनतों के अनेक आक्रमणों के बावजूद यह शहर ज्यों का त्यों बना रहा है।

स्वागतम्

आज फिर अध्यात्मशील, वचनसिद्ध तथा अद्वितीय विद्वान् दिव्य मुनीश्वर सूरत के सीमान्त में पधारे हैं। वनपालक ने श्री संघ को शुभ समाचार दिये। सूरत की खुशमिजाज जनता इस समाचार से और भी खुश हुई। सूरती लोग बड़े भावुक हैं। उनमें योगी पुरुषों का आनंद लेने की और भोगी पुरुषों का आनंद लेने की भी कला है।

स्वागत की तैयारियाँ तो बहुत पहले से चल रही थीं। सूरत के भोजन की तरह यहाँ के 'सांबेले' भी प्रसिद्ध हैं। 'सांबेला' क्या है? देखे बिना इसका सही खयाल आना कठिन है। इक्का, शिकरम, तांगा, खुली मोटर, लारी आदि को फूल, रेशमी पट, कमखाब, रंग बिरंगी कपड़े, जरी, फूल, अशोक के पत्तों आदि से सजाया जाता है। सजधज कर इन्हें जब जलूस में लाया जाता है तब देखनेवालों को पता भी नहीं लगता कि यह रथ है या मोटर, इक्का है या नाव, तांगा है या बैलगाड़ी? इस विशिष्ट रचना को 'सांबेला' कहते हैं। एक सांबेला सजाने में सौ से हजार रुपये तक या उस से अधिक भी व्यय होता था। इस स्वागत यात्रा की एक विशिष्टता यह थी कि इस में सूरत के सारे बैंड, ढोली तथा शहनाई-वादक शामिल हुए थे।

अनेक अलबेले साँबेलों की सजधज के साथ स्वागत यात्रा प्रारंभ हो कर ध्वजा, तोरण, पताका मेहराब आदि से सुसज्जित राजपथ से होती हुई जिनमन्दिर पहुँची, जिनमन्दिर के दर्शन कर के उपाश्रय पहुँची।

उपाश्रय में मांगलिक व्याख्यान हुआ। सूरत के लोग मुनीश्वर की सुमधुर देशनारूपी मुरली से ऐसे डोलने लगे जैसे मुरली के मधुर स्वरों से फणीधर डोलते हैं। प्रथम दिन की दिव्य वाणी से ही सूरत

के श्री संघने पहचान लिया कि ये महात्मा वर्तमान समय के सर्वोत्तम मुनिरत्न हैं। अतीत के श्रुतधरों की स्मृति इन के द्वारा हरी हो जाती है। सूरत में जौहरियों की कमी नहीं। उन्होंने एक दिन में ही शासन के हीरे को परख लिया।

चैत्य परिपाटी

पन्यास-प्रवर मुनीश्वर के व्याख्यान हररोज़ होने लगे। सुरत के लोगों को धीरे धीरे व्याख्यान सुनने का सुव्यसन हो गया। आबालवृद्ध सब को व्याख्यान का लाभ मिले इस हेतु से चैत्य परिपाटी का आयोजन किया गया। सूरतमें यह चैत्य परिपाटी विशिष्ट और प्रथम मानी जाती थी।

चतुर्विध संघ के साथ सूरत के प्रत्येक जिन मंदिर के दर्शन की विधि शुरू हुई। दर्शन के बाद उस उस विभाग के उपाश्रय या मैदान में धार्मिक व्याख्यान दिया जाता। मुनीश्वर के दिव्य अतिशय के पुण्य प्रताप से सूरत की जनता इस कार्यमें श्रम एवं भूख को भूल जाती थी।

इन महात्मा पुरुष को प्रतीत हुआ कि सूरत की जनता को योग्य मार्गदर्शक मिले तो यहाँ की जनता का धर्म-कार्यमें अच्छी तरह उपयोग हो सकता है। इस की तन-मन-धन की शक्ति का शासन के हेतु सुव्यवस्थित उपयोग करना प्रशंसनीय होगा।

निर्ग्रन्थ के द्वारा ग्रन्थोद्धार

उन दिनों आगम दुर्लभतर होते जा रहे थे। आगम जिन ग्रन्थ-भंडारों में थे उन के संरक्षकों की संकुचित वृत्ति के कारण ये ग्रन्थ सड़ रहे थे। इन पतित-पावन, उद्धारक ग्रन्थों को अन्धकार में से

प्रकाश में कौन लाए ? दूसरी ओर मुद्रण-पद्धति का प्रारंभ हो चुका था। वास्तव में मुद्रण का प्रारंभ हस्त लेखन पद्धति के लिए मृत्यु की घड़ी सिद्ध हुआ, क्यों कि इस से हस्त-लेखन कला अदृश्य होने लगी। हाँ, अभी बिल्कुल ही नष्ठ नहीं हुई थी, परन्तु अपनी मृत्यु की घडियां गिन रही थी।

ऐसी विषम परिस्थिति में पवित्र आगमग्रन्थों की चिंता मुनीश्वर को अत्यन्त व्याकुल कर देती थी। आगम-ग्रंथों की ऐसी हालत से मुनीश्वर को नींद हराम हो गई। बाहर से सस्मितवदन शान्त और मूर्तिमान उत्साह के समान दीखनेवाले ये दिव्य पुरूष भीतर से एकान्त में बहुत बेचैन हो उठते थे।

पहले भव्य जीवोद्धारक जिनवाणी के ठोस नमूनों के समान ये पवित्र आगम अकाल के कराल पंजे में फँसे थे। उसके बाद श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण महाराज ने श्री श्रमणसंघ एकत्रित कर सब को जो जितना कण्ठस्थ था सो ताड़पत्रों पर लिखवा लिया, और श्रमण-संघ नायकों ने पारस्परिक स्मृति का मेल कर संघ के लिए श्रोतव्य बनाया।

आचार्य देव श्री हेमचन्द्राचार्य ने प्रत्येक आगम राजेश्वर श्री कुमारपाल के द्रव्य से सुवर्णाक्षरों तथा रौप्याक्षरों में लिखवाया, तथा स्याही से भी लिखवाया। श्री वस्तुपाल तेजपाल जैसे महामन्त्रियोंने भी लिखवाया था और अजयपाल जैसे अनार्याचरण वाले राजाओंने आगमों को ज्वालाओं में झोंक दिया। मुगलों ने उनकी होली की। अनार्य देश से आये हुए गौरांगो ने भोले लोगों को भुला कर प्राचीन ग्रन्थ खरीद लिए तो कइयों को धमका कर जबरदस्ती से छीन लिया।

बीच के समय में संयोगवशात् शिथिल बने हुए फिर भी श्रद्धामें सुदृढ यतिवरोंने आगम-ग्रन्थों को अपनी सम्पत्ति मान कर उनकी रक्षा की, कइयों ने छिपा रखे, कइयों ने अलग अलग लिखवाये। यह भी श्री संघ का सौभाग्य समझिए।

तत्पश्चात् यतिवर्ग शिथिलतर बनता गया। और यूरोपीय कूटनीति ने उन में फूट डाली। धीरे धीरे उपाश्रयों के अग्रणी श्रावकों ने मालिक बन कर भंडारों पर कब्ज़ा कर लिया। यदि ग्रन्थों की सुरक्षा और मरम्मत की होती तो अच्छा होता परन्तु कई अभागे कार्यकर्ताओंने उन्हें बेच दिया। कइयों ने बेचा तो नहीं परन्तु योग्य सम्हाल के अभाव में ये ग्रन्थ भंडारों में रहे रहे जीर्ण-शीर्ण-विदीर्ण हो गये।

मुनीश्वर की भावना

आगम ग्रन्थों की ऐसी अवदशा से मुनीश्वर को बहुत ही दुःख हुआ। उनको भगवान की वाणी की रक्षा के लिए बहुत चिंता होने लगी। वे सोचते, हे स्वामि ! तुम्हारी वाणी को किस प्रकार बचाऊँ। इस के बिना दुनिया का कल्याण कौन करेगा ? इस कलिकाल में मोहादि विषधरों का विष कौन दूर करेगा ?

"क्या इन आगमों को मुद्रित करवा दूँ ? यह अनुचित होगा न ? छपाई में प्रूफ रद्दी में जाएँगे। अमूल्य आगम वाणी का द्रव्य से मोल-तोल होगा। अयोग्य आत्माओं के हाथ पड़ने से अनर्थ होने की संभावना है। ये पामर आत्मा रक्षक साधन को भक्षक बना देंगे। उनके लिए अमृत जहर बन जाएगा। आगमों के प्रति जो श्रद्धा और पूज्यभाव है उसमें कमी होगी। दूसरी ओर यदि आगम ग्रन्थों को मुद्रित नहीं

किया जाता तो भव्यात्माओं के उद्धार का रहा-सहा साधन भी लुप्त होगा । लेखनकारों की संख्या घटती जा रही है, जो हैं सो भी प्रमादी और अनभ्यस्त । अत: लेखनकार्य कठिन होता जाता है । आर्थिक दृष्टि से भी मुद्रण के सामने हस्तलेख की पद्धति टिक नहीं सकती ।

छपवाने में भी अनेक समस्याएँ हैं, और न छपवाने में भी बहुत हैं । हे जगद्गुरु । जगत्पते ! मैं क्या करूँ और क्या न करूँ ? हे भगवन् । तुम्हारे मुख से प्रसूत अमूल्य वचनों के संग्रह-रूप आगमों को अनिवार्य परिस्थितियों के कारण मुद्रित करवाने में जो अपराध हो उसे क्षमा करना । मैं अपने लिए कुछ नहीं कर रहा हूँ, परन्तु भविष्य में आनेवाले अन्धकार को रोकने के लिए यह कार्य कर रहा हूँ । इसमें जो भूल हो जाय उसे क्षमा करना ।

आगम-ग्रन्थोद्धार की बात

अभी अनोखी चैत्य-परिपाटी चल रही थी । इसी अरसे में एक मंगलमय दिन व्याख्यान के बीच मुनीश्वर ने इस का जिक्र किया ।

'हे पुण्यशालियो ! हम सब वीतराग परमात्मा के दर्शन को निकले हैं, क्यों कि हम सब संसार-समुद्र को पार करना चाहते हैं । भव-सागर तरने के साधन बहुत ही सुरक्षापूर्ण माने जाते हैं । उनमें से एक तो यह चैत्यपरिपाटी है जिसका अमल हम लोग आजकल रोज कर रहे हैं । परन्तु दूसरा एक साधन और है जो प्रथम साधन से सापेक्षतया बढ़ चढ़ कर है । जिनचैत्य से संसार तरा जाता है परन्तु यह बात बताता कौन है ? जिनवाणी । जिनवाणी का संग्रह है जिनागम । श्री जिनचैत्य-परिपाटी के साथ जिनागम को याद करना चाहिए । जिनेश्वर की आज्ञा उन में है । उस आज्ञा का पालन करना

धर्म है। हमने जिनचैत्य परिपाटी की आज्ञा का पालन किया परन्तु जिनागमों का ?

"आज हमारे अज्ञान और अकर्मण्यता के कारण पूज्य आगमों की कैसी दुर्दशा हो रही है इस के लिए भी एक महत्त्व का कार्य कर लेना आवश्यक हैं। आज अनिवार्य परिस्थितियों को लक्ष में रखते हुए आगमों का मुद्रित करवाना अनिवार्य हो गया है। पूजनीय श्रमण संघ की स्मरण शक्ति एवं लेखन शक्ति कम हो गई है, अतः मुद्रण करवा लेना अनिवार्य है।

"मुद्रण पद्धति की अपेक्षा लेखन पद्धति बहुत निर्दोष और उत्तम है। लेखन से भी स्मरण उत्तमोत्तम है, परन्तु अवसर्पिणी काल के प्रताप से मुद्रण में दोष होते हुए भी उसका आश्रय लेना पड़ता है। यह तो व्यावहारिक बात है कि जहाँ लाभ अधिक हो वहाँ थोड़ा सा नुकसान गौण बन जाता है। अतः विशेष लाभ के कारण आगमग्रन्थों का मुद्रण कराना आवश्यक हो गया है। इस के लिए योग्य अवसर पर भावना रखना।"

पूज्य मुनीश्वर की यह विशेषता थी कि वे किसी काम के लिए बहुत दबाव डालने की शैली में कुछ नहीं कहते थे। संक्षेप में उतना ही कहते जिस से सब को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जाय। श्रोताओं को कितना करना चाहिए यह उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर था।

एक लाख रुपये

मुनीश्वर की सुधारस के समान वाणी सुन कर श्रोताजन मंत्रमुग्ध हो गये। *व्याख्यान पूर्ण हुआ। पूज्य पाद मुनीश्वर 'सर्वमंगल...'* बोलने वालें ही थे कि एक पुण्यवान ने खड़े हो कर विनम्रतापूर्वक कहा—

"पूज्यवर मुनिराज के उपदेश से हमारे संघ की आंखें खुलीं हैं। हमें नया मार्गदर्शन तथा नूतन प्रकाश मिलता रहा है। फलतः हम अपना कर्तव्य समझने लगे हैं। हम अपना संपूर्ण जीवन जिनशासन को समर्पित करने में असमर्थ हैं क्योंकि अर्थ और काम की लालसाएँ अभी पूर्णतया नष्ट नही हुई हैं फिर भी पूज्य मुनिराज के बताये हुए मार्ग में भी हम यथाशक्ति पुण्य कार्य करेंगे। इस पुनीत अवसर पर मैं अपने पिताजी के स्मरणार्थ सिर्फ एक लाख पूजनीय आगमों एवं प्राचीन धर्मशास्त्रों के मुद्रण-कार्य के लिए देता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि सूरत का श्री जैन संघ हमारी यह तुच्छ रकम स्वीकार कर हमें उपकृत करे।

यह एक लाख रुपयों का दान विक्रम संवत् १९६४ के वर्ष का है। आज अर्थात् संवत् २०२८ में उसका मूल्यांकन करे तो करीब साढ़े बारह लाख का दान करे और जिसने सं. १९६४ में एक लाख का दान किया हो उन दोनों का दान समान है। आज रुपये का साढ़े बारह गुना अवमूल्यन हुआ है।

आगमोद्धारक

एक संस्था की स्थापना की गई। उदारमूर्ति श्री गुलाबचंदभाई तथा उनके परिवार ने अपने पिता की स्मृति में एक लाख रुपये दान दिये। अतः श्री संघने उनके पिता की याद में उक्त संस्था के साथ उनका नाम जोड़ कर उस संस्था का नाम 'शेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड' रखा।

इस संस्था के द्वारा एवं 'आगमोदय समिति' नामक संस्था के द्वारा मुनिराज ने अनेक आगमग्रन्थ तथा चरित्र प्रकाशित करवाये।

श्रद्धावान् श्रावक संघ ने आर्थिक सहायता दी परन्तु इस से मुनिराज का काम कई गुना बढ़ गया। भंडारों के तहखाने में धरी हुई हस्त-प्रतियाँ प्राप्त करना कठिन था। बड़ी मुश्किल से कुछ मिलीं।

उनमें से कुछ अशुद्ध थीं, कुछ अत्यंत अशुद्ध। कुछ की लिखावट अच्छी थी तो कुछ के अक्षर मक्खी की टाँग जैसे। कुछ पोथियाँ पूर्ण थीं तो कई नष्ट भ्रष्ट, पानी में भीग कर मुड़ी हुई थीं। कुछ ग्रन्थों के पृष्ठ आपस में चिपक गये थे। इन चिपके हुए पन्नों को अलग करने की भी समस्या थी। इस भगीरथ कार्य में कितना श्रम, कितना धैर्य, कितनी कुशलता, कितनी तत्परता चाहिए इसका अनुमान तो पूज्य आगमोद्धारक महाराज को यह कार्य करते देखने से ही हो सकता था।

यह कार्य वास्तव में बहुत ही कठिन और अटपटा था। किसी वैज्ञानिक को कोई आविष्कार करने अथवा कोई अज्ञात प्रदेश खोज निकालने में जो श्रम करना पड़ता है वैसा ही श्रम अथवा उस से भी अधिक श्रम इस कार्य में हुआ। पूज्य मुनीश्वर इस कार्य में अपने आप को भूल जाते। ऐसे अगाध और अविरत परिश्रम के अन्त में आगम अंधकार से प्रकाश में आए हैं।

जब आगमोंकी छपाई शुरू हुई तब कुछ मुनिवर इस प्रवृत्ति को बुरी मानकर तो नहीं परन्तु हमारे चरित्र नायक मुनिराज की 'आगमोद्धारक' के रूप में बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देख कर ईर्ष्यावश विरोध करने लगे। परन्तु खास खूबी की बात तो यह है कि विरोध के नेतृत्व का झंडा उठानेवाले ही आगमों की छपी हुई प्रतियाँ सबसे अधिक संख्या में खरीद लेते थे। इस तरह अशोभन विरोध के कारण मुनीश्वर "आगमोद्धारक" के रूप में जग-प्रसिद्ध हुए, गुणीजनों की वाणीने स्वयं उन्हें आगमोद्धारक का पद दे दिया।

यह आगमोद्धारक का पद उन्हें विधिवत् नाण-स्थापना पूर्वक दिया गया हो ऐसी बात नहीं है, परन्तु आगमों को प्रकाश में लाने और उन्हें शुद्ध करने का भगीरथ कार्य करने के फलस्वरूप उनका "आगमोद्धारक" नाम गुण पर आधारित स्वयंसिद्ध हुआ।

आठवाँ अध्याय

मोहमयी में निर्मोही

हेमन्त के पश्चात् शिशिर और पतझड़ की ऋतु आती है। जब पूज्य मुनीश्वर के विहार की घोषणा हुई तो सूरत में पतझड़ का सा धुँधला वातावरण हो गया। लोक-हृदय में अरमानों के पत्ते झड़ने लगे। सूरत-वासी सोचने लगे कि सन्त के बिना वसन्त उजाड़ मालूम होगा। पू० आगमोद्धारक को रोकने के अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु यदि मुनीश्वर रुक जाएँ तो अप्रतिबद्ध विहारी कैसे कहला सकते हैं? मुनीश्वर श्री आगमोद्धारक ने विहार किया। सूरत की जनता अपने कंठ के हार को जाते देख कर उदास हो गई।

मोहमयी

मुंबादेवी पर से शहर का नाम 'मुंबई' हुआ। (हिन्दी में इन्हें 'बम्बादेवी' और 'बंबई' कहते हैं।) इस शहर की रचना इतनी आकर्षक है कि वहाँ आनेवाले का वहाँ से लौटने को मन नहीं करता। वहाँ पर पँचरंगी लोग मेलजोल से रहते हैं। उनकी रग रग में रंगराग भरा हुआ है। जहाँ जैन जाते हैं वहाँ व्यापार फूलता-फलता है ऐसा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इस नगर में व्यापार खूब तेजी से चलता है, अतः इस नगरी का 'मोहमयी' नाम सार्थक है।

मुनीश्वर श्री आगमोद्धारक जी ने सोचा कि बंबई के लोग और विशेषत: वहाँ के जैन लोग यदि रंगराग के रंग में रंग जाएँगे तो

उनका यह रंग कौन उतारेगा ! वैराग्य का रंग कौन लगाएगा ? अतः बम्बई चलें। विहार आरंभ हुआ, बीच के गाँवों और शहरों का उद्धार करते हुए आगमोद्धारकजी बम्बईवासियों का उद्धार करने बम्बई पधारे।

वहाँ की स्वागत-यात्रा की तो बात न पूछिये। वसन्त के आगमन पर बन-निकुंज जिस प्रकार नव-पल्लवों, नव कुसुमों तथा कोकिल-कंठके मधुरस्वरों से उसका स्वागत करते हैं वैसे इन सन्त महात्मा के पधारने पर मोहमयी के मानवोंने हार्दिक स्वागत किया।

लालबाग

लालबाग का विशाल उपाश्रय और उसमें आगमोद्धारक की अमोघ देशना ! उपाश्रय खंड अखंड मानव-समूह से भरने लगा। शान्ति और स्वस्थता भी प्रशंसनीय थी। विद्वान् और श्रद्धालु, छोटे और बड़े सब आते, वाणी सुनते, जितना हृदय में भरा जाय उतना भरते, पान कर सकते उतना करते और पुनः दूसरे दिन दौड़ते आते थे। कोई आमंत्रण की राह नहीं देखता था। बैठने को जगह मिल जाए तो बड़े भाग। आगमोद्धारक जी यहाँ पर अधूरे फिर भी मधुर नाम से सुख्यात हुए। सब उन्हें 'सागरजी महाराज' कहने लगे। इस छोटे प्यारे नामने बम्बई की जनता पर अनोखा जादू कर दिया। 'सागरजी' 'सागरजी' बोलते हुए लोग हर्ष-विह्वल हो जाते।

शिखरजी आन्दोलन

ऐसा मालूम होता है कि यूरोपवासी गोरी चमडीवालोंने भारत के सभी धर्मों को भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा ली होगी। उन लोगों की ४७५ वर्षों की नीति-रीति पर से अवश्य ऐसा अनुमान होता है।

उदार नीति तथा कूट नीति के आधार पर उन्हें कई जगह सफलता भी मिली, फिर भी आर्य संस्कृति के केन्द्रस्थान भारत में उनका सोचा हुआ पूरा नहीं हुआ। हाँ, उन्हों ने कहीं कहीं तोड़फोड़ की थी। और परोक्ष ढंग से और भी बहुत सी तोड़फोड़ की योजनाए गुप्त रूप से जारी थीं।

सफेद प्रजा के कुछ सत्ताधीश लोगोंने शिखरजी तीर्थ की शस्य-श्यामला और दिन को सूर्य की किरणों से अलिप्त रह सकने वाली पवित्र भूमि पर अपने राक्षसी शौक और शिकार की सुविधा के लिए आवास बनाने की घोषणा की। यूरोपीय लोगों के रहने के लिए आवास बनाना तो गौण था, वस्तुतः इसके पीछे धर्म-स्थानों और पवित्र यात्रा-धामों के पर्वतों को भ्रष्ट करने की निंदनीय वृत्ति छिपी हुई थी। पूज्य आगमोद्धारक इस रहस्य को जान गए। उन्होंने बम्बई में इस प्रश्न पर आन्दोलन शुरू करने का विचार किया। उचित समय देख कर बम्बईवासियों की तन्द्रा दूर करनेवाले व्याख्यानों की झड़ी प्रारंभ कर दी, जिससे सब का प्रमाद दूर होने लगा।

राजनीतिक आन्दोलन शुरू करना आसान है परन्तु धार्मिक आन्दोलन शुरू करना सीधी चढ़ाई जैसा कष्ट-साध्य है। राजनीतिक आन्दोलन में कई लोगों के व्यक्तिगत स्वार्थ, महत्त्वाकांक्षाएँ और सत्ताकी भूख छिपी होती है, परन्तु धार्मिक आन्दोलन में ऐसे किसी तत्त्व के लिए स्थान न होनेके कारण यह आन्दोलन अधिक कठिन होता है। ऐसे आन्दोलनका नेतृत्व पू. आगमोद्धारकजीने अंगीकार किया।

सिंह गर्जना

परम-पवित्र शिखरजी तीर्थ की पवित्रता सुरक्षित रहे इस हेतु से एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। पूज्य आगमोद्धारश्रीने इस सभा में बड़ी जोशीली भाषामें भाषण दिया जिसका मुख्य विषय था तीर्थ-रक्षा।

"पुण्यशालियो ! आज हमारे लिए भारी संकट की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस अवसर पर हमारे जैनत्वकी-हमारे चैतन्य की परीक्षा होगी आप लोग जानते होंगे कि राज्य-सत्ताने ऐसी नीति घोषित की है कि 'यूरोपियन लोग किसी भी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।' महारानी विक्टोरियाने भी ऐसा ढिंढोरा पिटवाया है, फिर भी यह कूटनीतिज्ञ प्रजा श्री शिखरजी पर्वत पर आवास बाँधने का इरादा रखती है। यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है।

"आज शिखरजी पर्वत की बारी है तो कल श्री सिद्धाचलजी पर्वत की बारी आएगी। परसों और किसी पर्वत की। फलतः हमारे पवित्र तीर्थस्थान अपवित्रता में परिणत कर दिए जाएँगे, शांतिके स्थान पर अशांति फैलेगी।

"आज यदि हम लोग समता या शांतिके नाम पर सहन कर लेंगे तो कल ये लोग आप के हाथ में से पूजाकी कटोरी भी छीन लेंगे। एक खतरा अनेक खतरों को जन्म देता है। हम लोग अभी से नहीं चेतेंगे तो बाद में चेतने का कोई अर्थ नहीं होगा।

"यदि आपकी रगोंमें जैन धर्म की भावना का लहू बहता हो, यदि आपमें पुरुषत्व हो, यदि आप वीर के पुत्र हो तो जागिये, ब्रिटिशरों से कह दीजिए 'तुम लोगोंने हमें कुचल डालने के लिए ऐसे

उपाय करना तय किया है परन्तु हमें यह मंजूर नहीं है। अब हम जाग्रत हैं।

'तुम लोगोंने हमारा धन लूटा है, अब हमारा धर्म लूटने चले हो लेकिन खबरदार! हम अपने तन, मन और धन को कुर्बान करके भी अपने धर्म और धर्म-स्थानों की रक्षा करेंगे। जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं तब तक तुम अपनी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकोगे।'

"सुदर्शन के साथ अन्याय करनेवाले राजाको आखिर झुकना पड़ा था। साध्वीजी का शील भंग करने का इच्छुक लुटेरा राजा गर्दभिल्ल मृत्यु के मुख में जा गिरा था।

"धर्म-भ्रष्ट करने के इरादे से हमारे धर्म-स्थानों अथवा पवित्र पर्वतों पर जो हस्तक्षेप हो रहा है सो हमें नहीं ही सहना चाहिए। आप लोग कटिबद्ध हो कर अहिंसक लड़ाई के द्वारा ब्रिटिश सल्तनतको दिखा दीजिए कि हम अभी जिन्दा हैं। हमने हाथों में चूडियाँ नहीं पहनी हैं। यदि आप शासन रक्षा के लिए मर मिटेंगे तो इस भव में भी कल्याण है और परभव में भी कल्याण है।"

पन्यासप्रवर मुनिराज श्री आगमोद्धारकजी के व्याख्यान हर रोज होने लगे। उनकी ओजस्विनी विद्युत्-जिह्वा से निकला हुआ एक एक शब्द हर किसीको उत्तेजित कर देता था। उनकी सभा में सरकार की ओर से गुप्तचर रखे जाते थे। कई भद्र जीवों को भय रहता था कि मुनिराज पर वारंट आएगा। इसलिए बडे बड़े जैन अग्रणियोंने आकर उन्हें समझानेका प्रयत्न किया तब पूज्य मुनिराजने कहा, "मैं कुछ झूठ नहीं कह रहा हूँ। मुझे राज्य के साथ कोई दुश्मनी नहीं है, परन्तु धर्म तथा धार्मिक स्थलों पर जो कदम उठाए जा रहे हैं उन से मेरा

विरोध है। ऐसा विरोध करना शास्त्र की आज्ञा है। मैं कोई अपराध नहीं कर रहा हूँ।"

इस में से एक विराट शक्ति पैदा हुई और पवित्र गिरिराज श्री शिखरजी पर आवास बनाने की योजना ब्रिटिशरों को विवश होकर छोड़ देनी पड़ी।

पूज्य आगमोद्धारक महोदय तथा अन्य स्थानों के श्री संघ की सलाह से श्री आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी ने 'श्री शिखरजी पर्वत' खरीद लिया। पूज्य आगमोद्धारक महाराज साहब के नेतृत्व में एकत्रित जैनोंके संघबल का ही यह परिणाम था।

*

नौवाँ अध्याय

अन्तरिक्षजी के किनारे

'साधु तो चलता भला।' मोहमयी नगरी में अनेकों के मोह को क्षीण बना कर चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य आगमोद्धारकश्री ने विहार किया। यह विहार अनोखा था। चतुर्विध संघ के साथ तीर्थ-यात्रा को जाते हुए जन-समूह से शोभित यह विहार था।

इस विहार में निष्कांचन भी थे और धनकुबेर भी थे, विद्वान् थे और अल्पमति भी थे, त्यागी और रागी, नामी-अनामी, बच्चे, जवान, बड़े बूढे सब तरह के लोग थे। ये सब एक बात में समान थे। सब को छह 'री' पालते हुए यात्रा करने की अभिलाषा एक-सी थी। सब नंगे पैरों चलते थे। इस संघ के संघपति श्रीयुत् धर्मात्मा अमेचंद लीलाचंद झवेरी थे।

कहाँ जा रहे थे?

ये सब मोक्षनगर के लिए रवाना हुए सार्थ के लोग थे, तीर्थ-धाम अन्तरिक्षजी जा रहे थे, जहाँ पुरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान की अर्धपद्मासनयुक्त घनश्याम मूर्ति बिराजमान थी।

इतिहास कहता है कि महाराजा श्री रावण ने यह प्रतिमा बनवाई थी। एक घुड़सवार नीचे से गुजर सके इतनी यह जमीन से बिना सहारे अधर में उठी हुई थी। चारों ओर कहीं कोई आलंबन नहीं था। परन्तु पतित कालके प्रभाव से अब एक कोना पृथ्वी को छू

गया है। हाँ, एक कोने को छोड़ कर सभी ओर से एक अंग पोंछने का वस्त्र नीचे से निकल सके उतनी जगह बाकी है। आगामी २५-५० वर्षों बाद तो इतना भी शेष रहेगा या नहीं यह शंकास्पद है।

इस तीर्थ की यात्रा के लिए आता हुआ पाद-विहारी संघ तीर्थ की तलहटी में पहुँचा। संघ के पहुँचने से पहले कलिकाल ने एक भयानक उपसर्ग को वहाँ भेज दिया था। संघ को कल्पना भी नहीं थी कि शान्ति के धाम रूप तीर्थस्थान में दुष्टों के द्वारा अशांति की अग्नि प्रज्वलित की जाएगी।

दिगंबरों का दंगल

पाद-विहारी संघ के हृदय में उस रोज आनन्द था। तीर्थ-प्रवेश की स्वागतयात्रा चल रही थी। पूज्य मुनीश्वर श्री आगमोद्धारकजी को लेने तथा उनके दर्शनार्थ अनेक आगन्तुक इस स्वागतयात्रा में शामिल हुए थे।

संघ के साथ एक कलामय रथाकार जिनमंदिर था। यह जंगम मंदिर इस लिए साथ रखा गया था कि बीच के स्थानों पर धर्म-प्रेमी आत्माओंको प्रभु के दर्शन का विरह न सहना पडे और भगवान् की भक्ति हो सके।

स्वागतयात्रा जिनमंदिर के पटांगण में पहुँची। जब जंगम काष्ठ मंदिर के भगवान को पूजन-विधि के लिए जिनमंदिर में ले जाया जाने लगा तब दिगंबर सम्प्रदाय के वस्त्रधारी श्रावकोंने इसका विरोध किया—"यह प्रतिमा मंदिर में नहीं ले जाने दी जाएगी।"

पूज्य आगमोद्धारक महाराज ने कहा, "यह हमारा मंदिर है अतः हम भगवान को अंदर ले जाने के हकदार हैं। यदि हमारा अधिकार न हो तो हम प्रतिमाजी को अन्दर नहीं लें जाना चाहते। यदि आप लोग ऐसा लिखित सबूत दिखा सकें कि हमारा अधिकार नहीं है तो हम अपना आग्रह छोड देंगे।

दिगंबरों के अग्रणी यह कहते हुए बाहर गये कि "हमारे पास लिखित सबूत है और हम उसे बताने को तैयार हैं। वे लोग लिखित आधार के बदले गुंडों को ले आये। अचानक भयानक आक्रमण कर दिया गया। विवेकहीन दिगंबरों ने तीर्थंकर की प्रतिमा और पूज्य साधु भगवंतों की मर्यादा कीं भी रक्षा नहीं की। नंगों से मर्यादा की आशा रखना वेश्याओं से शील की आशा रखने के समान है।

इन विवेकहीनोंने पूज्य आगमोद्धारक जी को भी नहीं छोड़ा। उन पर बड़े जोरों की चोट की गई। पूज्य श्री को बचाने की कोशिश करनेवालों में से किसी का सिर फूटा, किसीका हाथ टूटा। कई बेहोश हो कर गिर पड़े। तीर्थ-भूमि धर्मप्रेमियों के रक्त से लाल हो गई।

आखिर सरकारकी कुमुक आ पहुँची। कई लोगों को गिरफ्तार किया गया। मामला अदालत में पहुँचा।

उदारता का उदधि

आगमोद्धारजी तो बिलकुल शान्त, सस्मित वदन, स्वाध्याय-रत बैठे हुए थे। दिगंबरों ने अपने बचाव के लिए पूज्य श्री के खिलाफ जुर्मनामा पेश किया था। पूज्य आगमोद्धारकजी क्षमा और संयम की मूर्ति थे। ये महापुरुष तो अपराधी को क्षमा करना ही जानते थे, दंड की बात क्या, विचार तक नहीं था।

न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ने विनम्रता पूर्वक पूछा— "दिगंबर लोग आपको कसूरवार कहते हैं। आपको यह वैमनस्य और दंगा फैलानेवाला बताते हैं। आप इस सम्बन्ध में क्या कहना चाहते है?"

पूज्यश्रीने उत्तर दिया—"हमने या हमारे श्रावकोंने ऐसा कोई बर्ताव नहीं किया है जिससे वैमनस्य या दंगा हो। हम तीर्थयात्रियोंके रूप में आये हैं। मन्दिर हमारा है। हम अपने भगवान की पूजाविधि के लिए उन्हें मन्दिर में ले जा रहे थे तब हमें रोका गया। इतना ही नहीं, हम पर घृणित आक्रमण किया गया। हमारे भगवान की आशातना की। ऐसे समय मैंने धर्मगुरु के रूप में जो करना चाहिए वही किया है। केवल अपने भगवान की मूर्ति की सुरक्षा के लिए बात की थी।"

दिगंबरों के वकीलने प्रश्न पूछा—"आपको भी विरोधी लोगोंने मारा था—क्या यह सच है? आप को मारनेवाले कौन कौन थे।

"मुझे जो मार पड़ी है वह पीठ पर पड़ी है। यह अनुमान किया जा सकता है कि मुझे मारनेवाले दिगंबर बंधु थे, परन्तु यह निर्णय तो नहीं हो सकता कि अमुक निश्चित व्यक्तिने मारा है। फिर साधु के रूप में हमें शास्त्रों की आज्ञा है कि हम किसी के विरुद्ध शिकायत नहीं कर सकते। हमें क्षमापूर्वक मार या कोई भी परेशानी सहन कर लेनी चाहिए। अतः मैं हृदय से भी नहीं चाहता कि मुझे मारनेवाला दंडित हो या दुःखी हो।

न्यायाधीश सेवक बन गये

आगमोद्धारकजी के शब्दों का जादूका सा असर हुआ। वस्तुतः यह प्रभाव शब्दों का नहीं परन्तु क्षमागुण का था। पूज्य श्री की

निष्कलुष वाणी, सत्यनिष्ठा, क्षमा, विद्वत्ता, सौम्यता, दृढ़ता आदि गुण देख कर मुख्य न्यायाधीश तो पूज्यश्री के सेवक बन गये। कई बार वे समय निकाल कर पू. आगमोद्धारकजी की सेवा में उपस्थित होते और ज्ञान की प्राप्ति करते थे। ऐसी थी गुणों की विजय।

पूज्य आगमोद्धारकश्री पर निर्दय आक्रमण के कारण जैन संघों में खलबली मच गई। दिगंबरोंने न्यायालय में झूठे आक्षेप पेश किए थे। कई वकीलों की धारणा थी कि इन शिकायतों और गवाहियों पर से महाराज साहब दोषी साबित होंगे और उन्हें सात साल सख्त कैद की सज़ा होगी। इस अनुमानका का एक और भी कारण था जो महत्त्व-पूर्ण था। पूज्य श्री हर एक बात सच ही कहते थे। वकील तो भूल से भी सच बोलने की अनुमति नहीं देते, सलाह भी नहीं देते। परन्तु इस महापुरुष से ऐसी झूठ बोलने की आशा कैसे रख सकते हैं? इन कारणों से बचाव पक्ष के वकील भी हताश हो गए थे। उनका जड़ कानून उनके कान में 'सात साल की सख्त कैद' की ही बात कहता था। ऐसी बातें सुनकर किसी को भी चक्कर आजाए परन्तु हमारे चरित्र-नायक महापुरुष ऐसे प्रसंग में भी पूर्णतया स्वस्थचित्त रहे।

धैर्य की चरम सीमा

आज आकाश में उदित सूर्यका मुख गंभीर था। पृथ्वी पर जैन संघों के मुख भी गंभीर थे। आज अपराह्न में मुकदमे का फैसला होनेवाला था। 'सात साल की सख्त कैद' की अफ़वाह ने वातावरणको उदास बना दिया था। सब लोग न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करने लगे।

पूज्य आगमोद्धारक महोदय के मुख पर वही परम शांति, वही अपूर्व भाव विलास कर रहा था। वाचना का समय हुआ। गुरुदेवने अपने शिष्यों को आगम–वाचना देना आरंभ किया। श्रावक भी आये। एक गुरुदेवके सिवा अन्य सब के चित्त डावाँडोल थे। शिष्योंका वाचना में मन नहीं लगता था। इसी बीच एक वकील ने पूछा—

"श्रीमान्! अब अदालत का निर्णय आने ही वाला है, और कई लोगों की धारणा है कि आप को सात साल की कैद होगी। आपने भी यह सुना ही है। फिर भी आज आप आगमवाचना दे पाते हैं। क्या आप के हृदय में लेश भी उग्रता, उत्कंठा या उत्सुकता नहीं है! हमें बेचैनी हो रही है और आप को क्यों कुछ नहीं होता?

श्री आगमोद्धारक गुरुजीने कहा—"भाग्यवान्! एक दिन मरना है इस लिए क्या अभी से स्मशान में जा कर बैठना चाहिए। फैसला तो जो होना होगा सो होगा। अभी से उसकी चिंता करके क्यों परेशान हों?

न्यायालय का नेक निर्णय

न्यायालय के न्यायाधीशों ने सुन्दर, योग्य और न्यायपुरःसर निर्णय दिया—

"श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छ के धर्मगुरु लोकप्रिय पन्यास प्रवर श्री आनंदसागरजी गणीन्द्र श्री ने अपने धर्म की रक्षा के लिए जो करणीय था वही किया है। न्यायालय के न्यायाधीशों को श्रीमान् महाराज साहब का कार्य कानून की दृष्टि से अथवा भारतीय समाज–व्यवस्था की दृष्टि से तनिक भी अनुचित नहीं प्रतीत होता।

पूज्य महात्मा पर दिगंबर सम्प्रदाय के धर्मांध लोगों ने हमला किया सो अत्यन्त अयोग्य व्यवहार है। तदुपरान्त एक सत्यप्रिय धर्म-गुरु पर जो वस्तुतः अपना कर्तव्य-पालन कर रहे थे, आरोप लगा कर जुर्मनामा दाखिल किया जो कि बिल्कुल झूठा साबित हुआ है। इन्होंने इस तरह न्यायालय को झूठे आक्षेपों पर कार्यवाही करने को कह कर गलत राह दिखाने का निंदनीय कृत्य किया है।

इस मुकदमे की कार्रवाई में वादी, प्रतिवादी, और दोनों पक्षों के गवाह सभी झूठे हैं। सब वास्तविकता को छिपा रहे थे। केवल इन महात्माजीश्री आनन्द सागरजी महाराज ने सत्य हकीकत प्रस्तुत की है और हमनें इनके वचन को सत्य माना है।

पुनः एक बार हम निश्चित तौर पर कहते हैं कि एक महात्मा पुरुष को मुख्य आरोपी के रूप में जो पेश किया वह भी अत्यन्त अनुचित कृत्य है। ये महात्मा सर्वथा सम्पूर्णतः निर्दोष हैं।"

आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

यह नेक निर्णय सुनकर अन्तरिक्षजी के प्रांगण में उमड़ा हुआ जन-समुदाय आनन्द-विभोर हो गया। जगह जगह के जैन-संघ आतुरता पूर्वक निर्णय की राह देख रहे थे। उन्हें तार-टेलिफोन से खबर दी गई। समाचार पत्रों में भी ये समाचार बड़े अक्षरों में प्रकाशित हुए। सब ओर आनंद ही आनंद छा गया।

पूज्यश्री के अप्रतिम गुणों के कारण अधिकारी वर्ग के अग्रणी उनकी ओर आकर्षित हुए, कई उनके भक्त हो गये।

इस प्रसंगने पूज्य आगमोद्धारकश्री की सच्ची प्रभुता और विद्वत्ता को बाहर प्रकट कर दिखाया।

*

दसवाँ अध्याय

आगम-वाचनाएँ

शास्त्रों से ज्ञात होता है कि अनन्त-लब्धि-निधान श्री गौतम स्वामीजी पाँचसौ मुनियों को वाचना देते थे। इस तरह प्रत्येक गणधर महाराज अपने अपने शिष्यादि मुनिवरों को वाचना देते थे।

युग प्रधान श्री भद्रबाहु स्वामीजी पाँच सौ मुनियों को वाचना देते थे। उनमें से एक आर्य स्थूलभद्रजी भी थे। इस के बाद आर्य वज्र स्वामीजी आर्य रक्षितजी आदि मुनियों को वाचना देते थे।

वाचना देने की एक रूढ परंपरा थी। वाचना से ज्ञान-आगम-ज्ञान मिलता था। आगम की पुस्तकों की तब आवश्यकता नहीं थी। वे महात्मा बुद्धिशाली थे। आगमज्ञान उन्हें कंठस्थ रहता था।

अकाल

विषमकाल के कारण बारह बारह वर्ष के भीषण अकाल इस भूतल पर एक पर एक आते गये। पशुओं की लाशों के ढेर लग गये। घास और पानी गायब हो गया। गृहस्थ अन्न और जल के बिना तड़प कर मरने लगे। मुर्दों के ढेर लग गये जिन्हें कोई जलानेवाला न रहा। चीलों और गिद्धों को खूब भक्ष्य मिला। नदी नाले सूख गये। कुँओं का पानी बहुत नीचे उतर गया। धनवानों का धन घटा, बुद्धिमानों की बुद्धि कुंठित हो गई। सब माल-असबाब बिक गया। मुट्ठीभर अनाज मिलना कठिन हो गया। हड्डियों के ढेर लग गए।

नगर उजड गए। गाँव स्मशान बने। घर सूने हो गये। ऐसी स्थिति आई कि कोई किसी की सम्हाल नहीं ले सकता था।

ऐसी विषम परिस्थिति में मुनियों की क्या स्थिति? अकाल का विकराल काल मुनियों का भी ग्रास करने लगा। बड़े बड़े ज्ञानी काल-कवलित हो गये। वाचनाएँ बन्द हुईं, स्वाध्याय गया, गुरुगम बन्द हुआ, कंठस्थ था सो भूला जाने लगा तो नये ज्ञान की बात ही कहाँ? साधु लोग स्वरक्षा के लिए किसी भी प्रदेश की ओर निकल पड़े। अकाल के भीषण तांडव ने सब कुछ तहस नहस कर डाला।

पुनः पनपा

बारह वर्ष बाद पुनः वर्षा रानीका आगमन हुआ, पृथ्वी शस्य-श्यामला बनी, लोग पुनः स्थापित हुए। जो मुनिराज बचे थे वे एकत्रित हुए। उत्तरभूमि के मुनि मथुरामें एकत्रित हुए, वहाँ वाचनाचार्य श्री स्कंदिलाचार्य थे-यह वाचना 'माथुरी वाचना' कहलाई।

दक्षिण के मुनि सौराष्ट्र के वल्लभी गाँव में एकत्रित हुए। वहाँ वाचनाचार्य श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण थे। यह वाचना 'वल्लभी वाचना' के नाम से प्रसिद्ध हुई। सबको जो याद था सो एकत्र किया गया। जहाँ भेद होता वहाँ 'केवली-गम्य' कह कर भेद पाठ भी प्रस्तुत किये गये। उस समय आगमों को पुस्तकारूढ किया गया जिससे फिर भूल न जाएँ अथवा अकाल में इतना भी मिट न जाए। इस तरह वाचनाएँ पल्लवित हुई।

पू. आ. श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी, पू. आ. श्री अभयदेव सूरीश्वरजी, पू. आ. श्री हेमचन्द्र सूरीश्वरजी, पू. आ. श्री मलधारी हेमचंद्र सूरीश्वरजी

पू. आ. श्री शांतिसूरीश्वरजी, पू. आ. श्री मुनिसुन्दरसूरीश्वरजी, पू. आ. श्री हीरविजयसूरीश्वरजी, पू. उपा. श्री धर्मसागरजी गणी, पू. उपा. श्री यशोविजयजी गणी, पू. उपा. श्री विनयविजयजी गणी तक न्यूनाधिक प्रमाण में वाचनाएँ चलीं।

उसके बाद उत्तर गुणों में शिथिलता आई, यतिवर्ग का युग आया। इस युग में मंत्र और वैद्यक बढ़ा, वाचनाओं पर लक्ष नहीं रहा। सब अन्धकार की ओर घिसटने लगे। वाचना गई, ज्ञान गया और परंपरापद्धति घटी।

पुनः स्थापना

विक्रम संवत् १९७१ में पू० आगमोद्धारकश्री ने उक्त परंपरा की स्मृति कर उसकी पुनः स्थापना की-आगमवाचनाओं का प्रारंभ किया।

अहमदाबाद के श्री संघने मुनि भगवंतों को आगमवाचना का लाभ लेने की बिनती की। अनेक बुद्धिमान् साधु महात्मा पधारे, विदुषी साध्वियाँ पधारीं, पूज्य आगमज्ञानदाता आगमोद्धारक श्री पधारे। श्रावक यह जानकर कि हमारी पुण्यभूमि पर आगम वाचनाएँ होने का अपूर्व लाभ मिलेगा, आनंदित और कृतकृत्य हुए।

पूज्य आगमोद्धारकश्री हाथ में आगमकी प्रति लिए हुए पूर्वाभिमुख विराजमान होते हैं, तीन ओर साधु-साध्वी योग्य रीति से बैठे हैं, इन सब के हाथों में पाठ्य-आगम की प्रतियाँ हैं, श्रावक और श्राविकाएँ भी सुनने आए हुए हैं।

जब मंगलाचरण बोल कर पूज्य आगमोद्धारकश्रीने "सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं" कह कर वाचना का प्रारंभ किया

तब पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामीजी आर्य श्री जम्बु स्वामी आदि मुनि प्रवरों को वाचना दे रहे हों ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ ।

आगमवाचनादाता के कंठ में माधुर्य था, आवाज़ में मेघ–ध्वनि थी, भाषा में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, घोष, महाघोष, लय मात्रा आदि की स्पष्टता थी । नाद गंभीर था । श्रोता वर्ग को आगम की एक एक पंक्ति पुनः पुनः सुनने की इच्छा होती ।

आगम की व्याख्या, संहिता, पद, पदार्थ, पदविग्रह, चालना और प्रत्यावस्थान सहित शास्त्रीय पद्धति से होती थी ।

जैसे चन्द्र की चाँदनी उच्च नीच का भेद न कर उने को प्रकाश और शीतलता देती है वैसे ये महापुरुष स्वगच्छ और परगच्छ का भेद किये बिना सबको शुद्ध हृदय से वाचना देते हैं । पूज्यश्री "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना रखते थे । उनकी दृष्टि में निंदक और पूजक समान थे । कनक और पाषाण में उनकी समान बुद्धि थी । इन व्यापक गुणों के कारण उनकी वाचना में आते हुए किसी को संकोच नहीं होता था ।

उस समय जितने मुनि थे उनमें से अधिकांश वाचना लेने आते थे, और जो नहीं आ सके थे उन्हें न आ सकने का खेद था । इस वाचना से दो सौ से अधिक मुनियों और सौ से अधिक महत्तरा आदि साध्वियों ने लाभ उठाया था ।

कुल सात वाचनाएँ हुई थी । एक वाचना छः महिने चलती थी । इनमें से एक वाचना पाटणमें, एक अहमदावादमें, दो सूरत में, एक पालीताणामें, एक कपड़वंजमें और एक रतलाम में हुई । इनमें

श्री दशवैकालिक सूत्र, श्री अनुयोगद्वार सूत्र, श्री आवश्यक सूत्र, श्री उत्तराध्ययन सूत्र, श्री विशेषावश्यक सूत्र, श्री स्थानांग सूत्र, श्री औपपातिक सूत्र, श्री आचारांग सूत्र, श्री नंदी सूत्र, श्री भगवती सूत्र श्री ओघनियुक्ति तथा श्री पिंडनियुंक्ति की वाचनाएँ हुई।

ये वाचनाएँ श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण की वाचनाओं की याद दिलाती थीं।

*

ग्यारहवाँ अध्याय

आचार्य पदवी

सूरत में सूरिपद

अंतरिक्षजी तीर्थ की विजय के बाद पूज्यपाद आगमोद्धारकजी महाराजने विहार करते हुए पुनः सूरत में पदार्पण किया। सूरत की स्वागत यात्रा पहले से भी अधिक दर्शनीय, अधिक आकर्षक और भावमय थी।

वर्षों से सूरत के जैन संघ की एक यह शुभ कामना थी कि हमें अपने नगर में पूज्य आगमोद्धारकश्री को आचार्यपद देने का पुण्य प्राप्त हो तो कितना अच्छा! इस के लिए आवश्यक प्रयास वे कब से कर ही रहे थे, अब उन प्रयासों में और वृद्धि हुई।

पूज्यपाद आगमोद्धारकजी आचार्यपद पर आरूढ होना चाहते हों ऐसी बात बिल्कुल नहीं थी, परन्तु देशकाल की स्थिति और संयोगों को देखते हुए आचार्य-पद ग्रहण करना अनिवार्य था। आचार्य होने का अर्थ था एक उत्तरदायित्वपूर्ण और जोखिमभरे पद को ग्रहण करना। यदि शास्त्रोक्त विधि के अनुसार इस पद का पालन किया जाय तो तीर्थंकर नाम कर्म बाँध सकता है और इस के प्रति बेवफा बने तो नरक के द्वार खुल जाएँ।

सूरत के श्रावकों को यह ज्ञात हुआ कि पूज्य आगमोद्धारकजी

को आचार्य-पद अर्पण करने की विधि हमारे नगर में होने वाली है। इस से उनके हृदय आनन्द-विभोर हो कर नाच उठे।

सूरत के संघ में विवेक और बुद्धिमत्ता थी, उस में शासन की शोभा बढाने के कार्य करने की सूझ बूझ भी थी, परन्तु अशुभ के उदय के कारण संघ में फूट की छोटी सी चिनगारी भयानक दावानल उत्पन्न कर सकती है, विनाश का तांडव मचा सकती है। पूज्य आगमोद्धारकश्रीजी को इस का पता था, अतः उन्होंने कहा कि सूरत सूरिपद का उत्सव तो उमंग के साथ मनाए और हृदय में द्वेष की आग धधकती रहे यह कैसे चल सकता है?

महाराजश्रीने सूरत संघ के अग्रगण्य पुण्यात्माओं को बुला कर फूट की आग के विषय में बात की। सूरत सूरिपद-प्रदान के उत्सव का लाभ खोना नहीं चाहता था, अतः चर्चा-विचारणा के बाद सबने अपने अपने मतभेद भुला दिए और सब पूज्यश्री के पदवी-प्रदान महोत्सव में आनन्द-पूर्वक सम्मिलित हुए।

पदवी दान के आठ दिन पहले से जिनमंदिरों में उत्सव शुरू हुआ। प्रतिदिन प्रातःकाल कुमारिकाएँ धवलमंगल गीत गातीं; दोपहर को जिनमंदिरों में राग-रागिनियों के साथ पूजा भणाई जाती, रात को भावनाएँ होतीं और चौक में नगर की श्रद्धावती सुश्राविकाएँ गरबे गाती थीं।

रथ-यात्रा

पदवीदान के एक दिन पहले रथयात्रा-जलयात्रा थी। वह सूरत के जिन राजमार्गों से निकलने वाली थी उन सभी मार्गों को ध्वजा-

पताका, अशोक के पत्तों के तोरण, कमान आदि से सजाया गया था। जगह जगह सुन्दर कमखाब की कमानें विशेष आकर्षक दिखाई देती थीं।

मार्ग में थोड़ी थोड़ी दूरी पर शक्कर के जल की व्यवस्था थी। उसमें कालीमिर्च, दालचीनी, लौंग, जायफल तथा केसर आदि का सानुपातिक मिश्रण किया गया था जिस से किसी को लू न लगे और मार्ग का ताप और श्रम दूर हो जाय।

शुभ चौघडिये में रथ यात्रा का प्रारंभ हुआ। सब से आगे पारस्य देश के सुधा-धवल अश्वों पर नगाड़े थे, हवा से बात करनेवाली सहस्र लघुपताका मंडित इन्द्र ध्वजा थी। उसके बाद ग्राम्य-वाद्य-समूह था। घुड़सवारों की पंक्ति सबका ध्यान आकर्षित करती थी। उसके पीछे पदाति संघ सेवकों की दीर्घ श्रेणी पद-पद्धति-पूर्वक चल रही थी। आधुनिक वाद्य-यंत्रोंका समूह (बेंड) सुन्दर स्वरोंका कूजन कर रहा था। महापताका-समूह आया तब लोग ऊँचे देखने लगे। रास खेलती हुई कुमारिकाओंका वृन्द निकला, उसके बाद सजे धजे वाहनोंका समूह आया। पाश्चात्य वाद्य-समूह श्रवणप्रिय सुर सुनाता था। हस्तिदल सब के नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। सरकारी बेंड की मधुर ध्वनि सबको मनमोहक लगती थी। उसके पीछे पूज्य प्रवर श्री अपने शिष्यादि परिवार के साथ समितिपूर्वक चल रहे थे। उनके पीछे संघ के धर्मप्रिय श्रावक लोग थे। उनके पश्चात् तीर्थंकर परमात्माकी प्रतिमासे युक्त सोने-चाँदी से जड़ा हुआ दिव्य कलामय तीन शिखरोंवाला महारथ आया। उसके पीछे पूज्य साध्वी-संघ था, और अन्त में नगर की महिलाएँ प्रभु-गुण गातीं चल रही थीं, मानों पूज्यपादश्री के पदवी दान-प्रसंग पर स्वर्ग से देवियाँ उतर आई हों। सबके आखिर में ग्रामरक्षक दल था।

इस रथयात्राको देखने के लिए राजमार्गो पर जनसमूह उमड रहा था। आवासों की अट्टालिकाओं और गवाक्षों से भी लोग इस रथयात्रा को देख रहे थे। आसपास के गाँवों के लोग भी देखने आए थे। शांति के सेनानी को आचार्य पद प्रदान के निमित्त आयोजित इस रथ-यात्रा में अशांति की कोई संभावना नहीं थी तो भी राज्य की ओर से अपने कर्तव्य-पालन की दृष्टि से सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया था।

शुभ घड़ी में शुरू हुई रथयात्रा अमृत घड़ी में पूर्ण हुई अतः आज भी यह यात्रा अमृत है—स्मृति में आती है। अमृत-पान करने के कारण अभी भी जीवित है।

पदवी-पदान

आज परम प्रिय धर्मगुरू को पदवी देने का शुभ दिन था। लोग सूर्योदय से पहले ही उठ चुके थे। ज्यों ज्यों सूर्य देव का रथ आकाश मार्ग पर अग्रसर होता था लोक हृदय का आनन्द-प्रवाह भी बढ़ता जा रहा था। पदवी-दान के लिए ध्वजा, पताका तोरण आदि से सुशोभित विशाल मंडप (शामियाना) बनाया गया था। सुगंधित धूप तथा गुलाब जल के छिडकाव सें वातावरण निर्मल सुगंधमय एवं शीतल बना हुआ था। नगरका नरनारी-वृन्द बहुमूल्य और आकर्षक वस्त्राभूषणों से सज धज कर आने लगा। थोड़े से समय में सारा मंडप मानव-समूह से भर गया।

मिथ्यात्व – तिमिर – भास्कर, तपगच्छ – गगन – दिवाकर मुनिप्रवर श्री मुक्ति विजयजी महाराजश्री (मूलचंदजी) के शिष्य रत्न

आबाल ब्रह्मचारी परम पूज्य तपोनिष्ठ सूरिशेखर आचार्य महाराज श्री कमल सूरीश्वरजी महाराज आचार्य–पद–प्रदान–विधि करवाने वाले थे। जब उन्होंने पूज्य आगमोद्धारकश्रीके साथ उक्त पटांगण में पदार्पण किया तब वहाँ उपस्थित समस्त जन–समूहने विनय–पूर्वक खड़े होकर दोनों पूज्य महात्माओंका जयजयकार किया।

पटांगण में एक कलामय काष्ठ मंच बनाया गया था। पूज्य पाद आचार्यदेवश्री कमल सूरीश्वरजी महाराज उस पर बिराजमान हुए। अन्य पूज्यवर भी यथा–योग्य स्थानों पर बैठ गए। लाभ घड़ी चन्द्र स्वर में पदवी–प्रदान की क्रिया शुरू हुई। रजत समवसरण पर विराजित चतुर्मुख तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमाओं के समक्ष यह मंगलविधि प्रारंभ हुई।

सर्व प्रथम नंदी की विधि की गई। समस्त जनसमूह आतुर नयनों से यह विधि देख रहा था। नंदी–विधि के बाद वंदनक, कायोत्सर्ग, सात खमासमणे, सात आदेश, बृहद् नंदी सूत्र–श्रवण आदि विधियाँ हुई।

चतुर्मुख भगवान् के सामने श्री नवकार महामंत्र पढ़ कर पूज्य पाद आचार्य भगवंत विजयकमल सूरीश्वरजी महाराजने अपने वरद हस्त में सूरिमंत्र—वर्धमान विद्यामंत्र आदि से अभिमंत्रित वास ग्रहण किया, यह वास पूज्य पं. श्री आनन्दसागरजी गणीन्द्र के मस्तक पर डाला, फिर मुनीश्वर आनंदसागरजी गणीन्द्र श्री नवकार गिनकर तीन प्रदक्षिणा देने लगे। इस समय उन पर चतुर्विध संघ वासक्षेप कर रहा था। जय घोषकी ध्वनि और प्रतिध्वनि गूँज रहीं थी। कुछ उदार पुण्यवानोंने

वासचूर्ण में खरे अखंड मोती मिलाये थे तो कई भाग्यशालियोंने सोने चाँदी के फूल मिलाये थे।

इस समय आगमोद्धारकजी चन्दन चूर्ण चर्चित ध्यानस्थ मूर्ति सदृश दिखाई दे रहे थे। यह वासचूर्ण-निक्षेप विधि और प्रदक्षिणा-विधि तीन बार की गई।

अन्य विधि-विधान पूर्ण होने पर पूज्यपाद आचार्यवर श्री कमल सूरीश्वरजी महाराजने वासचूर्ण हाथ में लेकर मंत्र पढ़ना आरंभ किया। पटांगन में सम्पूर्ण नीरवता छाई हुई थी। नामाभिधानपूर्वक पद-अर्पण की मुख्य विधि शुरू हुई। पूज्य श्री अर्धनिमीलितनयन कुछ गुन गुना रहे थे। 'ॐ ह्रीं' जैसे उच्चारणोंका अस्पष्ट खयाल आता था। क्षणभरमें उनके नेत्र खुले। उन्होंने गंभीर ध्वनि में कहा- "आज से आपको आचार्य पदवी दी जाती है, और आपका नाम 'आचार्य श्री आनन्द सागर सूरि' रखा जाता है।" यह विधि तीन बार की गई।

तत्पश्चात् गुरुमंत्र देने की विधि शुरू हुई। आगमोद्धारक श्री के कान में गुरुमंत्र दिया गया। इस अवसर पर आचार्यशेखर कमलसूरीश्वजी महाराज बहुत आनन्दित थे। सुयोग्य सुपात्र को गुरुमंत्र देनेका सौभाग्य प्राप्त करने के आध्यात्मिक आनन्द की रेखाएँ उनके मुख-मंडल पर उभर रही थी।

शेष विधि करने के बाद उपवासका पच्चक्खाण लिया। पद प्रदान विधि के बाद पूज्य आचार्य भगवंत श्री विजय कमल सूरीश्वरजी महाराज ने बोधमय आशीर्वचन कहे।

आशीर्वचन

"पुण्यवानो ! आज सूरत के आंगन में एक प्रतिभासंपन्न तथा शासन–प्रभावक पुरुष को आचार्य–पदवी दी गई है। सूरत शहर का सौभाग्य है कि ऐसे पुण्य–प्रसंग का लाभ उसे मिला है।

"पं. श्री आनन्द सागरजी गणि 'आगमोद्धारक' नाम से सुख्याति–प्राप्त हैं ! अब उन्हें शास्त्रीय आचार्य पद प्राप्त हुआ है। उनसे कहना चाहता हूँ कि 'आप इस पद को सुन्दर ढंग से निभाएँ, शासन को आलोकित करें। आप में अद्भुत गुण हैं। आप शक्ति–सम्पन्न हैं। आपने लोगोंका बहुत प्रेम–सम्पादन भी किया है, परन्तु अब से आप पर एक और बड़ी जिम्मेदारी आ रही है, शासन में आज जो अंधकार दिखाई देता है उसे दूर करने का सतत प्रयत्न करना।

"मेरा पूर्ण विश्वास है कि आपको आचार्य पदका या लोकेषणा का मोह नहीं है। साथ ही आप कई बार शासन के लिए स्पष्ट वक्ता बन कर लोगों की खफगी अंगीकार करते हैं, परन्तु आपके सिवा और किसी मे इस समय ऐसी हिम्मत और उत्साह के दर्शन नहीं होते। आपके बहुत से भक्त होते हुए भी आपको भक्तों की ममता नहीं है।

"आज पूज्य वर्ग में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने मान सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए श्रावकोंकी झूठी प्रशंसा, आदर, विनय आदि करते हैं, श्रावकों को खुश रखने की वृत्ति रखते हैं। परन्तु आप ऐसे दुर्गुणों से मुक्त हैं, और सदा मुक्त ही रहेंगे ऐसी मुझे श्रद्धा है।

"आप अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक लाभ शासन को देते रहें। आज आपकी पंक्ति में आ सके ऐसा कोई नहीं है। आप मुझसे

अधिक शक्तिशाली हैं, यह स्वीकार करते हुए मुझे आनन्द होता है। ज्याद क्या कहूँ? आप एक आदर्श प्रभावक आचार्य बनें यही शुभ कामना।"

शास्त्रीय परंपरा है कि आचार्य-पद दाता के उपदेशकें बाद पद-ग्रहण कर्ता को भी कुछ बोलना चाहिए। अतएव पूज्य नूतन आचार्य आनन्द सागरसूरिजी आशीर्वचन के उत्तर के रूप में अपनी निर्मल संवेदनशील वाणीमें कुछ शब्द बोले—

आशीर्वचन का उत्तर

"भाग्यशालियो! पूज्य-प्रवरश्रीने मुझे जो पद दिया और आप सबने मिलकर दिलाया, अतः आपके हृदय आनन्द से पूर्ण हैं यह बात आपके प्रफुल्लित मुखों से प्रकट हो रही है। वस्तुतः आप तो मुझे यह पद दे कर कार्य पूरा होने का सन्तोष मानते हैं परन्तु मेरे सिर पर आज से नये उत्तरदायित्व का भार आया है। यदि इस भारको अच्छी तरह वहन हो सके तो यह कर्मों के बोझ को हलका कर देता है, और इससे तीर्थंकर नाम कर्म बँधता है।

मैं इस पदके लिए कितना योग्य हूँ, यह तो ज्ञानी ही जानते हैं। फिर भी पूज्य प्रवरश्री ने मुझे यह पद दिया और मैंने लिया है, यही अभिलाषा रखता हूँ कि मेरा मन सदा शासन सेवा के कार्यों में रत रहे; मैं इस पदका, तीर्थंकर परमात्मा द्वारा स्थापित संघका नम्र सेवक बना रहूँ।

"पू. उपा. धर्मसागरजी गणी, पू. उपा. श्री यशो वियजजी ग., पू. उपा. विनय विजयजी ग. आदि पूज्यगण मुझसे बहुत बड़े थे, फिर

भी इन महानुभावोंने पदवी ग्रहण नहीं की—यह उनकी महत्ता और निःस्पृहता थी। मैं भी यह पद लेना नहीं चाहता था, तथापि वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसो हैं कि इसमें पदवी लेना अनिवार्य बन गया, अतः स्वीकार करना पड़ा है। जो जो सामान्य शक्तियाँ मुझे मिली है उनका हो सके उतना उपयोग शासन-सेवा में करता रहा हूँ। अब भी यही चाहता हूँ कि अपनी शक्तियोंका शासन के कार्य में उपयोग करने की मेरी भावना बनी रहे। देवगुरु के आशीर्वाद जिनशासन की सेवा के कार्यो में मुझे बल दें यही मंगल-कामना है।"

इसके बाद 'सर्वमंगल'-विधि हुई। सब लोग बाजे-गाजे के साथ जिनमंदिर गये। इस तरह मंगल-प्रसंग की पूर्णाहुति हुई। एक धर्मराजका राज्याभिषेक हुआ। यह विक्रम संवत १९७४ की वैशाख शुक्ला दशमी का शुभ दिन था।

अनाथों के नाथ

पदवी-प्रदान प्रसंग पूर्ण होने के बाद पूज्य-प्रवर के पद-पंकज बम्बई की ओर उठे। सूरत की जनता ने भव्य विदा दी परन्तु हृदय में शोक के साथ। महात्माका वियोग अनिवार्य है फिर भी दुःखदायक है।

उस वर्ष कई प्रदेशों में वर्षा नहीं हुई। अतः पृथ्वी पर अकाल की छाया उतर पड़ी। इस प्रसंग का दुःख कम करने के लिए बहुत भाग्यवान बम्बई के धनिकों से उदार चंदा इकट्ठा कर रहे थे। पूज्यश्री को यह बात ज्ञात हुई।

अकाल में मरते हुए पशुओं का रक्षक कौन? बेचारे मूक प्राणी कसाई की छुरी के शिकार हो जाते थे। कई मनुष्यों को दाने दाने

के लाले पड़े थे। पूज्य आगमोद्धारकजी ने यह प्रश्न अपने हाथमें लिया। जिस कार्य को अन्य लोग अगाध परिश्रम से भी नहीं कर सके वही पूज्य श्री के पुण्य प्रताप से अल्प प्रयास से होने लगा। लाखों रुपये इकट्ठे हुए और उचित परिमाण में सहायता दी जा सकी। पूज्यश्रीको जन-समूह में 'अनाथों के नाथ' के रूप में ख्याति मिली।

फिर विहार का क्रम शुरू हुआ, सूरत में पुनर्पदार्पण हुआ। सूरत तो मानों आगमोद्धारकजी की राजधानी थी। बम्बई और सूरत बहुत बार आना जाना हुआ। फिर भी उन्हें कहीं की आसक्ति नहीं हुई। अपने साधुओं के लिए उन्होंने ज्ञानमंदिर के बहाने मठ नहीं स्थापित किया। पूज्य श्री मालिकी के ज्ञानमंदिर बना कर शिथिलाचार को पोषने की वृत्ति के विरोधी थे। धनपति भक्तों का समूह पा कर भी वे सदा अनासक्त बने रहे।

पुस्तकें और पुस्तकालय

इस शासनरत्न महापुरुष के पास कई ग्रन्थ आते थे। मारवाड़ आदि से हस्तलेख लिखनेवालों तथा यतियों की ओर से कई ग्रन्थ बिकने के लिए आते थे। उनमें से योग्य पुस्तकों का योग्य मूल्य श्रावकों से दिलवा कर पूज्य श्री शासन परंपरा के लिए उन्हें अनासक्त भाव से रख लेते। श्वेताम्बर पक्षीय श्रावक संघ प्राचीन ग्रन्थों या नये मुद्रित ग्रन्थों के संग्रह तथा संरक्षण में बिल्कुल कोरा है यह कहना अवास्तविक नहीं होगा। उसे सोने चाँदी की आँगी, हीरों के मुकुट, चाँदी और सोने के गट्टों की रक्षा करने में ही कुशलता हासिल है। व्यापारी जो ठहरे। आगमोद्धारक श्री ने बहुत सारे ग्रन्थ एकत्रित किए। इन ग्रन्थों को

क्षमा करनेवाले निर्ग्रन्थ ने सोचा कि इन ग्रन्थों की कोई सार्वजनीन व्यवस्था हो तो कितना अच्छा। उन्होंने सूरत के श्री संघ के सामने अपना यह शुभ विचार प्रकट किया।

सूरत-संघने इस महानिर्ग्रन्थ मुनिराज से महाग्रन्थ लेकर उन्हें सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित रखने के हेतु एक सुन्दर विशाल भवन बनाया। इस भवन के साथ महानिर्ग्रन्थ का नाम जोड़ा गया। आज भी वह विशाल पुस्तकालय 'श्री जैनानन्द पुस्तकालय' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

सूरत के जैन, जैनेतर, सरकारी, प्रजाकीय विविध पुस्तकालयों में इस पुस्तकालय का अग्र स्थान है। इसमें केवल जैन-ग्रन्थ ही हों ऐसा नहीं है, परन्तु यहाँ हरएक धर्म के हस्तलिखित एवं मुद्रित प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के ग्रन्थों का विशिष्ट और सुन्दर संग्रह है।

*

बारहवाँ अध्याय

मध्य भारत के शैलाना–नरेश को प्रतिबोध–

मालवा की ओर

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य श्री विहार करते हुए मालवा की ओर पधारे। इस प्रदेश में शैलाना एक स्वतन्त्र रियासत थी। पूज्य पादश्री विहार करते करते इस राज्य में पधारे। उपाश्रय में एक दिन उनका व्याख्यान हुआ।

महाराजश्री शैलाना–नरेश को महामंत्री से खबर मिली कि गुजरात प्रदेश से कोई महात्मा पुरुष पधारे हैं, और वे बड़े त्यागी, निःस्पृही तथा विद्वान् हैं अतः नरेश को उनका वन्दन करने जाने की इच्छा हुई। दूसरे रोज अपने मंत्रीमंडल–सहित वन्दनार्थ गये। वहाँ उन्होंने पूज्यश्रीको वन्दनादि करने के पश्चात् अपने महल में स्थित हॉल में व्याख्यान देने की प्रार्थना की। पूज्यश्रीने आध्यात्मिक लाभ देख कर यह बात मंजूर की।

दूसरे दिन राजमहल के हॉल में व्याख्यान था अतः राजकीय अधिकारी, स्थानीय विद्वान् और धनवान् लोग भी पधारे। शैलाना नरेश भी पधारे। पूज्यश्रीने व्याख्यान दिया, जो शैलाना नरेश को बहुत ही पसंद आया।

व्याख्यान हर रोज नियमित होने लगा। शैलाना नरेश भी राज-काज में से चार घडी समय निकाल कर व्याख्यान में आने लगे और पूज्यश्री जब तक शैलाना रहे तब तक नियमित अखंड लाभ लिया।

इसके अतिरिक्त अन्य समय में भी शैलाना नरेश पूज्यश्री आगमोद्धारकजी के साथ आर्य संस्कृति, राज्यधर्म, नीति धर्म, राजाका कर्तव्य, आत्मा, परभव, (पुनजन्म), पुण्य, पाप, मोक्ष, पाश्चात्य संस्कृति, जैनदर्शन वेदांत दर्शन, बौद्धदर्शन आदि अनेक विषयों पर गहन चर्चा-विचारणा भी करते थे।

जब शैलाना नरेश पूज्यश्रीके पास धर्मोपदेश सुनने या चर्चा के लिए आते तब उनका व्यवहार एक विनयशील शिष्य रत्न के समान होता था। धीरे धीरे वे आर्य धर्म और आर्य संस्कृति के ऐसे भक्त बन गये जैसे कि सतयुग के धर्मावतारी राजा हों।

शैलाना-नरेश का जीवन भी आदर्श बन गया। पूज्यपाद आगमोद्धारक श्री के संसर्ग से उनमें जीवदयाका अखंड निर्झर बहने लगा-जीवदया का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उत्कृष्ट कोटि पर पहुँचा।

उन्होंने अपने राज्य के सभी गाँवों में 'अमारि पडह' घोषित किया। अभयदानका यह सर्वश्रेष्ठ कार्य करके शैलाना नरेश श्री दिलीपसिंहजी स्वनामधन्य हो गये, और आगमोद्धारकजी भी अद्वितीय प्रभावक आचार्य बने।

उस समय से आगमोद्धारकश्रीजी के नामके पूर्व 'शैलाना-नरेश-प्रतिबोधक' बिरुद जुड़ गया।

पूर्व भारत

उत्तर प्रदेश में प्रयाण

चातुर्मास समाप्ति के बाद मालवा देश में धर्म-प्रभावना करते हुए कुछ मास कल्प किये। आगे बढ़ते हुए उत्तर प्रदेश मे प्रवेश किया। इन प्रदेशों मे जिनकल्याणक-भूमियाँ थीं। इन तीर्थ-स्वरूप भूमियों की यात्रा करते करते आगे बढ़ रहे थे। इन प्रदेशों में जैनों के घर कम थे, और जो थोड़े से थे उनमें भी धर्म के संस्कार विशेष नहीं दिखाई पडते थे।

पूज्य आगमोद्धारकश्री हर एक स्थान पर यथाशक्ति संस्कार के बीज बोते हुए कानपुर पधारे। कानपुर अहमदाबाद के जैसा महानगर था। वहाँ लंबे अरसे से थोडी संख्या में जैन लोग रह रहे थे। उन्होंने एक सुन्दर जिन मन्दिर बनवाया था जो 'काँचका जैन मन्दिर' इस नाम सें सुख्यात था। यहाँ जैन एवं जैनेतर दर्शनार्थ आते थे। कुछ दिन कानपुर में रहकर पूज्य प्रवर श्री लखनऊ शहर पधारे। वहाँ थोड़े दिन रह कर बनारस की ओर विहार प्रारंभ किया।

हिन्दू विश्व-विद्यालय में

पूज्य आगमोद्धारकश्री ने विद्याधाम वाराणसी-नगर में पदार्पण किया। सुन्दर स्वागत-पूर्वक उनका उपाश्रय में प्रवेश हुआ। दोपहर को हिन्दु विश्व विद्यालय के विद्वान् पधारे। पूज्य आगमोद्धारकश्रीजी अप्रतिम विद्वान् हैं, ऐसी ख्याति इन विद्वानोंने बहुत पहले से सुन रखी थी। अतः उनकी विद्वता से लाभ उठाने और नई

शैली, नया ज्ञान प्राप्त करने के हेतु उन्हों ने पूज्य श्री से प्रार्थना की "आप हमारे विद्यालय में पधार कर 'स्याद्वाद' विषय पर संस्कृत भाषामें व्याख्यान देने की कृपा करें।"

पूज्य आगमोद्धारकश्रीने उनकी बिनती स्वीकार कर ली। नियत समय पर विद्यालय में पधारे। पंडितों ने हार्दिक स्वागत किया, और उच्च व्यासपीठ पर बिठाया। पूज्यश्रीने नमस्कार महामंत्र पढ़ कर व्याख्यान प्रारंभ किया। गंगा नदी के अखंड स्रोत की तरह पूज्यश्री संस्कृत में धारा प्रवाह बोलते रहे। उच्चतर संस्कृत के प्रयोगों से युक्त उनकी अस्खलित वाग्धारा जारी रही।

एक व्याख्यान पूर्ण हुआ। विद्यालय के विद्वानों को बहुत सरस लगा। उन्होंने और दो व्याख्यानों के लिए बिनती की, साथ ही कहा, "आप कृपया सरल संस्कृत में बोलें तो अच्छा रहेगा; आपकी तेजस्वी संस्कृत भाषा समझने में हम जैसो को भी देर लगती है।"

दूसरे दो व्याख्यान भी 'स्याद्वाद' पर ही हुए, परन्तु उनकी भाषा सरल संस्कृत कर दी गई।

विद्यालय के विद्वान सोचने लगे कि इन महात्माने बनारस में अध्ययन नहीं किया है, इन के यहाँ संस्कृत दैनिक व्यवहार की भाषा नहीं है, फिर भी हमें समझने में कठिन मालूम होती है वह इन्हें बोलने में सरल लगती है। कितनी विद्वत्ता है ? साक्षात् बृहस्पति के अवतार प्रतीत होते हैं।

शिष्यों को भी आश्चर्य हुआ कि पूज्य गुरुदेवश्री संस्कृत में इतना सुन्दर बोल सकते हैं। ऐसी वाग्धारा बहा सकते हैं। हमें तो

आज ही ज्ञात हुआ। ऐसी बेजोड़ विद्वता होते हुए भी पूज्य आगमोद्धारकजी जहाँ तहाँ विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए संस्कृत नहीं बोलते थे। सारा व्यवहार प्रचलित देश्य भाषाओं में ही करते थे। इस गांभीर्य का ज्ञान सर्व प्रथम हिन्दु विश्व विद्यालय में ही हुआ।

बंगला विहार

पूज्यपाद आगमोद्धारक श्री ने सोचा कि बंगाल की ओर भी विहार करना आवश्यक है। यदि वहाँ रहनेवाले और व्यापार के लिए आनेवाले नये जैनों में जैनत्व के धार्मिक संस्कार नहीं रहेंगे तो बड़ी कठिनाई होगी। बंगाल में पाश्चात्य संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव था। बंगालकी जनता बहुत ही बुद्धिशाली परन्तु आलसी थी। अंग्रेजी शिक्षा की मात्रा वहाँ अधिक थी।

वहाँ बसनेवाले जेन जमींदारों और राजाओं जैसे थे। यति लोग वाहन का उपयोग करते थे। अतः वे लोग वहाँ जाते और धर्म के कुछ संस्कार देते थे, परन्तु ये यति लोग कंचन का खुल्लं खुल्ला स्वीकार करते और अपने पास रखते थे। इतना ही नहीं, उनके कामिनी का संग भी न्यूनाधिक मात्रा में होता था। फलतः जैसी स्वच्छ उज्जवल छाप पड़नी चाहिए वैसी उस वर्ग की नहीं पड़ सकती थी।

कलकत्ते में रहनेवाले मरुधरवासी एवं गुर्जरवासी जेनों में से कइयों ने मरुधर और गुजरात में पूज्य आगमोद्धारकश्री के दर्शन किए थे, तथा समाचारपत्रों के माध्यम से पूज्यश्री की ख्याति उक्त प्रदेश में व्यापक बन गई थी।

कलकत्ता वासियों को ज्ञात हुआ कि पूज्य आगमोद्धारकजी बिहार प्रान्त को अपने चरणकमलों से पावन कर रहे हैं। अतः जैनों का एक प्रतिनिधि मंडल उन्हें कलकत्ता पधारने की बिनती करने आया और पूज्यश्री से कहने लगा—"हे पूज्य गुरुदेव! बंगाल में जैन लोग धर्मदृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं, और परधर्माभिमुख हो रहे हैं। आप वहाँ पधार कर उद्धार कीजिए।" इस तरह वहाँ का अक्षरशः चित्र प्रस्तुत किया।

पूज्यश्री ने तुरन्त ही 'क्षेत्र स्पर्शना'— शब्द के द्वारा आने की सम्मति प्रकट की। दूसरे दिन वहाँ के दैनिक समाचार पत्रों में बड़े बड़े अक्षरों में समाचार प्रकाशित हुए।

समाचारों का सार

जैन धर्म के अद्वितीय अप्रतिम विद्वान्, महासमर्थ त्यागी, धर्म धुरंधर, आगमोद्धारक आचार्य महाराज श्री श्री श्री १००८ श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजा अपने शिष्य समूह सहित बिहार प्रान्त में विचरण कर रहे हैं, और अब पद–विहार करते हुए पूज्य श्री बंगाल प्रान्त में पधारेंगे। धीरे धीरे चातुर्मास से पहले कलकत्ते में पदार्पण करेंगे। हरएक गाँव में इन महापुरुष के व्याख्यान हो रहे हैं। उनके दर्शनार्थ मानव समूह उमड़ पड़ता है। ये महात्मा पक्के जैन धर्मी होते हुए भी समदर्शी महापुरुष हैं। उनमें साम्प्रदायिक कठ-मुल्लापन बिल्कुल नहीं है। किसी पर रागद्वेष न रखना उनका स्वभाव है। इन महात्माजी के दर्शन से पतित पावन बन जाता है, नास्तिक आस्तिक बन जाता हैं, मानव महामानव बन जाता हैं। अतः बंगाल की समग्र जनता को महात्मा के दर्शन, वन्दन का लाभ अवश्य लेना चाहिए।'

इन समाचारों से बंगाल की जैन-जैनेतर जनता में आकर्षण और आनन्द की वृद्धि हुई। पूज्यश्री के प्रति पूज्यभाव बढ़ा। कलकत्ते में उनके स्वागत की सतत तैयारियाँ होने लगीं।

कलकत्ते में प्रवेश

एक महामंगलकारी प्रभातकाल में पूज्य प्रवर आगमोद्धारकश्रीने कलकत्ते की भूमि पर चरण रखे। दूर देश से एक महात्मा पधारे हैं यह जान कर और लोगों के मुख से सुनकर अनेक बंगवासी पूज्यश्रीके दर्शनार्थ, उमड़ने लगे। बादशाही ठाटबाट के साथ विशाल स्वागत-यात्रा निकली। इस स्वागत यात्राकी सजधज कलकत्ते के कार्तिकी पूर्णिमा के जलूस जैसी थी। यह एक अपूर्व गुरुप्रवेश-यात्रा थी। यह प्रवेश-यात्रा जिनमंदिर पहुँची। बाहर चौगान में विशाल 'पटावास' बनाया गया था। वहाँ व्याख्यान दिया गया। हर रोज व्याख्यान में विशाल जन-संख्या आती थी अतः वह पटावास रहने दिया गया और उसी में हर रोज व्याख्यान होता था।

पूज्यश्रीको विचार आया कि नगर महान् है परन्तु उसके अनुरूप एक भी उपाश्रय नहीं है। उचित अवसर पाकर पूज्यपादश्रीने व्याख्यान में उपाश्रय के सम्बन्ध में बात कर इस विषय में कुछ करने के लिए धर्मभाषा में समझाया। उसी समय श्रोताओं की ओर से एक लाख रुपये के उदार वचन मिले।

जैन हिन्दी साहित्य

इस प्रान्त के जैन हिन्दी भाषा से अधिक परिचित थे। उन्हें गुजराती भाषा ठीक अनुकूल नहीं आती थी। पूज्यश्री शुद्ध सरल हिन्दी में व्याख्यान देते थे जिससे श्रोतागण आसानी से समझ सकते थे।

जैन ग्रन्थ संस्कृत तथा प्राकृत में थे। कुछ ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ, भाषानुवाद, भावानुवाद आदि थे परन्तु वे सब गुजराती में थे। हिन्दी भाषा में कोई विशिष्ट धार्मिक साहित्य नहीं था। पूज्यश्री को मालूम हुआ कि हिन्दीभाषियों के लिए हिन्दी ग्रन्थों की आवश्यकता है। इस शहर के अनुरूप एक ग्रन्थ-भंडार की भी आवश्यकता है। इस हेतु कुछ करना होगा।

सुयोग्य समय पर व्याख्यान में इस के सम्बन्ध में उपदेश दिया। पूज्यपादश्री की वाणी अमोघ थी। उनकी बात का अमल हुआ और 'श्री मणिविजयजी जैन ज्ञान-भंडार' की स्थापना हुई। साथ ही हिन्दी साहित्य के लिए भी योग्य व्यवस्था की गई। पिछली पाँच-छः शताब्दियों में बंगाल में जितनी धर्मोन्नति नहीं हुई थी उतनी पूज्यश्री के प्रताप से हुई।

तपागच्छाधिपति आचार्य-प्रवर सूरि सम्राट श्रीविजयहीर सूरीश्वरजी महाराज एक महान् शासन-प्रभावक आचार्य थे। उन्होंने अकबर जैसे सम्राट को बोध देकर प्रभावना करवाई। वे महापुरुष बंगाल में पधारे होते तो अनेक शासन-प्रभावना के कार्य करवा सकते, परन्तु 'क्षेत्र स्पर्शना' के अभाव में वहाँ नहीं जा सके। वह लाभ ये सूरि सम्राट दे सके हैं। अतः पाँच-छः सदियों की समयावधि में सबसे अधिक लाभ हमारे चरित्र नायक ने दिया है इस में जरा भी सन्देह नहीं है।

मुर्शिदाबाद का सौभाग्य

धन, धान्य और वैभव की दृष्टि से मुर्शिदाबाद समृद्ध था। यहाँ बहुत से धनाढ्य रहते थे। आज भी वहाँ कई ऐसे बड़े मकान हैं

जिनमें तीनसौ मनुष्यों का विशाल परिवार आसानी से रह सकता है। इन मकानों पर से संयुक्त परिवार प्रथा का एवं घर के वैभव और ऐश्वर्य का अनुमान लगाया जा सकता है

इस नगरमें मुख्य श्रेष्ठिवर्य श्री विजयसिंहजी दुधेडिया थे। श्रीयुत् विजयसिंहजी दुधेड़िया को श्रेष्ठिवर्य कहा जाय या राजा कहा जाय यह प्रश्न उठ सकता है क्योंकि पुण्य के प्रभाव से उन्हें जो ऐश्वर्य प्राप्त था वह राजा से भी बढ़ कर था। वे विशाल जमीन के मालिक थे, उनकी छोटी सी सेना थी, बहुत से हाथी घोड़े भी। नौकर-चाकरों की तो गिनती नहीं। अतः ऐश्वर्य की दृष्टि से नरेश थे, और लोग भी नरेश कहते थे। फिर भी विधिवत् राज्याभिषेक नहीं हुआ था अतः हम भी उन्हें एक विशिष्ट श्रेष्ठी मानें यही अधिक वास्तविक होगा।

इस महान् ऋद्धिशाली सेठने पूज्यपादश्रीके गुणों से आकर्षित होकर उनका भव्य स्वागत किया। जैसे धर्म-नरेश स्वदेह से आगमन कर रहे हों और उनकी प्रवेश-यात्रा निकल रही हो ऐसा भव्य कलामय दृश्य था, अथवा दशहरे के दिन दरबार की जो प्रभावशाली शोभा-यात्रा निकलती है उसके समान यह प्रवेश यात्रा दर्शनीय थी। उस समय गरीबों को दान भी दिया गया था।

एक भव्य दीक्षा-महोत्सव

पूज्य प्रवर आगमोद्धारकश्रीजी के पुनीत चरणों में दीक्षा लेने की सूरत के दो सज्जनों की अदम्य आकांक्षा थी। पूज्यपादश्रीका फिलहाल सूरत में आगमन संभव नहीं था और ये दोनों सज्जन दीक्षा में

विलंब सहन नहीं कर सकते थे। झवेरचंदभाई और देवचंदभाई–इन दोनोंको संसार में एक दिन बिताना भी विष समान लगता था।

अब तक अनेक भाग्यवान संसार की ममता त्याग कर संयम मार्ग का सुतरां स्वीकार कर पूज्य पादश्रीके चरणों में आ बसे थे। परन्तु ये दो दीक्षाएँ बंगाल में हुई जहाँ पहले कभी दीक्षा–उत्सव हुआ हो यह जानने के लिए इतिहास के पृष्ठ फिराने पडें ऐसा है; अतः कुछ विस्तृत विवरण देना समीचीन होगा।

संघ का आनंद

श्री अजीमगंज जैन संघ एवं राय बहादुर श्री दुधेडियाजी को यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि ये दोनों सज्जन दीक्षा लेने के शुभाशय से सूरत से यहाँ पूज्यपादश्री के पास आए हैं। अतः पूज्य-पादश्री से विनय पूर्वक कहा–"गुरुदेव! इन दोनों पुण्यवानों को कृपया हमारे शहर में दीक्षा दीजिए और दीक्षा का महोत्संव करने का सौभाग्य हमें प्रदान कीजिए। बंगाल में ऐसा प्रसंग मनाया गया हो इसकी जानकारी हमें नहीं हैं। पुनः कब अवसर मिलेगा सो हम नहीं जान सकते। अतः गुरुदेव! आप हम पर कृपावृष्टि कर दीक्षा–उत्सव का लाभ हमें लेने दीजिए।

पूज्य आगमोद्धारजीने श्री अजीमगंज जैन संघ एवं रायबहादुर श्री विजयसिंहजी की प्रार्थना स्वीकार की।

ज्योतिषी बुलायें गये, मुहुर्त निकाला गया। दीक्षा के लिए विक्रम संवत् १९८१ आषाढ शुक्ला पंचमी का दिन निश्चित हुआ। जेठ वदी (आषाढ वदी) त्रयोदशी से महोत्सव का शुभारम्भ हुआ।

सूरत से भी संगीतकार प्रभु-भक्ति के लिए बधारे थे। महोत्सव के साथ संघ भक्ति में भोजन तो होता ही है। यह भक्ति ऐसी विशिष्ट थी कि राय बहादुर श्री विजयसिंहजी स्वयं अपने स्वामि-बंधुओं को प्रेम पूर्वक परोसते थे।

वर्षीदान-यात्रा

दीक्षा के शुभ दिन से एक दिन पहले वर्षीदान का जलूस निकला। इस प्रसंग में बाहर से आये हुए बहुत से धर्मप्रेमी सम्मिलित हुए। बरसी-दान के जलूस में छः हाथी, दो सौ सैनिकों की पलटन, पचास निशान तथा अन्य भी साज़ सरंजाम था। कोई राजकुमार दीक्षा लेने जा रहे हों ऐसा रमणीय दृश्य था।

यह वर्षीदान-यात्रा 'राम बाग' उद्यान पहुँची। वहा चैत्यवंदनादि कर के यह कार्य पूर्ण हुआ।

दूसरे दिन के प्रातःकाल से वातावरण दिव्य बनता गया। रामबाग-उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे चतुर्मुख प्रभु के समक्ष उन दोनों बन्धुओं को दीक्षा दी गई! दोनों के मुख पर त्याग का आनन्द लहरें ले रहा था। पूज्य प्रवरश्री का चातुर्मास भी अजीमगंजमें हुआ। वहाँ बंगाल और बिहार प्रान्तों के जैन तीर्थों के तीर्थोद्धार तथा सुरक्षा के लिए योग्य प्रबंध किया गया।

विहार

प्रभावशाली चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य आगमोद्धारकश्री ने बंगदेश से विहार किया, और बिहार प्रान्त की यात्राएँ कीं। यहाँ के

तीर्थों के उद्धार और सुरक्षा के लिए भी उचित कार्यवाही करते हुए पूज्य श्री मरुधर-भूमि में गये। वहाँ सादड़ी नगर में चातुर्मास किया।

बंगाल से यहाँ आते हुए मार्ग के गाँवों में मूर्तिपूजा न माननेवालों के साथ चर्चा होती, दिगंबरों के साथ भी चर्चा होती थी। उस में विजय पताका फहराते हुए सादड़ी नगर पधारे थे। यहाँ के भाग्यवान् श्रावकों ने एक 'महा उपधान तप' कराया था जो मारवाड़ में अद्वितीय माना गया था।

*

तेरहवाँ अध्याय

दिगंबरों का उपद्रव

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से श्वेतांबर और दिगंबर-जैन धर्म के जब से ये दो विभाग हुए तब से जैन धर्म की अवनति होती रही है, यद्यपि बीच बीचमें कई बार उन्नति भी हुई है जो कि सोये हुओं को जाग्रत करे ऐसी होती थी, परन्तु आगे बढ़ानेवाली नहीं। मेवाड़ के महान् तीर्थ श्री केशरियाजीका झगड़ा कई वर्षो से चला आ रहा है वर्तमान में भी ऐसा नहीं कह सकते कि झगड़ा पूर्णत: मिट गया है। यहाँ की श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति श्वेताम्बर और दिगंबर ये दो विभाग बनने से पहले की है। इस कारण दिगंबर लोग इस मंदिर और मूर्तिका अधिकार अपने हाथ में लेना चाहते थे जब कि वर्षो से इसका अधिकार और व्यवस्था श्वेतांबर सम्हालते थे। श्वेतांबरों की शारीरिक और प्रादेशिक शक्ति घटने पर दिगंबर लोग इस पर अपना हक़ जमाने का निंदनीय प्रयास किया करते थे।

इस जिनमंदिर का ध्वज-दंड जीर्ण हो गया था अतः जीर्णोद्धार कर नया चढ़ाना था, परन्तु वक्र और जड़ दिगंबर लोग किसी तरह यह काम नहीं करने देते थे। आख़िर पूज्य आगमोद्धारकश्रीने अनेक विक्षेपों के बीच उपसर्ग सहन करके यह कार्य सम्पन्न किया, और वहाँ भी शासन-ज्योति जगमगाती रखी।

गुजरात की भूमि पर

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य महाराज विचरण करते करते मोयणी पधारे ।

विक्रमकी बीसवीं शताब्दी का समय जबरदस्त क्रान्ति का युग कहा जा सकता है । यूरोपीय कूटनीतिज्ञोंने कूटनीतिके प्रयोग कभी के शुरू कर दिये थे । उन्होंने मुसलमानों को भीतर से उकसा कर उनके द्वारा मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने के प्रयत्न करवाये । दूसरी ओर वे पादरियों तथा मिशनोंके द्वारा सत्ता और धन के जोर से इसाई धर्म का प्रचार करवाते थे । इन दोनों के बीच जैन और वैदिक धर्मका ह्रास किया जा रहा था । कतिपय आर्य-संस्कृति के रक्षक विद्यावानों को इस कुटिल चाल का पता लग गया । फलतः 'हिन्दू महासभा' नामक संस्था स्थापित हुई ।

विचित्र हवा

दूसरी ओर यूरोपीय कुटनीतिज्ञों ने धर्म-सुधार की एक विषैली वायु पैदा की थी । देश के बहुत से युवक उस से आकर्षित हो चुके थे । जैन युवक भी इस विषैली हवा से अलिप्त नहीं रह सके, उन पर इस वायु का असर हुआ । परिणामतः यह वर्ग देवद्रव्य, बालदीक्षा, दीक्षाप्रतिबंध, मंदिर, मूर्ति, ज्ञान, उपधान, उद्यापन, उत्सव, साधर्मिक वात्सल्य आदि के सम्बन्ध में शास्त्रीय बातों को दूर धकेल कर मनमानी बातें करने लगा ।

ऐसी विचारधारा धारण करनेवाले और जैन कुल में जन्म ले कर जैन शासन को डगमगाने वाले लोगों की एक मंडली एकत्रित

हुई। उसने अपना नाम 'जैन श्वेतांबर कोन्फरन्स' रखा। इस सुन्दर नाम को देख कर बहुत से अनजान जाल में फँस गये। इस संस्थाने धर्मशास्त्रों के विरुद्ध हो कर 'दीक्षा-प्रतिबन्ध' विषयक प्रस्ताव पारित किया।

'ऐसे समय क्या किया जाय? इस विषय पर पूज्यपाद आगमोद्धारकजी बहुत विचार मग्न रहते थे। इसी बीच श्री सूरत जैन संघ के नेताओंने अपने नगर को पावन करने पधारने की उनसे बिनती की। पूज्यपाद श्री ने इसे स्वीकार किया। सूरत पधारे। सूरत में आप का शुभागमन पन्द्रह वर्ष की लम्बी अवधि के बाद हो रहा था अतः सूरत के जैनों ने उनका बहुत उष्मापूर्ण स्वागत किया।

संस्थात्रयम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री के सहयोग तथा मार्गदर्शन में 'देश-विरति-धर्म आराधक-समाज' 'यंगमेन सोसाइटी' तथा 'नवपद आराधक समाज' नामक तीन संस्थाएँ कार्य करने लगीं।

'देश विरतिधर्म आराधक समाज' का सूरत में बड़ा महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ। राय बहादुर श्री विजयसिंहजी दुधेड़िया उसके चेतनामय, परम श्रद्धापरायण अध्यक्ष थे। वे सुप्रसिद्ध तो थे ही, धनकुबेर एवं विद्यावारिधि भी थे। उनके अजीमगंज के महल में उनका अपना स्वतन्त्र ज्ञान भंडार था, जिसमें करीब पचीस हजार से अधिक पुस्तकें थीं। ऐसे समर्थ ओजस्वी महानुभाव अधिवेशन के अध्यक्ष-पद पर सुशोभित थे।

कोन्फरन्स परिवर्तनवादी, स्वच्छन्दी, भौतिकवादी संस्था थी। वह अपने अध्यक्ष भी इसी तरह के भौतिक गुणधर्मवाले व्यक्तियों को बनाती थी, और इस तरह शासन की इमारत की नींव हिला डालने का प्रयत्न करती रहती थी। उसके विरुद्ध उपर्युक्त तीनों संस्थाओंने जबरदस्त मोर्चा लिया। सभाएँ की गई और उनमें दीक्षा आदि विषयों पर शास्त्रीय प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। परन्तु कोन्फरन्स की शक्तिने संघकी सुरक्षित एकता का नाश किया। संघ के दो विभाग बन गये, एक परंपरा प्रेमी शास्त्रीय वर्ग और दूसरा भौतिकवादी अशास्त्रीय वर्ग।

इस अवसर पर श्री संघ को शास्त्रीय तत्त्वों तथा शास्त्रीय नियमों की जानकारी मिले, साथ ही श्री आगमोद्धारकजी के द्वारा चर्चास्पद बातों का विश्लेषण भी जानने और समझने को मिले इस पवित्र आशय से 'सिद्धचक्र' नामक पाक्षिक पत्र शुरू हुआ।

नाटक न टिका

बम्बई के कुछ सुधारक लोग साधु संस्था और पवित्र दीक्षा को बदनाम करने के अनेक प्रयत्न करते थे। इसलिए उन्होंने 'नवयुग नाटक समाज' नामक एक निम्न कोटि की नाटक कंपनी बनाई। इस कंपनी ने 'अयोग्य दीक्षा' नामक नाटक अभिनीत करने का विज्ञापन किया। यह नाटक एकदम कल्पित था, साधु संस्था को नीचा दिखाने और बदनाम करने की मलिनतम भावना से ही इसका आयोजन किया गया था।

पूज्यपाद आगमोद्धारकजी ने ये समाचार जानकर नाटक कंपनी के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। सुधारकों ने बहुत सामना किया परन्तु पूज्यश्री के आन्दोलन के सामने उनकी एक न चली। इस तरह उक्त नाटक के जन्मोत्सव से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

इस चर्चा-प्रकरण की अवधि में महाराजश्री के चातुर्मास सूरत तथा बंबई में हुए।

*

चौदहवाँ अध्याय

रक्षक से भक्षक

तीर्थ शिरोमणि सिद्धाचलजी के शिखर पर बिराजमान अलबेले आदीश्वर भगवानकी यात्रा करने के लिए दूर निकट से अनेक यात्री आते हैं। उनमें धनवान भी होते हैं और गरीब भी; परन्तु सबके मन में भगवान से भेंट करने की धर्म-भावना होने के कारण अमीर गरीब का कोई भेद नहीं होता।

अप्सराओं के समान सुन्दर सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर दादा के दर्शन करने जाती हैं और दर्शन करके धन्य हो जाती हैं।

कई धनकुबेर के समान धनवान् लोग दिव्य राजसी वैभव के साथ बड़ी उमंग से दादाके दरबार में दरबारी की अदा के साथ जाते हैं और दादा को वंदन करके वापस लौटते हैं।

पालीताणाका राजा यह दृश्य देखता है। पतित-पावन, शरणागत वत्सल परमात्माके दर्शन करने जानेवाले तथा दर्शन करके लौटनेवाले हर्ष भरे यात्रियोंके समूह को देख कर अपने आपको एवं अपने नगरको कृतकृत्य समझने के बदले यह राजा मुगलाई खयालों में उलझ जाता है।

राजा के अराजक विचार

राजाने सोचा, "दूर दूरके धनाढ्य लोग मेरे गाँव में होकर ही यात्राको जा सकते हैं। अन्य तरह से जाना उनके लिए बहुत कठिन

है। ये लोग मुझे सीधी तरह धन नहीं देंगे। इन पर टैक्स लगाने से ही धन मिलेगा। टैक्स न देनेवालेको पर्वत की सीढ़ी पर कदम ही नहीं रखने दूँगा। पालीताणा शहरका मैं मालिक हूँ आखिर।"

इस राजाने धन के लोभ से सूचना प्रचारित की "सबसे पहले यात्री मुझे अर्ध-सुवर्णमुद्रा देगा, उसके बाद ही यात्रा कर सकेगा।"

धर्म-विरोधी धर्मांध मुसलमान राजाओंने आर्यों के तीर्थों की यात्रा करनेवाले यात्रियों पर टैक्स लगाया था जिसे 'जजिया' कहते थे। यह टैक्स मुसलमान राजाओं पर काला कलंक माना जाता था।

बुद्धिमान बादशाह अकबरने अपने पुरोगामियों के कलंक को धोने के लिए परमपूज्य आचार्य देव श्री विजयहीर सूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से 'जजिया' उठा लिया था। परन्तु धनलोलुप पालीताणा-नरेश ने यह टैक्स फिर से शुरू करने की जो घोषणा की मुस्लिम बादशाहों ने हटा दिया था।

जैन श्रावक संघों ने इस राजा के अन्यायपूर्ण टैक्स का नम्रता पूर्वक विरोध किया। श्रमण-संघ के नायक आचार्य देवों ने राजा को शान्ति पूर्वक बहुत बहुत समझाया। इस कार्य में पूज्य आगमोद्धारक-श्री का बहुत बड़ा हाथ था।

आगमोद्धारकश्री का समझाना

'क्षत्रियकुल भूषण राजाओं के वंश में उत्पन्न हे राजा! यात्रियों पर टैक्स लगाना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम अपने पूर्वजों की कीर्ति को कलंकित न करो। यह राज्य कोई विरासत में मिली हुई

पूँजो नहीं है। संघनें तुम्हारे पूर्वजों को इस तीर्थ की रक्षा के लिए नियुक्त किया था, और तुम्हारे वंशजों के कुटुंबों के योग क्षेम के हेतु इन गाँवों की आय के अमुक अधिकार दिये थे। आज तो तुम इन गाँवों के मालिक बन बैठे हो। फिर इतने से सन्तुष्ट न हो कर तुम तीर्थ-यात्रियों पर टैक्स लगाने की इच्छा रखते हो? ऐ राजा! समझदार बनो, नहीं तो तुम्हारी प्रजा और जैन संघ तुम्हारे अन्याय की हँसी उडाएँगे; तुम्हारा नाम, तुम्हारा यश, तुम्हारा वर्चस्व क्षीण होगा। जरा अच्छे बनो और समझो।

निष्ठुर उत्तर

कामान्धों और मदान्धों का हृदय विवेकहीन हो जाता है। यह राजा मदान्ध बना अतः उसमें विवेकहीनता आई। राजाने कहा, "सवा हजार स्वर्णमुद्राएँ हर माह या पन्द्रह हजार स्वर्णमुद्राएँ हर वर्ष देंगे तो ही तीर्थ यात्रा के लिए ऊपर जा सकेंगे, अन्यथा नहीं।"

यात्रा-बन्द का ऐलान

राजा के दुराग्रह के कारण जैन संघ को शत्रुंजय गिरिराजकी पवित्र यात्राको जाना बन्द करना पड़ा। दिन बीतने लगे, परन्तु पाषाण हृदय राजा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पालीताणाका राजा ब्रिटिश साम्राज्य का मांडलिक राजा था। उसके विरुद्ध सर्वोच्च अदालत में मुकदमा दायर किया गया। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश यूरोपीय व्यक्ति थे; और यूरोपीय व्यक्ति अर्थात् दो बिल्लियों का फैसला करनेवाला कूटनीतिज्ञ बन्दर—फिर भी विनाशक विषम कालकी बलिहारी है कि इच्छा न होते हुए भी ऐसे कूटनीतिज्ञों से

न्याय माँगने जाना पड़ता है। काल के प्रभाव से जैन संघ को भी उनका आश्रय लेना पड़ा।

न्यायालय का न्याय?

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आया, "जैन लोग पालीताणा के ठाकुर को प्रतिवर्ष चार हजार सुवर्ण मुद्राएँ दें। राज्य की सुरक्षा के लिए अर्थतन्त्र का सशक्त होना जरूरी है, और प्रजा के पास से धन लिए बिना राजाओं से राज्य-सुरक्षा नहीं हो सकती। अतः हम 'टैक्स' को आवश्यक मानते हैं।

यद्यपि राजाओं को अपनी प्रजा से उचित अनुपात में और दुःख न पहुँचे उतना धन टैक्स द्वारा लेना चाहिए, तथापि जैन धर्म के अनुयायियों के अल्प संख्याबल को देखते हुए उनसे पन्द्रह हजार स्वर्ण मुद्राएँ लेना ज्यादती है, कुछ हद तक अन्याय पूर्ण है, अतः हम केवल चार हजार सुवर्ण मुद्राएँ प्रतिवर्ष लेनेका अधिकार पालीताणा नरेश को देते हैं, और इस अधिकार को हम मान्य करते हैं।"

इस निर्णय से जैन संघ को हर्ष भी हुआ और विषाद भी। हर्ष इस लिए कि पन्द्रह हज़ार के स्थान पर चार हजार सुवर्ण मुद्राएँ देनी होंगी। विषाद इस लिए कि धर्म में हस्तक्षेप करनेवाली प्रथा धार्मिकों पर लादी जानेका प्रारंभ हुआ। अन्य राज्य भी इसका अनुकरण करेंगे। इससे धर्म विषयक व्यक्ति-स्वातन्त्र्य लुप्त हो जानेका भय सदाके लिए मस्तक पर नंगी तलवार की तरह लटकता रहा और तीर्थ यात्रियों की संख्या में कमी आनेका भय भी उपस्थित हुआ।

स्थायी निधि

जिन-शासन के योगक्षेम के हित-चिंतक पू० आगमोद्धारकजी को चिंता होने लगी कि इस राजाको प्रति वर्ष चार हजार स्वर्ण-मुद्राएँ कहाँ से दी जाएँगी? साथ ही यह भी चिंता हुई कि मध्यम वर्ग तथा गरीबों के लिए यह तीर्थयात्रा लगभग बन्द हो जाएगी ऐसे विचारों के अन्तमें उन्होंने इस विषय में कुछ उद्यम करनेका मनमें दृढ निश्चय कर लिया।

पूज्यश्रीने उपर्युक्त हेतु से अहमदाबादके चातुर्मास में व्याख्यान के बीच संघके सामने स्थायी निधि के लिए योजना पेश की जिस निधि के सूद में से राजाको चार हजार स्वर्ण मुद्राएँ मिला करें।

श्री संघने शासन के सरताज के वचनोंका हृदय पूर्वक सहर्ष स्वागत किया—"आपकी वाणी हमारे लिए आज्ञा ही है आप जैसा कहें वैसा करने को हम सहर्ष तत्पर हैं।"

पूज्यश्री ने कहा, "आपको अपनी शक्ति के अनुसार काम करना है। राजाका अन्याय स्पष्ट है, परन्तु कलिकालमें धर्म प्रेमियों को धर्म के लिए ऐसा बहुत कुछ सहन करना पड़ता है मध्यम वर्ग के जैन लोग यात्रा के पवित्र लाभ से वंचित न रह जाएँ ऐसी व्यवस्था करना श्री संघ के सम्पन्न पुण्यवानोंका परम कर्तव्य है; और आपको यह कर्तव्य उचित ढंग से पालना चाहिये।

अहमदाबाद के श्री संघने चार लाख रुपयों की निधि एकत्रित की और भारत भर के जैन संघ के सम्पन्न लोगों को इच्छानुसार लाभ

लेने की विनती प्रकाशित की। सभी संघोने इस विनतीका सहर्ष स्वागत किया, और इस फंड को बारह लाख रुपयें से भर दिया।

यह विशाल फंड श्री आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ीको दिया गया। उस पेढ़ीने उक्त रकम अन्य व्यापारी प्रतिष्ठानों में रोकी। उसके ब्याज में आती हुई चारहजार स्वर्ण–मुद्राएँ राजा की धनलोलुपता की तृप्ति के लिए दी जाने लगीं।

कानून हटा पर कलंक न मिटा

प्रकृति के अटल न्याय के सामने यह असंभव है कि धर्मार्थ–द्रव्य को हड़पने वालें सुख से जी सकें। पालीताणा–नरेशका राज्य चला गया। राजा गये, रानी गई, और राजकुमारी गई। आज तीर्थ पर टैक्स लगानेवालें का वंश सामान्य जनता का अंश बन गया है, परन्तु उक्त कलंक की कालिमा आज भी यथावत् रही है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

देवद्रव्य की रक्षा

गौरांग जाति की नीति

बाहर गोरी और भीतर काली आंग्ल जाति के कूटनीतिज्ञोंने भारत अथवा भारत के बाहर यदि कोई मुख्य कार्य किया है तो वह प्रत्येक आर्य धर्म की भावनाओं के मूल बीजों को नष्ट करनेका राक्षसी कुकृत्य ही किया है। आंग्ल जाति के पास बुद्धि थी, और दूरंदेशी भी जिसका उपयोग उसने प्रत्येक धर्म में घुसकर सुधारके बहाने ज़हरीली परन्तु उन्मादभरी हवा फैलाने में किया। यह एक ठोस सत्य है कि उसने इन शक्तियों का प्रयोग केवल अपने देश के हित में और अन्य देशोंकी जनता के बाह्य एवं आन्तरिक शोषण में किया। इतिहास गवाह है कि आंग्ल कूटनीतिज्ञोंने हमारे ही धर्म के अनुयायी युवकों से देवद्रव्य के विरुद्ध आन्दोलनका श्री गणेश करवाया और उसके लिए अजीबो गरीब दलीलें खोज निकालीं।

भ्रान्तिपूर्ण दलीलें

"आज जैन लोग दुःखी हैं। उनके उद्धार के लिए यह द्रव्य खर्च किया जाय तो उसमें क्या पाप है? जैन रहेंगे तो ही जैनधर्म रहेगा। भगवान् तो वीतराग हैं, उन्हें धन से क्या मतलब? आज देवमंदिरों में अगणित द्रव्य है, सो किस काम का? जैनों का दिया

हुआ धन जैन खाएँ इसमें क्या पाप है? भगवान् हमारे पिता हैं। हम उनकी सन्तान हैं। पिता की पूंजीका उपभोग करने में सन्तान को क्या पाप लगता है?"

इस आन्दोलनका नेतृत्व आचार्य धर्मसूरिजी (काशीवाले) ने किया था। उन्हें शास्त्रोंकी अपेक्षा अपनी ख्याति अधिक प्रिय थी। वे गुरुकुलवास से दूर थें। यह आन्दोलन कइयों को प्रिय लगा। इसका प्रतिकार कौन करे?

प्रतिकार

पूज्य प्रवर आगमोद्धारकजीने उक्त आन्दोलनका सामना करने का आह्वान किया। उन्होंने शास्त्रीय पद्धति पूर्वक अच्छी तरह सख्त सामना किया। शास्त्रीय पाठों तथा व्यावहारिक तर्कों से सब समझाया।

देवद्रव्य इकट्ठा कर के उसे दुःखी जैनों को बाँट देने से उद्धार हो जाएगा–यह मान्यता अत्यन्त भ्रान्तिपूर्ण है। जो सच्चे दुःखी जैन है वे तो इस देवद्रव्य का स्पर्श भी नहीं करेंगे, और उन्हें यह द्रव्य दिया भी नहीं जा सकता।

"आज हम जो जिनमंदिर देख रहे हैं वे पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित देवद्रव्य की व्यवस्था के परिणाम हैं। साथ ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जिन के पेट में या बाह्य उपयोग में देवद्रव्य लगा है वे दुःखी दिखाई देते हैं। यदि सारा गाँव इस कार्य में सम्मिलित हो तो सारा गाँव दुःखी पाया जाता है। जो जैन लोग देवद्रव्य से बनाये गये मकानों में किराये पर रहते हैं और उचित पर्याप्त किराया नहीं देते उनमें से भी अधिकांश दुःखी दिखाई देते हैं। इतना होते हुए

भी देवद्रव्य का उपयोग करने का कहना जैनों का दुःखी बनाने के बराबर है। ऐसे कहनेवाले लोग जैनों के हित के विरोधी हैं।

इस समय आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी, श्री गोडीजी जैन मंदिर या इन के जैसी दस-बीस पेढ़ियों के पास कुछ अधिक धन होगा परन्तु ये पेढ़ियाँ जिनमंदिरों के जीर्णोद्धार के लिए रुपये देती हैं, जिससे जैन संस्कृति के धाम रूप जैन मंदिर आज मौजूद हैं।

जब देवद्रव्य जैसी कोई व्यवस्था नहीं होगी तब आबू, राणकपुर, कुंभारियाजी जैसे मंदिर भी नहीं रहेंगे।

दक्षिण भारत में दिगंबर जैनों के तथा शैवों के विशाल मंदिर थे, परन्तु उन के यहाँ देवद्रव्य जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। फलतः वे मंदिर नष्ट हो गये। इन मंदिरों में आया हुआ द्रव्य पूजारी, पंडे, महंत आदि अपने लिए उपयोग में लेने लगे, अतः इन मंदिरों के खण्डहर ही बच रहे। यदि हमारे यहाँ भी देवद्रव्य की ऐसी दशा कर दें ते सौ वर्ष बाद इने गिने मंदिर ही बचे रहेंगे।

जैन संघों में देवद्रव्य के सिवा और भी अनेक फंड विविध प्रकार से किये जाते हैं, जिनका अन्य प्रकार से स्वैच्छिक उपयोग हो हो सकता है। आजकल की शिक्षा अथवा आजकल के गुरुकुल, आश्रम, बोर्डिंग हाउस आदि वस्तुतः धर्मरहित हैं, या उन्होंने धर्म के सामान्य अंशों का सम्हाल रखा है। ऐसी संस्थाओं के भी जैन लोग अच्छी रकमें दान करते हैं। इन रकमों का जोड़ किया जाय ते वह देवद्रव्य की रकम से कहीं बढ़ कर होगा।

देवद्रव्य अर्थात् 'देव का द्रव्य'--यह तो बालिश मस्तिष्क की उपजायी हुई बात है। शास्त्रों तथा वैयाकरणों ने इसकी व्याख्या "देवाय अर्पितम्" इस प्रकार की है। अर्थात् देवों को भक्ति-पूर्वक अर्पण किया हुआ द्रव्य सो देवद्रव्य।

अर्पण का तात्पर्य?

हमने किसी को कोई वस्तु दे दी, उस के बाद क्या यह कहा जा सकता है कि वह वस्तु हमारे अधिकार की है? किसी को भोजन करने बिठाकर थाली परोस दी, फिर उसे वापस ले लेना, क्या इसे अर्पण करना कह सकते हैं? या इसे अपमान करना कहेंगे?

किसीने कोई वस्तु दूसरे को अर्पण की। उस के बाद उसके पास जा कर वापस माँगे और कहे कि मेरा हक है तो क्या वह वस्तु उसे नियमानुसार मिल सकती है?

देव अर्थात् पिता; हम उनके पुत्र हैं। पिता की पूंजी का पुत्र उपभोग करे तो इस में पाप नहीं है। यह तो मूर्खों का तर्क है। देवद्रव्य पवित्र है। हम से उसका उपयोग हो ही नहीं सकता। हमारी माता हमारे पिता की पूंजी है, परन्तु हमारे लिए वह पवित्र है, उपकारक है, भक्ति योग्य है, फिर भी वह भोग्य नहीं है।

"यदि कोई मूर्ख अपनी माँ को भी स्त्री की तरह भोग्य माने तो क्या यह बात आप स्वीकार करेंगे? नहीं हरगिज़ नहीं। उसी तरह देवद्रव्य पूज्य है, और देव के लिए उस का उचित ढंग से व्यय किया जा सकता है, परन्तु वह हमारे लिए भोग्य नहीं ही है।"

इस तरह अनेक उदाहरण और तर्क दे कर पूज्य श्री ने सब को समझाया। सभी सुविहित आचार्यों ने इस बात को स्वीकार किया, और इस प्रकरण का बहुमान्य अन्त आया। जिन लोगों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया वे संघ से दूर जा गिरे।

ये महापुरुष आगमोद्धारक कहलाते हैं, परन्तु इन्हें शासनोद्धारक मानें तो जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस महात्माने शासन–सुरक्षा एवं शासन–प्रभावना के अनेक कार्य किये हैं।

आज बहुत से गाँवों में सरचार्ज का अजगर प्रविष्ट हो गया है, कई स्थानों में प्रविष्ट होने का मौका ताक रहा है। परन्तु आगे चल कर यह अजगर कहीं देवद्रव्य को भी निगल न जाय, इस बात की सावधानी बरतनी होगी। कालान्तर में सरचार्ज ९० प्रतिशत और देवद्रव्य १० प्रतिशत होगा। उसके बाद तो सर चार्जरूपी अजगर देवद्रव्य पर पूर्ण अधिकार जमा लेगा, अतः सावधान रहना परमावश्यक है।

*

सोलहवाँ अध्याय

मुनि-सम्मेलन

सम्मेलन का उद्देश्य

आध्यात्मिक दृष्टि से पतनोन्मुख काल में आर्य संस्कृति तथा जैन धर्म पर मिथ्यामतियों के आक्रमण होते ही आये हैं, इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसी तरह जब भौतिक वातावरण नदी की बाढ़ की सी तेजी से बढ़ रहा हो तब जैन धर्म प्राप्त किये हुए आत्मा भी उसमें बह आते हैं और पूर्व-परंपरा से चले आते हुए भगवान् द्वारा प्रदर्शित नियमों में स्वच्छन्दता या रियायत चाहने लगते हों तो वह भी आश्चर्यजनक नहीं है। जैन धर्म के अनुयायी गृहस्थ-वर्ग की यह स्थिति हो तब साधुवर्ग उसका इलाज करता है। परन्तु साधुवर्ग में मतभेद, मनस्विता अहं, लोकेषणा आदि बढ़े, और उसमें से शास्त्र के अर्थ और भावार्थ को तोड़ने मरोड़ने की प्रक्रिया शुरू हो जाए तब रक्षक कौन?

भगवान् का शासन इक्कीस हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रूप से चलनेवाला है अतः आत्मानुलक्षी तथा जगज्जीव-हितैषी मुनिप्रवर एवं सुश्रावक अल्प संख्या में ही सही परन्तु सदा विद्यमान होते हैं। प्रस्तुत समय में मुनिवर्ग एवं गृहस्थवर्ग में कुछ विषयों में विषमता मालूम हो रही थी। देवद्रव्य, बालदीक्षा, मालारोपण, बाहर से आते

हुए उपद्रव्य आदि के विषय में क्या किया जाय ? इस हेतु से एकता की परम आवश्यकता थी।

पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज, पूज्य आगमोद्धारकश्रीजी आदि आचार्य भगवंतों को एवं श्री राजनगर अहमदाबाद के नगरसेठ श्री कस्तुरभाई मणिलाल आदि सुश्रावकों को सभी मुनिवरों का एक स्थान पर एक मुनि सम्मेलन आयोजित करने का विचार आया करता था। इस विचारधारावाले महानुभावों ने विचार कर मुनिसम्मेलन कराने का निर्णय किया।

प्रारूप का हल

इस कार्य का नेतृत्व श्री कस्तुरभाई मणिलाल ने किया। उन्होंने बड़े बड़े आचार्यों से मिलकर उनकी सम्मति तथा आशीर्वाद प्राप्त किये। वे उन्हें आमंत्रण-पत्रिका का प्रारूप बताते और साथ ही अहमदाबाद पधारने की विनती कर आते। अब तक सभी आचार्यों ने मुनि-सम्मेलन करने में सहमति प्रकट की और अहमदाबाद आने के विषय में आशास्पद भाव प्रकट किया।

आखिर में पूज्य आगमोद्धारकश्रीके पास पुनः गये। उन्हें आमंत्रण पत्रिका का प्रारूप पहले नहीं बताया था सो अब बताया और अहमदाबाद पधारने की प्रार्थना की। पूज्य आगमोद्धारक श्री ने प्रारूप पढ़ कर तुरन्त कहा कि यह प्रारूप ठीक नहीं है।

नगरसेठ विचार में पड़ गये। कहने लगे, "महोदय! सभी आचार्यों से पढ़वा कर यहाँ लाया हूँ, सब ने इसे मान्य रखा है।"

पूज्य आगमोद्धारकश्रीने कहा, "होगा। परन्तु आपने इस में लिखा है कि "हमारे राजनगर के श्री संघने मुनिसम्मेलन करना निश्चित किया है, अतः आप सब पूजनीयों को मुनिवरों के साथ यहाँ पधारनेका अनुरोध है।" इस इबारत में मुनियों पर श्रावक संघकी आज्ञाका बोध होता है, अतः इसमें औचित्य नहीं लगता। आपको भी यह उचित मालूम होता है? आमंत्रण-पत्रिका में ऐसा लिखना चाहिए कि श्रमण संघने मुनिसम्मेलन करना निश्चित किया है, अतः हम अहमदाबाद के संघ की ओर से निवेदन करते हैं कि हमारे अहमदाबाद की भूमि पर सम्मेलन कीजिये।"

नगरसेठ चतुर एवं दीर्घ दृष्टिवाले सुश्रावक थे अतः तुरन्त समझ गये। प्रारूप में सुधार किया गया, आमंत्रणपत्रिकाएँ छपवाई गईं और प्रत्येक स्थान पर पहुँचाई गईं।

अहमदाबाद का हर्ष

यह पत्रिका पढ़ कर राजनगर के श्री संघ को अपार हर्ष हो रहा था। मुनिप्रवर विहार करके धीरे धीरे अहमदाबाद पधारने लगे। नियत समय पर बहुत सारे मुनिमहाराज आ पहुँचे थे।

पू० आगमोद्धारकश्रीजी के आगमन के पूर्व आचार्यदेव श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज पधारे थे। जब पूज्य आगमोद्धारकश्री पधारनेवाले थे तब पूज्य आचार्यदेव श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराजने उन्हें लेनेके लिए अपने शिष्यों को—आचार्य विजयोदयसूरिजी आदि साधु भगवंतों को—सुतरिया बिल्डींग के बाहर सड़क पर अगवानी के लिए भेजा था। ज्योंही आगमोद्धारकश्री सुतरिया बिल्डींग के पास पहुँचे त्योंही आचार्यदेव श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज उन्हें लेने

बाहर पधारे और कहा "आप को तो यहाँ मेरे साथ ही उतरना है, आगे नहीं जाना है ।

पूज्य आगमोद्धारकश्रीजीने इसे स्वीकार किया। उन्होंने कहा, "आप बड़े हैं, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं ऐसा नहीं हूँ कि आपकी शुभ भावना की अवहेलना करूँ! हमें शासन-हित को लक्षमें रख कर कार्य करना है।"

इन दोनों आचार्यों के एक स्थान पर उतरने के समाचार जान कर राजनगर की गली गली के श्रावकों में आनन्द की लहर दौड़ गई।

नगर-प्रवेश

पूज्य आचार्य देवश्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज और पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाराज का प्रवेशोत्सव साथ में ही हुआ। उस प्रवेश-यात्रा का दृश्य ऐसा मनमोहक था मानों दो राजाओं का एक साथ प्रवेश हो रहा हो।

दोनों महापुरुष अपने विशाल समुदाय के साथ अहमदाबाद के पांजरापोल के उपाश्रय में उतरे।

मूर्तिपूजक श्वेतांबर जैनसंघ के कुल मिला कर चारसौ से अधिक मुनिवर इस सम्मेलन मे उपस्थित हुए थे।

सम्मेलन

नगरसेठ के अहाते में मंगलमय दिन को संमेलन का शुभारम्भ हुआ। शास्त्रीय चर्चाएँ होने लगीं। यह मूर्तिपूजक श्वेतांबर जैन संघका सम्मेलन था, गच्छ की बात इसमें गौण थी। तपगच्छ, खरतरगच्छ, पायचंदगच्छ, अंचलगच्छ के मुनिवरोंने इसमें भाग लिया था।

यदि चारसौसे अधिक मुनिवर बोले और विचार–विनिमय करें ते। कब पूरा हो ? अतः सत्तर मुनि नियुक्त किये गये । उनमें से उनतीस मुनियों की समिति बनी । फिर चार विचारक मुनियों की प्रवर समिति बनी । इन सब के विचार विनिमय के अन्त में पूज्य नौ आचार्य जो कुछ सर्वानुमति से निर्णय करें उसे सब मुनिवर मानें, और सब अपने अपने गच्छ में स्वीकृत करावें–ऐसा तय पाया ।

निर्णीत किये गये विषयों पर नौ आचाय विचार करते थे, उसका एक सर्वमान्य निर्णय किया जाता, और निर्णय पर सभी नौ आचार्यो के स्वीकृति सूचक हस्ताक्षर किये जाते ।

भंग और रंग

स्वप्न द्रव्य विषयक प्रस्ताव के लिए पूज्य आचार्यदेव नेमिसूरीश्वरजी तथा पूज्य आगमोद्धारकजी सहमत थे । परन्तु यह सभी श्वेतांबर गच्छोंके मुनियोंका समेलन था, और तपागच्छ के सिवा अन्य कुछ गच्छों की स्वप्न द्रव्य विषयक मान्यता भिन्न थी, साथ ही तपागच्छ के भी कोई मुनि भिन्न मान्यता रखते थे । फलत : इस विषयका निर्णय नहीं हो सका । इस कारण तपागच्छ के आचार्यश्री विजयसिद्धिसूरिजी महाराज सम्मेलन में से बीच में ही उठ कर चले गये । परिणामतः राजनगर में हो हल्ला मच गया । लोगों में जोर शोर से आलोचना होने लगी कि इन दो आचार्यो के कारण सम्मेलन भंग होने ही जा रहा है । अतः दूसरे आचार्य भी विहार करने का विचार करने लगे ।

इस कारण से पूज्य आगमोद्धारक श्री को अत्यन्त दुःख हुआ । उन्होंने सोचा, "यदि सम्मेलन इस तरह कुछ भी कार्य सम्पन्न किये

बिना उठ जाएगा तो साधु-संस्था का गौरव नष्ट होगा। शासन के कोई काम नहीं बनेंगे और जो काम बनेंगे उनमें भी ओप नहीं आएगी।

पू. आगमोद्धारकश्रीने पू. आचार्य श्री सिद्धिसूरिजी से मिलकर उनसे शासन की खातिर आग्रह छोड़ देने को कहा। यह भी कहा कि इस में शासन की हेठी होगी। आचार्य दानसूरिजी को भी बुलाकर समझाया। आखिर दोनों मान गये, और पुनः सम्मेलन आरंभ हुआ।

इस बार बहुत ही सचाई और स्पष्टता से विचार विनिमय हुआ, सर्वगच्छ-मान्य प्रस्ताव पारित हुए और बहुत ही आनन्द के साथ इस मुनि सम्मेलन की पूर्णाहुति हुई।

विक्रम संवत् १९७० के इस मुनि सम्मेलन में यदि पूज्य आगमोद्धारकजी न होते तो यह सम्मेलन न हो पाता और यदि हो भी पाता तो सही सलामत पूर्ण तो नहीं होता।

ममत्वहीनता

सम्मेलन के प्रस्तावों पर नौ आचार्यों ने हस्ताक्षर किये है; उन में पूज्य आगमोद्धारकश्री पदवी-पर्याय की दृष्टि से दूसरे नंबर के आचार्य थे, फिर भी प्रस्तावों के नीचे अपने हस्ताक्षरों में मात्र 'आनन्दसागर' शब्द ही लिखा है। वे स्वयं कभी अपने को 'आचार्य' नहीं लिखते थे। उन्होंने दो सौ से अधिक ग्रन्थों का सम्पादन किया है, अनेक नये ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु उनमें भी 'आनन्द सागरसूरि' तक नहीं लिखा, केवल 'आनन्दसागर' ही लिखते थे। मात्र केसरियाजी तीर्थ के ध्वजदंड की प्रतिष्ठा और आगममंदिरों के शिलालेखों में 'आचार्य' शब्द का प्रयोग किया है।

ऐसी थी महापुरुष की ममत्वहीनता (अनासक्ति)।

*

सत्रहवाँ अध्याय

बड़ौदा रियासत का कलंक

नगर और नगर के राजा

बडोदा वर्तमान समय का एक सुन्दर नगर है। यहाँ की भौतिक शोभा बड़ी आकर्षक है। इस का श्रेय बडोदा-नरेश श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड को है।

श्रीमान् सयाजीराव बुद्धिशाली और प्रजावत्सल राजा थे, परन्तु वे वासना, विलास, वैभव, वारुणी एवं वारांगना के मोह में लिपटे रहते थे।

भारत जैसे आर्यदेश में उनका जन्म हुआ था। परन्तु उनका लालन-पालन अनार्य संस्कृति अथवा भौतिक परंपरा के अनुसार हुआ था। वे यूरोप में बहुत रहे थे। और उन्हें वहाँ बहुत अच्छा लगता था।

पाश्चात्य लोगों के सहचार के कारण उनके जीवन में से आध्यात्मिकता नष्ट हो चुकी थी, या अत्यन्त अल्प रही थी। उनकी यह अभिलाषा थी कि उनकी रियाया शिक्षा प्राप्त करे और सुखी बने परन्तु उनका ज्ञान इस जन्म तक ही सीमित था और प्रजा को भौतिक सुख प्राप्त हो इतनी ही उनकी इच्छा थी। अध्यात्म-सम्बन्धी बातों के नाम पर उनके जीवन में केवल शून्य ही था।

भौतिक रंग में रँगे हुए इस राजा को औरों की प्रेरणा से ऐसा विश्वास हो गया कि त्याग धर्म सुखमय धर्म नहीं है। खास कर कलियुग में तो इसकी आवश्यकता ही नहीं है। फिर भी बड़ी उम्र के लोग उसे चाहें तो भले ही ग्रहण करें, परन्तु मेरे राज्य के छोटी उम्र के बालकों को संन्यासी संन्यास दें या जैन साधु जैन-दीक्षा दें यह कैसे चल सकता है? उन बेचारों ने स्त्री का मुख नहीं देखा, विलास नहीं भोगा संसार-सुख का स्वाद नहीं चखा, ऐसों को त्याग-मार्ग पर उठा ले जाना अन्याय है। मैं अपने राज्य में यह अन्याय नहीं चलने दूँगा। इस हेतु से बाल-संन्यास-दीक्षा प्रति बन्धक कानून बनाना चाहिए।

इन विचारों के फल स्वरूप "बाल संन्यास दीक्षा प्रतिबन्धक कानून" को लागू करने के पहले अपने राज्य के गजेट में ये समाचार प्रकाशित कर सर्व-साधारण के सामने रखे।

विरोध का झंझावात

भारत वर्ष की आर्य प्रजाका अध्यात्म-प्रेम जाग उठा। बड़ोदा-नरेश के नाम विरोध-दर्शक पत्र, तार और संदेशों की झड़ी लग गई। हाँ भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का उन्मूलन करने की वृत्तिवाला भी एक सुधारक वर्ग भारत में विद्यमान था। इन लोगोंने इस कानून के प्रति अपना आदर व्यक्त किया, इतना ही नहीं अपितु बाल दीक्षा को एक अत्याचार के रूप में बदनाम करना शुरू किया। साधु-संस्था को बदनाम करना इन सुधारकों के लिए एक प्रकार का मज़ेदार खेल था। ऐसे विरोध में इन्हें बहुत आनन्द मिलता था।

आधुनिक सभ्यता

वीतराग परमात्मा के शासन के प्रति वफादार रहनेवाले वर्गने इस कानून का घोर विरोध किया। पूज्यवर आगमोद्धारकजीने इस कानून को लागू होने से रोकने के लिए अथाह प्रयत्न किया। राजा के साथ पत्रव्यवहार हुआ। राजाने प्रत्यक्ष मिलने के लिए बुलाया। एक दिन निश्चित किया। 'इस रोज मैं आप से मिलूँगा आप बडोदा पधारें।' ऐसा लिखित पत्र पूज्यश्री को मिला।

पूज्यप्रवर उस समय विहार में थे। राजाने निकट का समय दिया जिससे पूज्य श्री बडोदा न पहुँच सकें। फिर भी जैन शासनके लिए सर्वस्व समर्पित करनेवाले पूज्य श्री पचीस-पचीस मील प्रतिदिन का लम्बा विहार करते हुए समय पर बडोदा आ पहुँचे।

राजाने मिलने को कहा था फिर भी वे पूज्य श्री से नहीं मिले, इतना ही नहीं ये विलासी राजा बडोदा छोड महाबलेश्वरका आनन्द लेने चले गये।

सत्ता के मदमें चूर राजाने संघ के नेताओं की एक न सुनी। साधुओं की उपेक्षा कीं, पूज्य आचार्यों की भी अवहेलना की-यहाँ तक कि जैनशासन के कर्णधारसम पू० आगमोद्धारकजी की भी परवाह न की।

शास्त्रों में उल्लिखित सरस्वती-साध्वीजी को उठा ले जानेवाले राजा गर्दभिल्ल के छोटे भाई के रूप में श्रीमान् सयाजीराव को मानें तो इस में क्या उज्र हो सकता है? अरे! बीच का मुगलकाल सुन्दरी नारी को उठा ले जाने का युग था, परन्तु 'बाल संन्यास दीक्षा प्रतिबन्ध' का युग श्रीमान् सयाजीराव की देन है।

समझाने के प्रयत्न

त्यागधर्म का अवरोधक कानून बनाने की उमंग रखनेवाले राजा को अपना मुँह पूज्य प्रवरश्री को बताने में लाज लगती होगी ऐसा मान लें तो भी पूज्यश्री उनके महामंत्री से मिले और शास्त्रीय एवं सामाजिक विवरणों से दीक्षा की महत्ता समझाने का प्रयत्न किया; मुँह के मीठे मंत्री हाँ—हाँ—हाँ कहते रहे और अधर्म-मूलक कानून अपने राज्य पर लाद दिया।

बालदीक्षा की उपयोगिता

दीक्षा अर्थात् भौतिक विषयजन्य सुख के साधनों का स्वेच्छा-पूर्वक सर्वांशतः त्याग।

इस शरीर के द्वारा आत्महित की साधना की दृष्टि से शरीर-निर्वाह के लिए पौद्गलिक साधनों का अनिवार्य उपयोग करना पड़ता है, फिर भी इन साधनों के उपभोग में सुख की कल्पना या खोज नहीं करनी होती। इह लोक तथा परलोक में भौतिक सुख मिले ऐसी इच्छा करना भी विहित नहीं।

दीक्षा का मुख्य उद्देश्य शुद्ध आत्मस्वरूप की सम्पूर्ण और शाश्वत स्थिति प्राप्त करना है।

इस तरह का शिक्षित आत्मा जब भवान्तर में जाता है और जब साधारण परन्तु स्वच्छ समझवाला बनता है तब पूर्वजन्म के संस्कारों के बीजकों के कारण छः सात वर्ष की अवस्था में भी सर्व त्याग की भावनावाला बनता है।

यदि अत्यन्त महापुण्य का सुयोग हो तो वह बाल्यावस्था में भी अपनी देह पर व्यावहारिक अधिकार रखनेवाले अपने मातापिता की सम्मति मिलने पर त्याग-धर्म का सर्वांशतः स्वीकार कर सकता है, अर्थात् दीक्षा ले सकता है ।

ऐसी बाल्यावस्था में त्याग धर्म का मार्ग अपनानेवाला भाग्यशाली आत्मा आध्यात्मिक अध्ययन बहुत सुन्दर और विपुल प्रमाण में कर सकता है । उसकी शक्तियोंका विकास आध्यात्मिक दिशा में होता जाता है. और इस प्रकार उसे दुनियाके अन्य आत्माओं पर उपकार करने की शक्ति प्राप्त होती है। यह शक्ति, अध्यात्म शक्ति, परिपक्व आयु के बाद प्राप्त करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य तो अवश्य है ।

भारत की प्राणप्रिय आध्यात्म-संस्कृति का बीज बाल-संन्यास और बाल-दीक्षा में निहित है । यही कारण है कि जो वस्तु यूरोप के वृद्धों के लिए असंभव मालूम होती है वह भारत के बालकों के लिए शक्य एवं सरल मालूम होती है।

अतिमुक्तकुमार, जंबुस्वामी, वज्रस्वामी, हेमचन्द्राचार्य, शुकदेवजी, सन्त ज्ञानेश्वर, शंकराचार्यजी आदि पुरुष बाल दीक्षित और बाल संन्यासी थे, अतः वे भारतीय आध्यात्मिक क्षेत्र में भाग्य-विधाता बन सके थे।

भारत में आध्यात्म-संस्कृति को जीवंत रखने के लिए बाल-दीक्षा और बाल संन्यास अनिवार्य है ।

क्या बालक में बुद्धि नहीं होती ?

समझनेकी शक्ति के लिए कोई विशिष्ट उम्र होनी ही चाहिए ऐसा निर्णय कोई बुद्धिमान् नहीं दे सकता । दीक्षा और संन्यास के विरोधी

लोग तथा श्रीमान् सयाजीराव यह मत रखते थे कि अट्ठारह वर्ष की उम्र तक सच्ची समझदारी नहीं आती। अदि ऐसा ही है तो

(१) चौदह वर्ष का एक बालक एस. एस. सी. में पहला नंबर लाता है और दूसरा पचीस वर्ष का युवक आठवीं बार परीक्षा देकर भी अनुत्तीर्ण होता है। इन दोनों में से किसकी बुद्धि अधिक मानी जाय ?

(२) चौदह वर्ष की उम्र में खून या चोरीका संगीन अपराध किया हो तो उसे पूरी सजा मिलती है, और सरकार यह मानती है कि अपराध बुद्धिपूर्वक किया गया है। दीक्षा के विषय में नासमझ मानना यह कहाँ का न्याय है ?

(३) स्वराज्य-प्राप्ति के राजनैतिक आन्दोलन में सात वर्ष से अट्ठारह वर्ष के भीतर तक की उम्रवालों को भी फाँसी अथवा भयंकर कारावास की सज़ा दी गई है। वहाँ 'बालक ने समझ बूझ कर राज्य के प्रति अपराध किया है' ऐसा माना जाता है तब दीक्षा के विषय में उसे नासमझ ठहराया जाता है सो किस नीति के आधार पर ?

(४) सात साल की उम्रवाला रेलगाड़ी में खतरे की जंजीर खींचे तो गुनाह समझ कर उसे दंड दिया जाता है।

(५) ग्यारह वर्ष से अधिक उम्र का लड़का आधी टिकट पर सफर करे तो उसे दंड होता है नादान समझ कर माफ नहीं किया जाता।

(६) छोटी उम्र वाले सभी नासमझ होते हैं और बड़ी उम्रवाले सभी समझदार, ऐसा कोई नियम प्रकृति ने नहीं बना रखा है।

(७) कई बार छोटे विद्यार्थियों में जो सूझबूझ और समझने की शक्ति होती है वह जीवन के छोर पर पहुँचे हुए सत्तर साल के बूढे में भी नहीं होती।

परन्तु श्रीमान् सयाजीराव ऐसी बात सुनने–समझने को तैयार नहीं थे।

एक बार वेश्याओं की सभा हुई। उस में इस विषय पर विचार विमर्श होनेवाला था कि "सतियों को सम्मान की दृष्टि से और हमें अपमान की दृष्टि से देखा जाता है, इस के लिए हमें क्या करना चाहिए।" विचार–विनिमय के अन्त में वेश्याओं को अपमानपूर्ण दृष्टि का शिकार न होना पड़े, और उनका सम्मान सुरक्षित रहे इस हेतु निम्नलिखित मनोरंजक प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित किया गया—

"संसार की सभी सती स्त्रियों से हमारा आग्रहपूर्ण अनुरोध है कि आज से आप भी सतीत्व को न बचाएँ और हमारी तरह से सर्वत्र स्वतन्त्रता पूर्वक घूमें–फिरें और आनन्द लूटें। आप के ऐसा करने से जगत की जनता हमारे प्रति घृणा करना बन्द करेगी और नारी–जगत पर आप का बड़ा उपकार माना जाएगा; साथ ही यह भी माना जाएगा कि हमारे नारी–समाज में समानता स्थापित हुई है।"

गायकवाड़ी सरकार ने अपनी विधानसभा में जो विधेयक पारित कराया वह उपर्युक्त प्रस्ताव के ढंग का है।

विक्रम संवत् २००४ में श्रीमान् गायकवाड़ सरकार का राज्य गया, उनके सब हक गये, साथ ही जालिम कानून भी गया, परन्तु जालिम कानून का काला दाग आज भी कायम रह गया है।

*

अट्ठारहवाँ अध्याय

आगम – मंदिर

तन्मयता

मुनिवरों के अधिनायकत्व के प्रतीक रूप पवित्र आचार्य–पदवी प्राप्त होने पर भी पूज्य आगमोद्धारकजी जब आगमों का संशोधन करने बैठते और प्राचीन, जीर्ण, धूलिधूसर आगम–प्रतियों के अर्ध–विगलित पृष्ठ फिराने लगते तब उसमें एक अदम्य उत्साही नवयुवक साधु की तरह ओतप्रोत हो जाते थे। उस समय यदि कोई अनजाना आगन्तुक पूज्यश्री की प्रतिभा की ख्याति सुन कर दर्शन–वन्दनार्थ अनायास आ जाय तो कल्पना नहीं कर सकता था कि ये पू० आगमोद्धारक जी हैं या एक उत्साही सेवक साधु है।

पूज्यश्री इस कार्य में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि उन्हें आगन्तुक का ध्यान ही न आता। जब सहज भाव से या किसी कारणवशात् ऊँची निगाह करते तभी आनेवाले पुण्यवान् पर ध्यान जाता।

एक बार पूज्यश्री को किसी प्राचीन भंडार की कुछ ताडपत्र की तथा कुछ कागज पर लिखी प्रतियाँ मिलीं। ये पोथियाँ अत्यन्त जीर्ण शीर्ण अवस्था में थी। उनके अधिक समय टिकने की आशा नहीं थी। इन में ५०० से १००० वर्ष पुरानी पोथियाँ थीं। पूज्य श्री इन सब प्रतियों का पूज्यभाव से बहुत ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते थे, साथ ही मन–ही–मन कुछ अगम्य वस्तुका विचार करते थे।

प्रशस्त-विषाद

अपने पूज्य तरण-तारण आगमों की ऐसी हालत देख उनके नेत्र अश्रूपूर्ण हो गये। हृदय फफक उठा। बुद्धि तर्कवितर्क में उतर पड़ी। आज अथाह परिश्रम से अनेक पोथियाँ प्राप्त कर शक्य प्रमाण में शुद्धीकरण कर, जहाँ अर्थभेद मालूम हो वहाँ पाठान्तर प्रस्तुत कर जो आगम और धार्मिक ग्रन्थ मुद्रित किये जा रहे हैं, क्या उनकी भी कालान्तर मे यही दशा होगी ?

ताड़पत्र हजार वर्ष तक टिकते हैं, काश्मीरी हाथों से बनाये हुए कागज की आयु पाँच सौ से सात सौ वर्ष तक की होती है। यह यांत्रिक कागज और मुद्रण से मुद्रित लेख तो केवल सौ वर्ष तक ही टिक सकता है।

ताड़पत्र अदृश्य होते जा रहें हैं। हस्त-उद्योग से बने हुए कागज बहुत महँगे और अलभ्य होते जा रहे हैं। इस स्थिति में हमारे पूजनीय आगम हजारों वर्ष बाद के श्री संघ को कहाँ से प्राप्त होंगे! भविष्य के साधु भगवंतों को पढ़ने को मिले और श्रावक-श्राविकाओं को दर्शन एवं श्रवण का लाभ प्राप्त हो इस हेतु क्या करना चाहिए ?

गुरुदेव का हृदय इस तरह के पावन एवं सर्वजन हितकारी विचारों से भर गया। ऐसे विचार कई कई बार आया करते। निस्संदेह कोई यह जान नहीं सकता था कि पूज्यश्री कौनसा महत्त्व का विचार कर रहे हैं।

महापुरुषों की एक विशेषता होती है, उन्हीं विचारों को बाहर प्रस्तुत करना जिनका कार्य रूप में परिणत होना संभव हो। और उन विचारों को प्रस्तुत न करना जिनका अमल संभव न हो।

वे महान् पवित्र पुरुष भी अपने विचारों के मूर्तिमान् होने की बात सोचते थे, और उनके सिद्ध होने के समय की धैर्यपूर्वक राह देख रहे थे।

सुप्रभातम्

एक जिनमंदिर के शिलान्यास विधिका शुभ दिन था। प्रातःकाळ अरुणने आकाश में लाल गुलाल बिछाया। सहस्त्ररश्मि सविता ने आज के प्रभात को अपने स्वर्ण किरणों से मढ़ दिया।

प्रभात-गीत गाये गये। मंगल वाद्य बज उठे। नगर की सरोज-वदनी महिलाओंने अपने कोकिल कंठ से मधुर गीत गाये। क्रियाकारकोंने गंभीर ध्वनि में मन्त्रोच्चार किया। ऐसे मंगल मुहूर्त में पूज्य आगमोद्धारक महाराज जिनमंदिर के शिलान्यासविधि-प्रसंग में जा रहे थे। शिलान्यास-भूमि निकट आई। गुरुदेव हाथ में वास-चूर्ण लेकर सूरिमंत्र गिनकर वास निक्षेप कर रहे थे तभी एक धन्य व्यक्ति के नाम से अंकित ताम्रपत्र शिला के पास स्थापित होते हुए उन्होंने देखा। वासनिक्षेप कर के वापस आए।

उनके मुख पर सात्त्विक आनन्द छा गया। कई दिनों से मन में जो विचार चल रहा था, जिसके कार्यान्वय के लिए मनोमन्थन हो रहा था; उसका बहुत ही सुन्दर हल आज के छोटे से दिखनेवाले मंगल-प्रसंग में मिल गया। 'ताम्रपत्र पर लेख लिखना संभव है तो आगम लिखना क्यों संभव नहीं। अवश्य संभव है।'

उस दिन के अनूठे आनन्द का लाभ तो उस समय केवल पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्री आनन्दसागर सूरीश्वरजी महाराजने ही लिया।

यह बात अभी तो उनकी मनोभूमि में ही कल्लोल कर रही थी। बाहर आये बिना अन्य किसी को कैसे ज्ञात हो ?

पाषाण प्रतर का विचार

सम्पूर्ण आगमों को ताम्रपत्र पर लिखने का विचार जैसे आगे बढ़ता गया वैसे आगमोद्धारकजी के मन में नयें विचारोंका स्फुरण हुआ। महाराजा खारवेल और सम्राट् सम्प्रति के शिलालेख, कई राजाओं की आज्ञाएँ शिलाओं पर खुदी हुई हैं, दो हजार वर्ष बीतने पर भी ये शिलाएँ सुन्दर स्थिति में प्राप्त होती हैं अतः शिला-प्रतर पर आगम खुदवाये जाएँ तो कैसा।

अद्वितीय विचार

पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीका यह विचार इस अवसर्पिणी काल में सबसे पहला मालूम होता है। नीलमणि, गोमेदक, प्रवाल, स्फटिक आदि रत्नों की प्रतिमाएँ बनी थी। अर्जुन, जांबुनद, पीताभ सुवर्ण की मूर्तियाँ बनीं, रजत और पंच धातुओं की मूर्तियाँ बनाई गईं, अनेक प्रकारके पाषाण-खंडों में से प्रतिमाएँ बनाई गई थीं। कसोटी, काष्ठ, चंदन, हाथीदाँत आदि की मूर्तियाँ बनी थीं।

विविध प्रकार की स्याही से, सोने चाँदी की रोशनाई से भी आगम ग्रन्थ लिखे गये थे फिर भी पाषाण-आगम मंदिर अथवा ताम्रपत्र आगम मंदिर का उल्लेख शास्त्र के पृष्ठों में अथवा इतिहास के वर्णनों में लिखा हुआ नहीं मिलता।

आगम दीर्घजीवी हों और उनके द्वारा भविष्य के भव्य जीवों को जिनवाणी की प्राप्ति हो सके इस हेतु से आगम मंदिर बनवाने का

विचार एक स्वतन्त्र एवं अपूर्व विचार था। यह एक नूतन और दिव्य प्रेरणा थी। प्रथम संगमरमर के शशिधवल स्वच्छ सुन्दर पाषाण–प्रतरों पर आगम खुदवाना उपयुक्त प्रतीत हुआ।

पवित्र भूमि

जहाँ आत्मसिद्धि की साधना आसानी से होती है ऐसे सिद्धगिरि की उपत्यका में स्थित पादलिप्तपुर में पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीजी चातुर्मास रहे हुए थे। हर रोज गिरिराज की स्पर्शना करने तलहटी जाते थे। एक बार तलहटी की स्पर्शना कर लौटते हुए उनकी निगाह बायीं ओर की भूमि पर गई। शुभ संकल्प की सिद्धि का रमणीय दृश्य मन में चमक उठा। 'इस भूमि पर आगम मंदिर बने तो अच्छा।'

यह अनादि सिद्ध सिद्धान्त है कि पुण्यवान् जो विचार करते हैं वह सिद्ध होता है। पूज्यपादश्रीने उचित अवसर पा कर यह बात भाग्यशाली श्रद्धासंपन्न श्रावकों के सम्मुख प्रकट की। शनैः शनैः इस बातका सक्रिय अमोघ प्रचार हुआ। पुण्यवान् आगमोद्धारकश्री की भावना का भाग्यशालियों ने भक्तिभावपूर्वक आदर किया और उसे कार्यान्वित किया।

रेखाचित्र निर्णय

सुशिल्पियों को आमन्त्रण भेजे गए। सब को रेखाचित्र विषयक मार्गदर्शन दिया गया। बहुत से शिल्पकार रेखाचित्र के काम में जुट गए। दूसरे महीने से बहुत से रेखाचित्र प्रस्तुत हुए। पूज्य आगमोद्धारकश्रीने उन रेखाचित्रों का सूक्ष्म–निरीक्षण किया और उनकी दृष्टि एक रेखाचित्र पर स्थिर हो गई।

चार द्वार, चतुर्मुख भगवन्त, विशाल गर्भगृह, पैंतालिस देव कुलिकाएँ, पाँच मेरु आकृतियाँ, पैंतालिस चतुर्मुख जिनबिम्ब, दीवारों पर पैंतालीस आगम, गगनचूम्बी मूलशिखर; पैंतालिस का सुन्दर सुमेल था।

जब पुण्यवान् शिल्पकार भानुशंकरभाई ने रेखाचित्रका आरम्भ किया था तब उनकी उंगलियों के पोरों पर दिव्य शक्तिने वास किया हो ऐसा प्रतीत होता था। यह दिव्य शक्ति अपनी इच्छानुसार उंगलियोंको चलनेकी प्रेरणा देती थी, और सफेद कागज पर रेखाएँ अंकित होती जाती थीं। इस सुशिल्पी को शिल्प शास्त्रका ज्ञान तो था ही परन्तु शिल्पशास्त्र में अभी तक इस रेखाचित्रका समावेश नहीं हुआ था। फिर भी यह रेखाचित्र शास्त्रविशुद्ध था। पूज्य आगमोद्धारकजीने रेखाचित्र देखकर हर्ष प्रकट किया।

कार्यारंभ

तलहटी के पास की भूमि राज्य से माँगी गई। राजाने थोड़ी कीमत में और देर किये बिना भूमि दे दी। ज्योतिषियों को बुलाकर ज्योतिष दिखाया गया। क्रमशः भूमिशोधन, भूमिखनन, शिलास्थापन, द्वार-शाख-स्थापन आदि क्रियाएँ प्रशस्त मुहुर्तों में शीघ्रता से होने लगीं।

मकराना से संगमरमर आया, ध्रांगध्रा की खान और तिवरीका पत्थर आया। पालीताना का ईश्वर श्याम पत्थर भी काम में लाया गया। कुम्हार की गली से ईंटें लाई गईं, सोनगढ़ी चूना आया। शत्रुंजयी नदी की रेती आई। मरुधर और गुर्जर प्रदेश के शिल्पी आये। सैंकडों कारीगर और हजारों सेवक काम करने लगे। लाखों रुपयों का व्यय शुरू हुआ।

कुछ ही महीनों में गगनचुम्बी विशाल मंदिरका निर्माण हो गया। नयनाकर्षक संगमरमर के प्रतरों पर पैंतालीस आगम लिखे गये। उन्हें रोली से रंगा गया। और शुभ मुहूर्त एवं मंगल घड़ी में उन्हें दीवार पर लगाया गया।

पैंतालिस देवकुलिकाओं के चतुर्मुख बिंब बने। इसके साथ अद्भुत सिद्धचक्र गणधरमंदिर की स्थापना हुई थी। उसमें वर्तमान अवसर्पिणी काल के समस्त तीर्थंकर भगवानों के सभी गणधर प्रभुओं के बिम्बों की स्थापना होनेवाली थी। इन बिंबों तथा और भी बाहर से आये हुए अनेक जिनबिंबों की अंजनशलाका विधि—प्राणप्रतिष्ठा विधि—अधिवासना विधि पूज्यपाद आगमोद्धारकश्री के पुण्यमय पावन करकमलों से होनेवाली थी।

महोत्सव का प्रारंभ

महामंदिर का उत्सव भी महान् था। उसकी शोभा के अनुरूप तेरह दिनों का महोत्सव शुरू हुआ। सर्वत्र भावभीनी आमंत्रण-पत्रिकाएँ पहुँच गई थीं। देश-देश के, गाँव गाँव के भाग्यशाली आने लगे। कई पुण्यशाली धनिक अपने धनका पवित्र कार्य में उपयोग करने की भावना से आए थे। वे धन व्यय करके भक्ति-लाभ लेना चाहते थे। मध्यम वर्ग के लोग प्रभुभक्ति देखने और उसके द्वारा धन्य होने आये थे। ये महानुभाव अनुमोदन का लाभ खोना नहीं चाहते थे। पूज्य साधु-साध्वी-वर्ग भी बड़ी संख्या में उपस्थित हुआ था। यहाँ पधारे हुए सभी महानुभाव अपने आपको धन्य मानते थे। उन्हें प्रभुका उत्सव देखने के अपने पुण्यका आनन्द था।

अयोध्यानगरी की रचना

इस धारणा से कि इस महोत्सव में सम्मिलित होने बहुत से पुण्यशाली आएँगे ही, पटमय अयोध्या नगरी की रचना की गई थी। इस महामंदिर के मूलनायक भगवान आदीश्वर परमात्मा थे अतः इस मानवनिर्मित पटमय नगरीका नाम 'अयोध्या' रखा गया था।

इस नगरी की रचना अयोध्या की याद दिलाती थी। हजारों की संख्या में पंक्तिबद्ध छोटी छौलदारियाँ थीं। बीचमें बड़ी छौलदारियाँ थी। कुछ विशाल तंबू भी ताने गये थे। उत्सव मनाने के लिए अतिविशाल पटांगन बनाया गया था।

महा पटमंडप चीनांशुकवस्त्र से सुशोभित था उसे ध्वजा, पताका, तोरण, आदि सुशोभनों से राजमहल सा बनाया गया था। उसमें मेरु पर्वत, समवसरण आदि की हूबहू रचना की गई थी। वहाँ श्रीपाल महाराजा और मयणा सुन्दरी महारानी के जीवन प्रसंग दर्शानेवाले चित्र भी देखनेको मिलते थे।

कुम्भ स्थापन

माघ सुदी दशमी रविवार को जलयात्रा जलूस था। माघ सुदी सोमवती एकादशी के शुभ दिनको कुम्भ स्थापना द्वारा उत्सव का मंगलाचरण हुआ। साथ साथ अखंड दीप स्थापन, जवारारोपण, विजय स्तम्भ स्थापन विधि की गई। दोपहर को पूजाएँ और रातको भावनाएँ होने लगीं। दूर दूर के प्रतिष्ठित संगीतकार भक्तिरस जमाने आ पहुँचे थे।

अन्य दिनों में दशदिक्पाल पूजन, नवग्रह पूजन, नंद्यावर्त पूजन, अष्टमंगल पूजन, अधिष्ठायक पूजन आदि विधिविधान किये गये।

च्यवन कल्याणक

च्यवनादि कल्याणक–समारोह के लिए नाभिराजा का चीनांशुमंडित राजप्रासाद बनाया गया था। उसकी रचना सुन्दर राजमहल को भी मात करती थी। आज च्यवन कल्याणक–विधि थी, अतः उक्त मानव-सर्जित पट–राजमहल के भीतर हजारों प्रेक्षक उपस्थित हुए थे।

चिनांशु–राजमहल में रेशमी गलीचों का बना शयनागार था। सभी प्रेक्षकों की नजर उसकी ओर थी। उसमें हलका सा अँधेरा था। छोटे छोटे रत्नदीप हलका प्रकाश बिखराते थे। उस प्रकाश में नीलम के पलंग पर सोई हुई राजरानी दिखाई देती थी। उसके नेत्र हलकी सी नींद के भार से मुँदे हुए कमल-से दीखते थे। उनके मुख पर मधुर निद्रा–दर्शक हलकी–सी मुसकान दिखाई देती थी। रत्नदीप की किरणें मुख पर पड़ने से वह मुसकान स्पष्ट दिखती थी। पटांगन में नीरव शान्ति थी। इतने में आकाश से एक प्रकाश पुंज उतर आया और महारानी मरुदेवा की कुक्षि में स्थिर हुआ।

इस के साथ आकाश में से ऐरावत हाथी उतरा। संगीतकारों ने सौम्य स्वर में 'पहेले गजवर दीठो' यह गीत शुरू किया। वीणाने अपना पंचम सुर मिलाया। तत्पश्चात् मत्त वृषभराज पधारे, केसरी सिंह और लक्ष्मीजी आईं। क्रमशः माता को चौदह स्वप्न आये।

जब चौदह स्वप्न पूरे हुए तब श्रोता–दर्शकों को पता चला कि धूम्रावरण के शयनागार में सोई हुई नारी तीर्थंकर की अभिमन्त्रित माता हैं।

माता ने अपने पतिदेव के पास स्वप्नों का वर्णन किया। पतिदेवने स्वप्न-फल कहा। यह आदीश्वर भगवान का युग था। उस समय

ज्योतिषी नहीं थे। ज्योतिषी हों तो उन्हें आमंत्रण दिया जाता है। ज्योतिषी फलादेश कहते हैं। वे फलादेश में बताते हैं कि, 'परम तारक तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती राजाका जन्म होगा।'

उसके बाद च्यवन कल्याणक का जलूस निकला।

जन्म कल्याणक

अब जन्म कल्याणक मनाने का दिन आया। राजभवन लोगों की भीड से भर गया। सब लोग स्थिर बन कर जन्मविधि देखने को आतुर हो रहे थे तभी पूज्य आगमोद्धारकश्रीने मंत्रोच्चार किया और क्रियाकारकोंने सुवर्ण-कुम्भ में से भगवान को बाहर लिया। उस समय राजमहल जय ध्वनि के साथ एकाकार हो गया। उसी वक्त सबसे पहले छप्पन दिक् कुमारी देवियाँ जन्मोत्सव का लाभ लेने आ पहुँची। ये छप्पन कुमारियाँ मानवलोक के नररत्नों की पुत्रियाँ थी। यौवन के द्वार पर खड़ी थीं। रूप में रति और कंठ में किन्नरी के समान ये कमलनयना कन्यकाएँ जब झांझर कीं झंकार करती हुई प्रभु का जन्मोत्सव करने आई तब पटांगन का जनसमूह सोचता ही रह गया कि ये छप्पन कुमारिकाएँ देवलोक से आई हैं या मानवलोक से?

छप्पन कुमारिकाओंने कदलि के तीन घर बनाये। सूतिकर्म, शुचिकर्म आदि करके समवेत स्वर में गीत गाये। गरबा, नृत्य आदि किये। प्रेक्षक वर्ग सब कुछ एकाग्रचित हो कर देख रहा था। इतने में छप्पन दिक् कुमारियाँ गायब हो गई। मानव-इन्द्र का सिंहासन डोल उठा। अवधिज्ञान का उपयोग कर प्रभु जन्म के समाचार जाने। हरिणैगमेषी को बुलाकर उससे प्रभु जन्मोत्सव में पधारने की उद्घोषणा करने को कहा।

मानव शक्रेन्द्र की आज्ञा प्राप्त कर मानव हरिणैगमेषी देव ने सुघोषा घंटा के नाद से प्रत्येक देवलोक के सभी देवों को शुभ समाचार दिये और कहा कि—"इन्द्र महाराजा मेरु पर्वत पर प्रभु—जन्मोत्सव करने पधारते हैं, आप भी लाभ लेने पधारें। तत्पश्चात मानव लोक के नरदेव भगवान् को उस मंडप में बनाये गये मेरु पर्वत पर ले गये। देवताओंने स्वयं मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक किया था। यहाँ मानव भी देव प्रतीत होते थे, और प्रेक्षक वर्ग को ऐसा अनुभव हो रहा था मानों स्वयं मेरु पर्वत पर हों; वे भूल ही गये कि वे पालीताना की भूमि पर हैं।

इसके बाद प्रियंवदा परिचारिकाने महाराजा श्रीनाभि कुलकर को बधाई दी। उन्होंने भी राज्योचित जन्म—महोत्सव किया। फिर जन्म कल्याणकका जलूस निकला।

विवाह-विधि और राज्याभिषेक

भगवानने युवावस्था में पदार्पण किया। सुनन्दा और सुमंगला के साथ उनका विवाह हुआ। यहाँ तो धातु के भगवान् थे, चाँदी की सुनन्दा और सुमंगला थीं। ऋषभदेव भगवान् की विवाह विधि में पुरोहित-पुरोहितानी का कार्य इन्द्र-इन्द्राणीने किया था। यहाँ पर मानव इन्द्र-इन्द्राणीने यह कार्य किया।

बरात सजाई गई। दोनों पक्ष के लोग विवाह मंडप में आये। वर की परछन-विधि हुई, गीत गाये गये। वर-कन्या को विवाहवेदी के आगे बिठाया गया। अग्निवेदी के समक्ष इन्द्रने 'ॐ वरकन्ययोः दीर्घायुर्भवतु शुभं भवतु ऋद्धि वृद्धि कल्याणं भवतु स्वाहा' आदि मंत्र बोल कर विवाह करवाया।

तत्पश्चात् राज्याभिषेक विधि प्रारंभ हुई। उस में राजा, महामंत्री, सेनापति, नगररक्षक, और नगर सेठ—इन पाँचों की स्थापना हुई। यह दृश्य देखकर लोगों को प्राचीन राज्य की सुव्यवस्था का अनुमान होता था। इन दृश्यों को देखने के लिए अब मंडप छोटा पड़ने लगा।

दीक्षा कल्याणक

भगवान ने राज्य आदि का बँटवारा उचित रीति से किया। अब नौ लोकान्तिक देव आकर भगवान् से शासन की स्थापना करने की प्रार्थना करते हैं। भगवान उस रोज से वार्षिक (बरसी) दान देते हैं।

इस अयोध्या नगरी से भगवान का वर्षीदान का जलूस निकलता है। एक महापुण्यवान महानुभाव भगवान को ले कर श्याम गजराज पर बैठे हैं। वे भाग्यशाली सज्जन भगवान की ओर से सोने, चाँदी, तांबे के सिक्कों का खुले हाथों दान करते हैं। भगवान स्वयं दान दे रहे हों ऐसा दृश्य दिखाई देता था।

यह जलूस अयोध्या नगरी से रवाना हो कर पादलिप्तपुर के राजमार्गों पर घूम कर पुनः अयोध्या नगरी को लौट आया। इस जलूस में एक महाकाय गजराज पर आगमरत्न–मंजूषा भी थी। इस जलूस का ठाठ अवर्णनीय था। अयोध्या नगरी के उद्यान में आकर जलूस पूर्ण हुआ। भगवान नीचे उतरे। अशोक वृक्ष के नीचे आकर अपने शरीर पर से आभूषण उतारने लगे। अन्त में पंचमुष्टि लोच का आरंभ किया। इन्द्र के अनुरोध से आखिरी एक मुष्टि बाकी रहने दी।

भगवान की ओर से पूज्य आगमोद्धारकश्रीने 'करेमि सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' का पाठ कहा। इस समय भगवान को मनः पर्यव ज्ञान हुआ। वैराग्य का यह दृश्य देख कर सब को रोना

आ गया। भगवान ने दीक्षा ली, विहार किया। सब को ऐसा प्रतीत हुआ मानो अपना प्यारा पुत्र जा रहा हो अतः आँखें भीग गईं।

भगवानने छद्मस्थ-अवस्था में हजार वर्ष विचरण किया था। उस अवधि में उन्हें जो उपसर्ग हुए थे वे फलक पर दिखाये गये थे।

केवलज्ञान कल्याणक और देशना

उस रात को परम पूज्य आचार्य भगवंत श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी महाराजने पट-मंडप में की सभी प्रतिमाओं को अधिवासना विधि के द्वारा अधिवासित किया था।

उस समय पूज्यश्री के पट्टधर आचार्य भगवंत श्री माणिक्य सागर सूरीश्वरजी महाराज तथा आचार्य भगवंत श्री विजय कुमुद सूरीश्वरजी उपस्थित थे। इन तीनों के सिवा और किसी को भीतर जाने की मनाई थी। यह गुप्त मंत्रों की मंत्र-बिधि थी।

प्रातःकाल भगवान की केवलज्ञान विधि की गई। उक्त महा पटांगन में एक सुन्दर कलामय समवसरण बनाया गया था। उसमें भगवान की मूर्ति स्थापित कर, भगवान की ओर से कलिकाल कल्पतरु अमृतवर्षी गीतार्थशेखर आचार्य भगवंत श्री आगमोद्धारकजी ने देशना (उपदेश) दी।

देशना

हे भव्यात्माओ! यह संसार आधि-व्याधि-उपाधि के तूफानों से भरा हुआ हैं। संसार में कहीं सुख नहीं है। सुख के लिए जीव कषाय करते हैं। अज्ञानी आत्मा क्रोध की धधकती आगमें जलते हैं। मान के विषम पर्वत पर चढ़ कर विवेक भ्रष्ट बनते हैं, माया नागिन

के दंश से सुधबुध खो देते हैं। लोभ के अथाह गहरे खड्डे में लुढकते हैं। इन मार्गों से सुख के बदले अधिक दुःख प्राप्त होता है। यदि सुखी होना हो तो क्रोध का उत्ताप दूर करने के लिए समता की शीतल छाँह ग्रहण करो। मान के विषमगिरि से उतर कर नम्र बनो। सरलता की नागदमनी ले कर माया–नागिन का ज़हर दूर करो। लोभ की अथाह खाई को संतोष से पाट दो। इस के बाद तुम्हें अवश्य ही सुख मिलेगा।

कषायों को कम करने के लिए विषय की वासना कम करने लगो। विषय और कषाय सो संसार है और विषय–कषाय का नाश ही मोक्ष है। मोक्ष अर्थात् अनन्तज्ञानमय, अनन्तदर्शनमय, अनन्तचारित्रमय ज्योतिस्वरूप, कर्ममलरहित, आत्म–स्वरूप।

आप सब कर्ममल से रहित बनने के लिए सर्वविरति का स्वीकार कीजिए। यह न हो सके तो देशविरति ग्रहण कीजिए, आखिर सम्यक्त्व प्राप्त करें यही मंगल–भावना।

'सर्व मंगल' कर के केवलज्ञान कल्याणक का जलूस निकाला गया।

इस के बाद निर्वाण कल्याणक विधि की गई।

अंजन शलाका विधि

वीर संवत् २४६७ की माघ कृष्णा (उत्तर में फाल्गुन कृष्णा) दूज का शुभ दिन था। सुर्योदय को अभी एक प्रहर शेष था। चन्द्रमा चौदह कलाओं से खिला हुआ था। वातावरण शान्त था। गुलाबी ठंड पड़ रही थी। इस अयोध्यापुरी का जनसमुदाय निद्रा देवी की गोद में सोया हुआ था। बीच बीच में पहरेदारों की आवाज सुनाई देती थी।

ऐसे समय में पूज्यपाद आचार्य भगवंत आगमोद्धारकजी जागृत थे। साथ ही उनके पट्टधर शिष्यावतंस आचार्य श्री माणिक्यसागर-सूरिजी तथा आचार्य देवश्री कुमुदसूरिजी भी जाग रहे थे। ये तीनें पूज्य अंजनविधि मंडप में थे।

किसी देव, दानव या मानव की कुदृष्टि न पडे इस हेतु से लाल दुकूल के बड़े आच्छादन किये गये थे। मांत्रिक विधियाँ चल रही थीं। कोई भक्ति विह्वल भावुक इस गुप्त और एकान्त क्रिया के समय न आ टपके इस लिए स्वयंसेवक दल का सुन्दर प्रबन्ध था। उस समय सब को सम्पूर्ण मौन पालना था।

पूज्य आगमोद्धारकश्री गंभीर ध्वनि में स्पष्ट मंत्रोच्चार कर रहे थे। विधि गुप्त थी, परन्तु मंत्रोच्चार की ध्वनि जागृत स्वयंसेवकों के कानों में पहुँच जाती थी। उस ध्वनि में उन महानुभाव की अपूर्व दिव्यता प्रतीत होती थी। अंजनविधि के सुमुहुर्त में दर्पण प्रति-बिंबानुसार पूज्य आगमोद्धारकजीने मूलनायक भगवंतों की अंजनविधि की। तत्पश्चात तीनों आचार्यपुंगवों ने अन्य जिनबिंबों की अंजनविधि की। अभी सूर्योदय को घड़ी भर की देर थी, परन्तु मानव-समूह तन-मन की शुद्धि कर के प्रतिष्ठा विधि पर मंडप में आ पहुँचा था।

यह जन समूह 'ॐ पुण्याहं पुण्याहम्' का घोष कर रहा था। उनके हृदय में उमंग और उल्लास समाता नहीं था। अंजन-विधि किये हुए प्रतिमाजी के दर्शनार्थ उनके नेत्र आतुर हो रहे थे। वे मन ही मन ऐसी भावात्मक स्पर्धा कर रहे थे कि 'पहले मैं दर्शन करूँ, पहले मैं दर्शन करूँ।'

देवलोक के देव मेरु पर्वत पर प्रभु-जन्मोत्सव के देखने के लिए जैसे जल्दी मचाते हैं और आगे आने का प्रयत्न करते हैं उस तरह से नरलोक के ये नरदेव भी प्रभुजी के दर्शन जल्दी करने के लिए आतुर हो रहे थे और आगे आने का प्रयत्न करते थे।

उचित समय पर लाल आच्छादन उठा लिये गये और जन-समुदाय के भगवान के दर्शन हुए। उसके बाद मंदिर में विधि-पूर्वक प्रभु-प्रवेश कराया गया। दोपहर को महाशान्तिस्नात्र पूजा-विधि हुई।

गद्दी-प्रतिष्ठा

वीर संवत् २४६७ का वर्ष था। माघ का पवित्र महीना, पंचमी की पवित्र तिथि और विबुध-गुरु वार था। जगत के जीवों को जागृत करनेवाले सहस्त्ररश्मि सूर्यदेव सात अश्वों के रथ पर आरूढ़ हो कर पूर्वाकाश में आ पहुँचे थे। आज प्रतिष्ठा होनेवाली थी। उसे देखने के लिए सूर्य ने अपनी रजत धवल किरणें आगममंदिर पर फैलाईं।

ज्योतिषियों के पंचांग में कुंभ का सूर्य था, तुला का चन्द्र था, गुरु देव केन्द्र में बिराजे थे, बुध देवने सूर्य के पास आसन जमाया था। शनि, मंगल और राहु भी समझदार बन कर कुंडली में अच्छे स्थानों पर शोभित हो रहे थे। शुक्राचार्य सूर्य से एक कदम आगे उच्चासन पर बैठे हुए थे। द्विस्वभाव लग्न था, स्थिर नवमांश था, सर्वार्थसिद्धिकर योग था, मंगलमुहूर्त था, शुभ होरा थी।

अन्नपूर्णा धरती का वातावरण खुशनुमा था। शुद्ध मन्द पवन बह रहा था। आकाश धूलि रहित और धवल था। दिशाएँ प्रफुल्ल एवं

शुभ्र थीं। वनराजि खिल उठी थी। लोगों के हृदय आनन्द से स्फुरित हो रहे थे।

परमपूज्य सूरिपुरंदर आगमोद्धारक आचार्य भगवंत श्री आनन्द-सागरसूरीश्वरजो महाराजा, मूलनायक प्रभु के प्रतिष्ठाकारक श्रावक रत्न उदार पुण्यवन्त संघवी श्री पोपटलाल धारसीभाई तथा संघवी श्री चुनीलाल लक्ष्मीचंदभाई आदि गर्भगृह में उपस्थित थे।

अन्य देवकुलिकाओं पर अन्य पू० मुनिवर, प्रभु-प्रतिष्ठापक, क्रियाकारक तथा शिल्पी थे। कई पुण्यवान महानुभाव तथा साध्वीजी महाराज रंगमंडप, कोलीमंडप, चौक और मेघनाद मंडप में दर्शनार्थ खड़े थे। मंदिर के बाहर के मैदान में हजारों लोगों का समूह उमड़ रहा था।

भीतर और बाहर सारा हर्ष विह्वल जनसमूह 'ॐ पुण्याहं पुण्याहम्' का महाघोष कर रहा था।

एक समयविद ने कहा-'प्रतिष्ठा को पाव घडी बाकी है। विधिकार ने कहा-आचार्य महाराज सावधान, प्रतिष्ठाकारक सावधान, क्रियाकारक सावधान, शिल्पी सावधान, नकद थैली सावधान।'

पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीने 'ॐ कूर्म ! निजपृष्ठे जिनबिंबं धारय स्वाहा' यह मंत्र सामध्वनि में सात बार पढ़ा। तत्पश्चात् कुंभक प्राणायाम कर 'ॐ स्थावरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा' मंत्र सात बार मानस जाप पद्धति से गिना। सातवीं बार मंत्र पढ़ते समय स्वर्ण, मुक्ता, रजत मिश्रित वास चूर्ण के निक्षेप-पूर्वक प्रभु स्थापना की।

थाली डंके बजने लगे, ढोल नगाडों पर चोट हुई। देवकुलिकाओं

में भी उसी समय प्रतिष्ठा हुई। मानवसमूह द्वारा भगवान् के जय-जयकार की ध्वनि में आकाश शब्दाद्वैत हो गया।

बाहर का जनसमूह भी जय निनाद करता और उसकी गंभीर प्रतिध्वनि उठती थी। सबके हृदय भक्तिभाव से भर उठे, नेत्र प्रतिष्ठित भगवानों के दर्शनार्थ अधीर और उत्कंठित हो उठे।

भीतर के पुण्यशाली महानुभाव देवाधिदेव के दर्शन करके लौट रहे थे, वे अपने आप को धन्य मानते थे, परन्तु उनके हृदय और नेत्र प्रभु दर्शन कर के अघाते नहीं थे। इस भावना के साथ कि पुनः पुनः अपने नाथ को कब निहारूँ, वापस आ रहे थे जिस से दूसरों को भी दर्शन प्राप्त हो सके।

तपोबल से प्राप्त औषधि के बल से गगन विहार करनेवाले शासन-प्रभावक आचार्य भगवंत श्री पादलिप्तसूरीश्वरजी महाराज के नाम से सम्बन्धित पालीताना नगरी आज पालीताना नहीं बल्कि इन्द्र की राजधानी अमरावती नगरी बन गई थी। दिन-ब-दिन उल्लास में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी।

प्रतिष्ठाविधि के उत्सव के दिनों में आगन्तुकों के भोजन के लिए हर रोज साधर्मिक वात्सल्य होता था, परन्तु आखिरी दिन पादलिप्तपुर के सभी नगरवासी नरनारियों को मिष्टान्न भोजन दिया गया। इस भोजन को देशी भाषामें 'धुमाडा बंद (धूआँ-चूल्हा बंद), गाँव झाँपा, फले चूँदडी' आदि नामों से पहचाना जाता है। आज से सौ वर्ष पूर्व सेठ श्री मोतीशा सेठ द्वारा बनवाई गई टूंक की प्रतिष्ठा के समय पादलिप्तपुर 'धुमाडाबंध' (धूआँ बन्द) हुआ था।

आश्चर्य की बात हैं कि तेरह दिनों के इस उत्सव के बीच पालीताना की स्मशान भूमि भी बन्द रही थी अर्थात् किसीकी मृत्यु नहीं हुई।

दर्शन के द्वार

प्रतिष्ठा–दिन के दूसरे दिन मंगल प्रभात में विधि पूर्वक द्वारोद्-घाटन हुआ। दोपहर को अन्तिम मंगल रूप सत्रहभेदी पूजा रखी गई। इस तरह प्रतिष्ठाविधि महोत्सव सम्पन्न हुआ और सभी धर्मप्रेमियों के लिए दर्शन के द्वार सदा के लिए खुल गए।

पाषाण प्रतर पर खुदे हुए पैंतालीस आगमों से शोभित जिन-शासन को गौरव–मय बनानेवाला, जिनवाणी की सुरक्षा के लिए दृढ़ता से खड़ा बादलों से बात करता हुआ, दिव्य विमान से स्पर्धा करता हुआ, शशिधवल कीर्तिवान्, मंदिरों में रत्न के समान यह आगम मंदिर गिरिराज की उपत्यका में आज भी पूज्य आगमोद्धारकजी की उज्वल यशोगाथा गा रहा है।

*

उन्नीसवाँ अध्याय

बहता पानी निर्मला

कपड़वंज की ओर

माघ के कृष्ण पक्ष में प्रतिष्ठा हुई, और फाल्गुन कृष्ण पक्ष (उत्तर में चैत्र कृष्ण पक्ष) में तो गुरुमहाराज श्री नवपदजी की ओली करने कपडवंज आ पहुँचे। पुण्य प्रतापी पुरुष की पावन छाया में ओली की आराधना का आनन्द अपूर्व होता है, इस में शक ही क्या?

दुनिया मिष्टान्न खाने में आनन्द मानती है, परन्तु यहाँ तो त्याग में आनन्द माना जाता था। छोटे छोटे सुकुमार बालक, मदभर जवान तथा केशरहित वृद्ध-सभी तप में अपूर्व आनन्द अनुभव करते थे। इन दिनों हररोज भाववाही देशना, रसमय पूजा-भावनाएँ होतीं। इस प्रसंग पर श्रीपाल महाराजा और श्री मयणा सुन्दरीजी महारानी के जीवन प्रसंगों पर आधारित कलामय रचनाएँ की गई थीं।

समाज का सम्मेलन

ओली की पूर्णाहुति के कुछ दिन बाद धर्म कार्यों के लिए 'देशविरति धर्म आराधक समाज' का सम्मेलन कपड़वंज में आयोजित हुआ। पूज्य प्रवर श्री की देखरेख के कारण यह सम्मेलन सफलतापूर्वक कार्यवाही कर के पूर्ण हुआ था।

कपड़वंज के पुण्यशाली धर्मात्माओं की चातुर्मास के लिए लम्बे अरसे से हार्दिक प्रार्थना थी ही, क्षेत्रस्पर्शना भी यहाँ की थी। अतः पूज्य प्रवरश्रीने कपड़वंज में चातुर्मास किया। यह चातुर्मास धर्ममय बना। श्रावक वृन्द पूज्यश्री का हो सके उतना अधिक लाभ ले रहे थे। उनकी भक्ति भी बेजोड़ थी।

अनासक्त योगी

धर्माराधन के साथ चातुर्मास बीत रहा था। नगर में आनंद छाया हुआ था; इतने में अशाता के उदय से पूज्यश्री को शारीरिक रोगों ने घेर लिया। ज्वर, खाँसी, पीलिया आदि रोगों के बावजूद पूज्य श्री अद्भुत समता धारण किये हुए थे। आहार में केवल थोड़ा सा प्रवाही द्रव्य ही लेते थे।

एक दिन दोपहर को एक सेवा भावी शिष्य पूज्य श्री के पीने जितनी थोड़ी सी चाय लाया। पूज्य श्री को एक छोटे से सफ़ेद काष्ठ पात्र में वह चाय दी, महात्मा उसे पी गये। शिष्य अन्य कार्य में व्यस्त हुआ। उतने में चाय बहोरानेवाली श्राविका हाँफती हुई आई और चाय बहोरने आये हुए मुनि से कहने लगी—साहबजी, गजब का घोटाला हो गया है-मुझ से बडी भयानक भूल हुई है।

मुनिराज—बहन, क्या हुआ, इस तरह हाँफती क्यों हो ?

श्राविका—आप चाय ले गयें उसका क्या किया ?

मुनिराज—वह तो आगमोद्धारकश्री ने उपयोग में ले ली।

श्राविका की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उसने कहा,—"महोदय, मैंने चाय में चीनी के बदले भूल से नमक डाल दिया था।

हमें पीने में जहर-सी कड़वी लगी तो मैं तुरन्त दौड़ती हुई आई हू। पूज्य महाराजश्री बीमार हैं, उस पर कडवी चाय पी गये; उन्हें हानि करेगी। क्या उन्होंने आप से कुछ नहीं कहा?"

अरे बहन! कहना तो दूर रहा, उन्होंने तो मुँह तक नहीं बिगाडा। हमें तो आपके कहने से ही मालूम हुआ, वरना हम तो जानते भी नहीं कि चाय कड़वी थी।

श्राविका पूज्य आगमोद्धारकजी के पास गई। वंदन कर के कहा "महोदय! मुझ से भूल हो गई-चाय में चीनी के बदले नमक डल गया। मैंने भयंकर अपराध किया है, मैं महापापभागिनी बनी हूँ। कृपा कर मुझे क्षमा करें। गुरुदेव! गुरुदेव मुझे प्रायश्चित दीजिए। जिससे मेरी शुद्धि हो।" यह कहते हुए श्राविका की आँखों से बड़े बड़े आँसू गिर रहे थे।

पूज्यश्रीने सस्मित वदन से कहा-"बहन! तुम रोओ नहीं। सब जीभ का स्वाद है। मीठी चाय तो रोज़ ही मिलती है, कडवी ही कभी एकाध बार ही मिलती है। चिंता न करना। मुझे कड़वी चाय पीने का कोई दुःख नहीं है। इस चाय ने मेरी कर्म निर्जरा कराई है। तुम जाओ, रोना नहीं। मुझे ज़रा भी दुःख नहीं हुआ।

समता की सिद्धि

रोगों की गति अविरोध चल रही थी। बीमारी का प्रकोप बढ़ा, फिर भी इस सम्यग्ज्ञानी महात्मा की ज्ञान की लगन जारी रही। वे कभी आगम के आलापक गिनते होते या प्रकरण के पाठ पढते होते। मुख से दर्द का कोई चिह्न आह, कराह, ओह या हाय नहीं निकला।

पूज्यश्री की बहुश्रुतता एवं आगमोद्धारक के रूप में कीर्ति सुन कर एक विद्वान् ब्राह्मण पंडितजी पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। पंडितजी के मन में पूज्यश्री से कुछ प्रश्न पूछनें और विशद समाधान पाने की इच्छा भी थी ही। इसी लिए खर्च कर के दूर से आये थे। परन्तु पूज्यश्री की ऐसी शारीरिक स्थिति देख कर वे उदास हो गये। दर्शन-वन्दन कर सुखशाता पूछ कर बैठ गये।

पूज्यश्रीने पूछा-"पंडितजी! आप कुछ प्रश्न पूछने आये हैं। जो इच्छा हो सो खुशीसे पूछिये।"

पंडितजी—"महाराजश्रीजी! मैं तो आप के दर्शनों के लिए आया हूँ। और कोई आकांक्षा नहीं है।" यह उन्होंने केवल विवेक के लिये कहा।

पूज्यश्री—"आप केवल दर्शन-वन्दन के इरादे से ही आए हों ऐसा नहीं हो सकता। साथ साथ ज्ञानचर्चा का हेतु भी होगा ही, परन्तु मेरी ऐसी शारीरिक स्थिति देखकर आपका ज्ञान-चर्चा करने को मन नहीं करता। फिर भी आप पूछिये।"

"महाराजजी! सचमुच कतिपय प्रश्न पूछना चाहता ही हूँ परन्तु आपके ऐसे अनारोग्य में कैसे पूछूँ? मैं विवेकहीन मनुष्य नही हूँ। आपके पावन दर्शन से भी मुझे सचमुच आनन्द हुआ है।" पंडितजी ने हार्दिक विवेक प्रकट किया।

पूज्यवरने कहा-"आप यह सब चिंता छोड कर खुले दिल से पूछिये। मैं जानता हूँ उतना बताऊँगा परन्तु मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ।"

पूज्यश्री के आग्रह के कारण पंडितजीने प्रश्न पूछे। पूज्यश्री ने

सबका बहुत सुन्दर समाधान किया। उनके समाधान से पंडितजी बहुत आनन्दित हुए। काशी में भी ऐसे सरस उत्तर देनेवाला कोई नहीं था।

पंडितजी ने आखिर में एक प्रश्न पूछा—"महाराजजी! इस समय आपके शरीर में ज्वर और पांडुरोग है, खाँसी और कमज़ोरी है। ऐसी अवस्था में मुझ जैसे विद्वान माने जानेवाले व्यक्ति बैठ भी नहीं सकते, बातचीत नहीं कर सकते जब कि आप तो इस तरह बात करते हैं जैसे शरीर में कोई दर्द या बेचैनी है ही नहीं। कठिन प्रश्नों के उत्तर आसानी से देते हैं। यह कैसे संभव होता है?"

"पंडितजी! व्याधि शरीर में है, आत्मामें नहीं। ज्ञान आत्मा में है, शरीर में नहीं। इस के अलावा धर्म ग्रन्थ कहते हैं कि शरीर के एक एक रोम में पौने दो रोग हों उतने कुल रोग हैं। इस तरह करीब सवा छः करोड़ रोग इस शरीर में छिपे हुए हैं। उनमें से केवल पाँच सात रोग ही प्रकट हुए हैं। अभी करोडों रोगों ने हमला नहीं किया है यह क्या कम पुण्य की बात है। तब पुण्य को याद किया जाय या पापको। फिर इन रोगों ने कितनी सारी कर्म निर्जरा कराई है। इन से तो आत्मा पर का मैल स्वच्छ होता है। अस्तु, पंडितजी धर्मध्यान करना।

पंडितजी जाते हुए अपने साथ सदा के लिए सतोगुणकी स्मृति लेते गये।

अशाता का उदय बन्द हुआ। पूज्यश्री की तबीयत सुधरी। इधर चातुर्मास भी पूर्ण हुआ और विहार की बातें फैलने लगीं

बंबई की ओर

वर्षाऋतु समाप्त हुई। आश्विन मास के सूर्य की तेज किरणों के प्रखर ताप से कीचड़ सूख गया था। दुर्गम मार्ग सुगम हो गये थे। नदियों का जल निर्मल हो चुका था। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन चातुर्मास-परिवर्तन की प्रथा ने मुनियों को विहार-क्रम की स्मृति पुनः ताज़ी करा दी। पूज्यश्री ने शुभ दिन को विहार किया। नरनारियों का समूह विदा देने उमडा। नगर की सीमा के अन्त में एक विशाल वट वृक्ष के तले खडे रह कर पूज्य श्री आगमोद्धारकजी ने अन्तिम देशना दी।

देशना

भाग्यशालियो ! बहता जल निर्मल होता है। मेहमान थोडे दिन रह कर विदा हो जायँ तो आदर पाते हैं। वर्षा योग्य परिमाण में बरस कर चली जाए तो स्वागत और सम्मान पाती है। उसी तरह साधु भी तीर्थपति की आज्ञा के अनुसार विचरते रहें तो चारित्र्य में निर्मल और आपके जैसे गाँवों के लिए स्वागत एवं सम्मान के पात्र बने रहते हैं।

साधु लोग एक स्थान पर अधिक रहें तो स्थल, काल, देश या व्यक्ति का मोह बाधा बन सकता है। आपको राग या द्वेष उत्पन्न हो, उसमें से तिरस्कार का जन्म हो। आप लोगों को भी हमारे प्रति व्यक्ति-राग या द्वेष न हो अतः विचरते रहना चाहिए।

आज आप सबकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। परन्तु आनेवाले को अवश्य ही जाना है, उसी तरह हमें अवश्य विहार करना होता है।

आपने चौमासे में जो जो धर्मोपदेश सुने उन्हें हृदय की गहराई में उतारना, अपनी शक्ति को छिपाये बिना उनको कार्य में परिणत

करना। आप इस भव में तथा परभव में मोक्ष के सहायक साधन पा कर मुक्ति प्राप्त करें यही शुभ कामना।

विदा

इतना कह कर 'सर्व मंगल' किया गया, फिर भी गुरु-विरह के कारण सबकी आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी। सुबक सुबक कर रोने की आवाज भी सुनाई देती थी। आकाश में से अदृश्य-अश्राव्य चेतावनी आ रही थी कि इन पवित्र महात्मा के पावन चरणों का पुनीत स्पर्श पुनः प्राप्त नहीं होगा। परन्तु रुदन की आवाज़ में किसी का उस पर ध्यान नहीं गया। पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं। श्रावकगण जब तक अपने गुरुदेव के दर्शन हो सके तब तक वहीं खड़े रहे। जब गुरुदेव आँखों से ओझल हो गए तब वे मुख पर उदासी और नयनों में निराशा लिए अपने घर लौटे।

बम्बई के प्रिय मेहमान

विविध गावों और नगरों में विचरते हुए पूज्यपाद आगमोद्धारकजी वर्षावास के प्रारंभ में बंबई आ पहुँचे। बंबई के धर्मात्माओंने भव्य प्रवेशोत्सव किया पूज्यश्री अपूर्व स्वागत के साथ उपाश्रय में आये। बंबई की धरती पर धर्मराजा का और आकाश में मेघराजा का साम्राज्य एक साथ शुरू हुआ। मेघराजा धरती को पानी से भिगो कर कोमल बना रहे थे, और धर्मराजा भव्य जीवों की हृदय-भूमि को जिनवाणी से प्रक्षालन कर निर्मल बना रहे थे। मोहराजा के गुप्तचर बंबई आ बसे थे।

मोहराजा के लिए मेघराजा प्रतिकूल न थे, परन्तु ये आगमोद्धारक नामके धर्मराज उसे थका देनेवाले लगते थे। अतः मोहराजा भी यहाँ गुप्त रूप में आ बसा था।

प्रवचनों की बौछार

नीलपक्षी के समान नीलश्याम मेघराजा ने मूसलधार वर्षा की बौछार शुरू की, हंसपत्र सम धवल इस धर्मराजाने जिनवाणी की वर्षा शुरू की। भ्रमरवत् श्याम मेघराजा सात आठ दिन बरस कर थक जाते, और कुछ दिन आराम करने चले जाते। परन्तु ये अक्षर उज्ज्वल प्रभावशाली धर्मराजा अविरामतः जिनवाणी की वर्षा करतें जाते थे।

धर्मराजा की वर्षा सें भव्यों के पाप का पंक धुल जाता था, सम्यक्त्व का बीजारोपण होता, देशविरति के अंकुर फूट निकलते और सर्वविरति की सुगंध महक उठती थी।

पर्वाधिराज पर्यूषण का पदार्पण हुआ। मोहमयी मानी जानेवाली बंबई नगरी आगमोद्धारक श्री क प्रताप से धर्ममयी नगरी बन गई। पर्वाधिराजका स्वागतपूर्वक आगमन हुआ और सम्मानपूर्वक बिदा भी।

मोहराजा का षड्यन्त्र

मोहराजा ने देखा कि यह आगमोद्धारक नामक धर्मराजा बड़ा शक्तिशाली है, और उसका सीधा मुकाबला करना कठिन है। धर्मराजा ने इस समय आगमोद्धारक के शरीर में आ कर वास किया है, अतः फिलहाल यही धर्मराजा माना जाता है। यहाँ साम और

दाम नीति असफल होगी, दंडनीति का दमनचक्र यहाँ कामयाब नहीं होगा, अतः भेदनीति अपनाना ही सुकर होगा।

मन-ही-मन ऐसा निर्णय कर के मोहराजा अपने योग्य पात्र खोजने निकला। 'जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्स' नामक संस्था पर उसकी निगाह पडी। मोहराजा को लगा कि यह नाम से धर्मराजा के पक्ष की संस्था मानी जाती है परन्तु काम तो बरसों से मेरा ही करती आई है।

इस संस्था का बालदीक्षा और देव-द्रव्य के साथ घोर वैर था। साधुओंकी निंदा तिरस्कार यही उसका मुख्य गुप्त कार्य था। 'जैन' नाम का लेबल तो लगाया था फिर भी जैन शासन की प्रणालियों का भंग करने में यह संस्था गौरव मानती थी। इस तोड़ फोड़ करनेवाली संस्थाने धर्मराजा श्री आगमोद्धारकजी के विरुद्ध जिहाद छेड़ दी, क्योंकि धर्मराजा श्री आगमोद्धारकजी शास्त्रीय परंपराओं से दृढ़ता पूर्वक लगाव रखते थे।

कॉन्फरन्स के काले प्रस्ताव

मोहराजा ने इस संस्था के सदस्यों के हृदय में अपने गुप्त अनुचरों को प्रविष्ट किया था। कुछ स्थानों पर गुप्तचरों का काम बन गया। इस संस्था के सदस्य भोले लोगों की भीड़ के सामने बाल दीक्षा और देव द्रव्य का विरोध करते, इस तरह भोलों को ठगते और भ्रम में डाल देते थे, परन्तु चतुर लोग चेत जाते थे।

इस संस्थाने मोह राजा की आज्ञा माननेवाली भीड़ को एकत्र किया। यह भीड़ एक मंडप में इकट्ठी हुई। इस भीड़ में कुछ बुद्धिमान लोग भी थे। वे चाहते थे कि ये भोले लोग अधर्म की राह

पर न चले जायँ, शासन को बदनाम करने अथवा शास्त्रोक्त वचनों की अवगणना करने का पाप न कर बैठें। दयालु शासन रक्षकों के बहुत समझाने पर भी मोहराजा की मतिभ्रंशकारिणी मदिरा का आकंठ पान कर के होश खोये हुए इस भीड़ कें लोगों ने बाल दीक्षा और देव द्रव्य का विरोध करने वाले निरर्थक प्रस्ताव पास कर लिए।

हितचिंतक हृदय

ये आत्मा भी मोहराजा का जोर घटने पर सचाई को समझेंगे, सुबुद्धि पाएँगे। उन्हें सच्चा होश आएगा और वे अपना आत्मोद्धार करेंगे। ये आत्मा जितना जल्दी समझें उतना जल्दी उनका कल्याण होगा। उनका भला हो।

विहार

मुनियों के विहार का समय आया। श्री आगमोद्धारकजी ने मोहराजा का बडा सख़्त मुकाबला किया था। बहुत से भव्य आत्माओं को मोह–मदिरा पीने से रोका था, इस तरह संसार सागर के खारे पानीमें डूबने से बचाया था। जो लोग न बच सके उनकी भाव–दया का चिंतन करते थे।

श्री आगमोद्धारकजी के विहार कीं बातें सुनकर बहुत से धर्मात्माओं को दुःख होने लगा। सागर मर्यादा नहीं छोड़ता तो पू० सागरजी महाराज विहार–मर्यादा कैसे छोड़ सकते हैं?

बंबई के धर्मप्रेमी आत्माओं को पूज्य आगमोद्धारक जी के विहार का दुःख हुआ और विहार भी हुआ।

*

बीसवाँ अध्याय

सागरजी और सूरत

प्रवेश-यात्रा

पू० आगमोद्धारकश्री और पू० सागरजी महाराज के नाम से ख्यातिप्राप्त महात्मा आज सूरत में पदार्पण करनेवाले हैं। बाहर से आनेवाले को अनायास ही ऐसा प्रतीत होता कि सूरत में दर्शनीयता पूज्य सागरजी महाराज के चरण कमलों के शुभागमन से आती है जैसे कि दूध में मधुरता ईक्षुजनित शर्करा से आती है, अर्थात् पू० सागरजी और सूरत का सम्बन्ध दूध-शक्कर का सा था। पूज्य सागरजी महाराज केवल सूरत के या सूरतियों के नहीं थे, वे सब के थे परन्तु सूरतवासी तो सागरजी के ही थे।

ये महात्मा आज पधार रहे हैं परन्तु उनके अपूर्व स्वागत की तैयारियाँ कितने ही दिनों से हो रही थीं। पूज्य श्री की स्थूल देह का सत्तरवें वर्ष में प्रवेश हो चुका था। अब ये महात्मा ज्ञानस्थविर, पर्यायस्थविर तथा वयस्थविर हुए थे, सब तरह से पूर्ण स्थविर थे, शासन के सरताज़ थे। सूरतवासी ऐसा महान स्वागत करना चाहते थे जो पूज्यश्री की पूज्यता के अनुरूप हो और शासन की शोभा बढ़ानेवाला हो। इस के लिए आत्मीयतापूर्ण तैयारियाँ हो चुकी थीं। सब के हृदय हर्ष से उछल रहे थे।

स्वागत यात्रामें सूरत के सत्तर बड़े बेंड थे। सब 'स' अक्षर की कुंभराशि का संमिलन हुआ था। सागरजी, सूरत, सुस्वागत, सत्तरकी आयु, सत्तर सत्तर सामग्रियों का सुन्दर समूह और शासन के सरताज की सुहावनी शोभायात्रा।

गहुँली या रत्नावली?

कदम कदम पर गहुँली होती थी। हर डग पर पुण्यवतियाँ स्वागत करती थीं। कोई भाग्यवती शुद्ध अखंड अक्षत वारती थी तो कोई पुण्यवती सोने चाँदी के फूल वारती थी। कोई कोई सौभाग्यवती सच्चे मोतियों के समूह वारती थी।

यह सौभाग्यवती कहती थी कि अन्य धर्मगुरुओं को सोने से तोला जाता है, देशनेताओं को रुपयों की थैली अर्पित होती है, तो हमारे गुरु पर सच्चे मोती क्यों नहीं वारे जायँ।

अरे! एक पुण्यवती ने मणि, माणिक्य, पन्ना, नीलमणि, गोमेदक प्रवाल, हीरे, मुक्ता आदि रत्नों से भरी अंजली से उन्हें बधाया। उस समय उस के मुख पर अपने धर्मपिता या धर्मदाता का स्वागत करने के आनन्द की तरंगें उठ रही थीं।

दूसरे प्रहर के प्रारंभ में हरिपुरा से इस स्वागतयात्रा का प्रारंभ हुआ था, और तीसरे प्रहर की पूर्णाहुति के बाद गोपीपुरा में परिसमाप्ति हुई। यह स्वागत-यात्रा पूरे दो प्रहरों से अधिक समय शहर में घूमी थी। उपाश्रय में आने पर धर्म देशना (धर्मोपदेश) के श्रवण के बाद इस शोभायात्रा का विसर्जन हुआ था। पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीजी का चातुर्मास भी यहाँ हुआ।

श्री सूरत के सकल जैनसंघ से विनती

यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि जिस तरह त्रैलोक्य-असाधारण, अनन्त सिद्धजीवों से पुनीत श्री सिद्धक्षेत्र में भगवान् श्री जिनेश्वर परमात्मा-निरूपित तथा सकल लब्धि निधान श्री गणधर देवों द्वारा प्रथित आगमों का अस्तित्व बनाये रखने और उन्हें चिरस्थयित्व देने और परावर्तनादि से बचाने के लिए पैंतालीस आगमों को शिला में उत्कीर्ण कर स्थापित किया गया है, उसी तरह उपर्युक्त शुभ हेतुओं से ताम्रपत्र में भी आरूढ किये हुए पैंतालीस आगमों को स्थापित करने के लिए यहाँ एक 'श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्रागम मंदिर' स्थापित करने का सदुपदेश परमोपकारी प्रातः स्मरणीय-आगमदिवाकर परम पूज्य आगमोद्धारक आचार्य महाराज श्री आनन्दसागर सूरीश्वरजीने दिया था, और उसका आदि से अन्त तक कार्य करने एवं व्यवस्था सम्हालने के लिए एक संस्था स्थापित करने की आवश्यकता प्रकट की थी, उसका सहर्ष स्वीकार कर के हमने वैशाख सुदी ११ को शनिवार ता. ११-५-१९४६ के रोज दोपहर के विजय मुहुर्त में परम पूज्य आगमोद्धारक आचार्य महाराजश्री आनन्द-सागरसूरीश्वरजी महाराजश्री की अध्यक्षता में 'आगमोद्धारक संस्था' नामक संस्था स्थापित करने का शुभ निर्णय किया है। अतः श्री संघ इस पुण्य प्रसंग प्रर सेठ नेमुभाई की वाड़ी (गोपीपुरा, सूरत) में पधार कर हमें उपकृत करें।

संघ के नम्र सेवक

झवेरी शांतिचंद छगनभाई

झवेरी ठाकोरभाई दयाचंद मलजी

ताम्रपत्र—आगममंदिर

सूर्यपुर ने अपनी धरती पर ताम्रपत्र–आगममंदिर निर्माण करने का सौभाग्य पाया था–इस अदृश्य भाग्यलेख को कौन पढे। यह बात न तो ज्योतिषियों के ज्योतिष में थी, न हस्तरेखाशास्त्रियों के हस्तरेखा-शास्त्र में। हाँ, यह बात केवलज्ञानियों के ज्ञान में तथा विशिष्ट अवधिज्ञानियों के ध्यान में थी परन्तु वे पुण्य–पुरुष आकर इस भूमि के निवासियों से कहाँ कहते हैं? जब सूरत की शोभा में चार चाँद लगानेवाले ताम्रपत्र आगममंदिर के नवनिर्माण का निर्णय हुआ तभी मालूम हुआ कि वह सौभाग्य सूरत के ललाट में लिखा हुआ था।

पूज्य प्रवर प्रौढ़ प्रतापी आगमोद्धारकश्री ऐसे प्रवर व्यक्ति थे जिन के अणु अणु में आगम व्याप्त थे। आगम का उच्चारण ही उनका जीवन था। वे मानों आगम–सरोवर के मनोरम मोतियों का चुग चुगने वाले महापवित्र हंस थे।

कई वर्ष पहले आगमों की अमरता के विषय में विचार करते हुए इस महापुरुष ने मन ही मन यह निर्णय किया था कि अवसर आने पर ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण, सुन्दर मरोड़दार अक्षरों में लिखा हुआ ताम्रपत्र–आगममंदिर बने तो उत्तम।

वचन–सिद्धि

इस समय पू० आगमोद्धारकश्री सात दशक पार कर आठवें दशक में प्रवेश कर चुके थे। सूरत में उनका चातुर्मास था। सूरत तो पू० सागरजी महाराज के नाम पर कुरबान था। पूज्यश्री ने पर्व

दिवस की भरी पूरी व्याख्यान सभा में ताम्रपत्र-आगममंदिर के नवनिर्माण की बात की।

तन से सूरतवाले मन से खूब सूरत श्रोताओं की उक्त सभाने इस बात का हृदयपूर्वक स्वागत किया। स्वाति नक्षत्र के जल-बिन्दुओं से सीप के उदर में शुद्ध मोती बनते हैं और आगमोद्धारकश्री की वाणी से सूरत के उदर के मध्यम भाग में ताम्रपत्र-आगममंदिर बनता है।

राजनैतिक दृष्टि से यह बड़े संकट का काल था। विश्व में युद्ध की ज्वालाएँ धधक रही थीं, जिन्होंने अनेक को अपने भीतर समा लिया था। इस युद्ध को दूसरा विश्वयुद्ध कहते थे। जीवन की आवश्यक वस्तुएँ बहुत महँगी और अलभ्य हो रही थी। फिर भी पुण्य-पुरुष पूज्य आगमोद्धारकश्री के पुण्य प्रताप से इन बाह्य विघ्नों से कोई अवरोध नहीं हुआ।

प्रारंभ और पूर्णाहुति

एक शुभ प्रभात के मंगलमय वातावरण में भूमिखनन कार्य हुआ। उसके बाद भूमिशोधन और शिलास्थापना विधि हुई। शिल्पकार, कारीगर, शताधिक मजदूर इस ताम्रपत्र-आगममंदिर के नवनिर्माण कार्य में तन-मन से जुट गये।

दो सौ सत्तर दिनों में पैंतालीस आगमयुक्त, पैंतालीस गवाक्ष-मंडित, पैंतालीस सोपानों से सुशोभित, पैंतालीस अंगुल प्रमाण मूल-नायक देवाधिदेवश्री महावीर भगवंत से अधिष्ठित, अन्य अनेक श्वेत-श्याम प्रतिमा-समूह से राजित देव-विमानोपम मंदिर निर्मित हुआ

देख कर किसी को भी आश्चर्य हुए बिना न रहता। 'अभी कलकी बात है कि हम मंदिर बनवाने की बातें सुनते थे और आज तो तीन मंजिलवाला ऊँचा देवभुवन–सा साक्षात् मंदिर देख रहे हैं–यह चमत्कार नहीं तो और क्या है?'

बाजीपुरा में प्रतिष्ठा

बाजीपुरा एक छोटासा परन्तु सुन्दर गाँव है जो सूरत से पैंतीस मील पूर्व में स्थित है। श्री संघने वहाँ एक छोटासा मंदिर बनाया। श्री संघ की शुभ भावना थी कि उसकी प्रतिष्ठा पूज्य आगमोद्धारकश्री के वरद हस्तों से कराई जाय।

पूज्य आगमोद्धारकश्री वृद्धावस्था के कारण दिन दिन क्षीणजंघाबली हो रहे थे। अशाता वेदनीय कर्मने शरीर में अपना काम जारी रखा था, अतः प्रतिष्ठा के प्रसंग पर जाना संभव होगा या नहीं यह प्रश्न था। बाजीपुरा के संघ ने तथा आसपास के अन्य संघोंने मिल कर अनुरोध किया। श्री संघ के पुण्योदय के कारण प्रतिष्ठा के मौके पर आने के लिए पूज्य आगमोद्धारकश्री के द्वारा स्वीकृति सूचक 'क्षेत्र स्पर्शना' शब्द प्रयुक्त किया गया।

सूरत से विहार कर बारडोली पधारे। शरीर को चलना मंजूर नहीं था तो भी मनोबल–संपन्न महात्मा ने एक एक कोस का विहार शुरू किया।

बाजीपुरा संघ को इस कारण अत्यन्त हर्ष हो रहा था कि उनके गाँव के जिनमंदिर की प्रतिष्ठा अनेक जिनमंदिरों की प्रतिष्ठा करानेवाले बहुश्रुत, आगमोद्धारक पवित्र पुण्य पुरुष के हाथों होगी। विघ्नों की

जो आशंकाएँ थीं वे पुण्य-पुरुष के चरण पड़ने से हट गई। इस छोटे से गाँव ने प्रतिष्ठा का निराला ही रंग रखा। यह बहुश्रुत पूज्य आगमोद्धारकजी का प्रभाव था।

वहाँ से विहार कर बुहारी आदि गाँव होते हुए चातुर्मास के लिए सूरत पधारे।

अप्रतिम प्रतिष्ठा

सूरत का आगममंदिर दिव्य विमान के समान सुशोभित था। तीर्थंकर भगवानों की प्रतिष्ठा का समय आ पहुँचा। परम पूज्य पतितपावन शरणागतवत्सल आचार्य पुरंदर श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी महाराजश्री की गरिमाभयी धर्म छाया में ताम्रपत्र-आगममंदिर का प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस महोत्सवने पालीताणा के शिलोत्कीर्ण आगममंदिर के महोत्सव की याद को ताज़ा कर दिया। सूरत के श्रेष्ठिवरों ने विपुल धनका सद्व्यय कर अपूर्व उत्साह दिखाया था।

पूज्य आगमोद्धारकश्री से कुछ समय पूर्व वखारिया परिवार में धर्म की भावना उत्पन्न करनेवाले श्राद्धवर्य ठाकोरभाई दयाचंद मलजी की प्रेरणा से जिनधर्म प्राप्त किये हुए मित्र, क्षत्रियकुलभूषण श्री जेकिशनदास लल्लूभाई वखारिया, तथा जयंतिलाल गणपतराम, और जेकिशनदास रणछोड़दास के सुपुत्र कांतिभाई, अमृतभाई, फूलचंदभाई आदि-वखारिया परिवार ने उक्त ताम्रपत्र आगममंदिर में आत्मा के कल्याणार्थ धन का सुन्दर सद् व्यय किया था।

सूरत के इतिहास में वीर संवत् २४७४ का वर्ष और माघ सुदी

३ का दिन सुवर्णाक्षरों से अंकित हो गये हैं। इस दिन की बरसगाँठ मनाई जाती है, और प्रतिवर्ष इस रोज पूज्यश्री के प्रवर अनुरागी कस्तूरचंद झवेरचद चोकसी के सुपुत्र मोतीचंदभाई तथा पुत्रवधू जसवंती बहन की ओर से बृहत् शान्तिस्नात्र की जाती है।

सांप्रत-काल में सूरत के सुमध्य भाग में गुर्जरदेश की शान बढाता हुआ जिनशासन की जयपताका फहराता हुआ, पूज्य आगमोद्धारकश्री की अद्वितीय ज्ञानशक्ति के सुदृढ नयनरम्य स्मारक के समान अलौकिक ताम्रपत्र-आगमंदिर गौरवगाथा का निर्मल दिव्य संगीत प्रवाहित कर रहा है।

स्थिरता

शास्त्रों में उल्लेख है कि 'साधु भगवंत क्षीणजंघाबल होने पर, अर्थात् विहार करने की शक्ति नष्ट होने पर स्थिर वास कर सकते हैं। परन्तु स्थिर वास में स्थानीय संघ की श्रद्धा भक्ति और भावना का विचार करना चाहिए। उद्वेग और अभाव (अनादर) मालूम हो तो उस स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

बहुश्रुत पूज्य आगमोद्धारकश्री के प्रति सूरतवासियों की श्रद्धा, भक्ति और भावना के विषय में क्या पूछना? सूरत शहर के कतिपय पुण्यवान् श्रावक अपना तन-मन-धन उनके चरणों में समर्पित करने में अपना सौभाग्य मानते थे। इतना ही नहीं, कुछ ही समय पूर्व पूज्यश्री के प्रताप से जिनधर्म प्राप्त करनेवाले क्षत्रिय-कुल-भूषण जेकिशनदास वखारिया आदि भी ऐसी पुण्यमयी भावनावाले व्यक्ति थे जो अपने धर्मदाता गुरुदेव के चरणों में सर्वस्व न्योछावर कर दे।

ताम्रपत्र आगममंदिर की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा के बाद सूरत संघ के अत्यन्त आग्रह के कारण, जंघाबल-शरीरबल भी दिनों दिन क्षीण होने के कारण एवं क्षेत्र स्पर्शना सूरत की बलवती होने के कारण पूज्यश्री ने सूरत में स्थिरवास किया।

*

इक्कीसवाँ अध्याय

महाप्रयाण

काल की गति

कालकी गति बिना रुके आगे बढती है। वह किसी की राह देखने नहीं रुकती। हाँ, सूर्य ओर चंद्र अपने विमान में बैठ कर भगवान् महावीर का उपदेश सुनने आये थे तब कुछ समय के लिए अंधेरा दूर रहा परन्तु काल की गति बेरोक आगे बढ़ती रही है।

पूज्य आगमोद्धारकश्री के शरीर पर भी अब काल का प्रभाव प्रकट होने लगा। (शरीर कमजोर पड़ता जाता था, उसकी रोगों का प्रतिकार करने कीं शक्ति खो चुकी थी अतः सामान्य रोग भी भारी हो जाता था, और एक दर्द अपने साथ दूसरा दर्द ले आता था।)

पूज्यश्री ज्ञान के सागर थे, आगम के उद्धारक थे, बहुश्रुत के रूप में सुप्रसिद्ध थे। गुण के भंडार थे, साधु-भगवंतों में आदर्श थे, विशाल मुनिसमूह के गणनायक थे। उन्हें अनुमान हो चुका था कि यह काया अब अधिक काम नहीं देगी, अतः इस से जितना लाभ लिया जाय उतना ले लेना चाहिए।

कार्य अधूरे नहीं रहे

जगत के सभी जीव महाप्रयाण करते हैं, परन्तु उनके कई अधूरे

काम पीछे छूट जाते हैं। उनकी आशा की मीनारें अधूरी ही रह जाती हैं। अन्तिम समय में अधूरे अरमानों का दुःख उनके हृदय को व्यथित कर देता है। इस में जिजीविषा बहुत ही सताती है।

पू० महात्मा आगमोद्धारकश्री का कोई कार्य अधूरा नहीं रहा। जो भी कार्य हाथ में लेते—चाहे वह आगममंदिर जैसा महान कार्य हो चाहे पाठशाला जैसी छोटी संस्था का छोटा सा कार्य हो—उसे पूरा ही करते। अपने इस विशिष्ट स्वभावगत गुण के कारण उनका कोई कार्य अधूरा नहीं रहा।

आशा की मीनारें चुनवाने या बड़े बड़े अरमान पालने का तो पूज्यश्री के लिए कोई प्रश्न ही नहीं था। आशा तो बेचारी उनकी दासी बन गई थी। इस महात्मा की दृष्टि में जीवन और मरण एक से थे। शरीर की परछाई किसी को दुःख नहीं देती; इस महात्मा को मरण भी जीवन की परछाई जैसा लगता था, अतः उन्हें दुःख क्यों होता ?

महा व्याधि

वायु की व्याधि बहुत व्यथा उत्पन्न करती थी परन्तु महात्मा उसका सख्त सामना करते थे। जो महात्मा जीवन भर शासन की सुरक्षा के लिए अनेक लोगों से टक्कर लेते रहे वे भला ऐसी भौतिक कर्म-जन्य व्याधि का सामना करने में हिचकिचाते ?

अन्य कार्यों से उन्होंने निवृत्ति ग्रहण कर ली, परन्तु ज्ञान और ध्यान से निवृत्त नहीं हुए, ज्ञान और ध्यान में तो और भी जागृत एवं तत्पर बने। पुराने ग्रन्थों का स्वाध्याय और नये ग्रन्थों की रचना अब भी जारी थी।

आराधना और भावना

रोगशय्या पर भी सुन्दर आराधना करते थे। इस महा पुरुष श्रेष्ठ ने ऐसी विकट व्याधि की हालत में भी 'आराधना मार्ग' ग्रन्थकी रचना की है। वे जीवन की चरम दशा में भी आराधना के उत्तम लक्ष से विचलित नहीं हुए।

पूज्यश्री के मुख से कई बार 'धन्यास्ते सनत्कुमाराद्या:' ये शब्द स्पष्ट उच्चरित होते सुनाई देते थे। 'धन्य है महामुनि सनत्कुमारादि को' जिनके पास महारोगों को मिटाने की अचिंत्य शक्ति होते हुए भी अपने शरीर में स्थित सोलह सोलह महारोगों को नहीं मिटाया। पूज्य आगमोद्धारकजी इस प्रकार के निर्वेदपूर्ण भाव रखते हुए भयंकर वेदना सहन करते थे। वे 'नो जगतस्त्वम्' और 'नो ते जगत्'—'तू जगत का नहीं है और जगत तेरा नहीं" ऐसे महान् वचनों का स्मरण कर अपने मन को वैराग्य पूर्ण रखते थे। उन में ऐसी अपूर्व जागृति थी कि जाते जाते (अन्तिम समय में) किसी शिष्य आदि के प्रति या किसी संस्था के प्रति मोह पैदा न हो जाय, तो भी उन्हें एक बात का दुःख सताता था। 'इस संयम की आराधना के प्रताप से यदि मुझे देवलोक मिला तो मेरे इस चारित्र धर्म का क्या होगा। क्या मै चारित्र धर्म खो बैठूँगा? वर्षों के परिश्रम से सुरक्षित रखी हुई यह विरति की आराधना क्या जाती रहेगी? हे भगवन्! जहाँ मुक्ति मिल सके उस जगह जा सकूँ तो बहुत अच्छा हो। मुझे देवलोक की इच्छा नहीं है। कभी कभी इस तरह के उद्गार भी निकलते थे। चारित्र की कैसी लगन लगी होगी? कैसी प्रबल इच्छा होगी चारित्र की।

मौन में मुनिराज

वीर संवत् २४७६ का आरंभ हुआ। शरीर दिनबदिन क्षीण होने लगा। कर्म भी क्षीण होते गये। आत्मा उज्ज्वल होता गया। मनोबल दृढ होता गया। रोग की शक्ति उभरने लगी और गुरुदेव की समता पराकाष्ठा पर पहुँची।

वैशाख सुदी ६ का दिन आया। पूज्य आगमोद्धारकश्री का शरीर व्यथा से व्यथित होता गया और अन्तरात्मा जागृति में आ गया।

किसीने पूछा—महोदय! कैसी तबीयत है?

पूज्यश्रीने उत्तर दिया—पंचमी की छठ नहीं होगी। शिष्य इसका तत्त्व नहीं समझ सके, मात्र अर्थ ही समझे कि मनुष्य को जिस रोज दुनिया से जाना होता है उसी रोज जाता है। इस में परिवर्तन नहीं होता। आयुष्य की तिथि में कमी–बेशी नहीं की जा सकती। पूज्यश्रीने तो इस के बाद मौन व्रत ग्रहण कर लिया।

सेवारत्न शिष्य सुश्रूषा में हर वक्त तत्पर थे। उन में भावी पट्टधर आचार्य देवश्री माणिक्यसागरसूरिजी भी हाजिर थे। बाह्य शारीरिक सुश्रूषा में मुख्यतः पुज्य मुनिवर श्री गुणसागरजी महाराज तथा पू० मुनिवरश्री अरुणोदय सागरजी थे। सेवा में इन की भावना और जागृति अधिक थी, पू० आगमोद्धारकजी को आत्मिक सुश्रूषा की जरूरत ही कहाँ थी। वे स्वयं ही अपने भाव वैद्य थे।

अर्ध पद्मासनावस्थामें अनशन

पू० आगमोद्धारकश्री ने वैशाख सुदी ५ से अर्धपद्मासनावस्था में बैठना शुरू किया। प्रतिलेखना, प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रियाओं में

अपवाद था। उतने समय के लिए अर्धपद्मासन नहीं रहता था। परन्तु रात्रिको संथारा–शयन का त्याग कर दिया था सारी रात अर्ध-पद्मासन–स्थिति में ही आत्मचिंतन करते थे।

आहार, औषधि, उपधिका अन्तःकरण से त्याग किया। मुख के पास ओषधि ले जाई जाती परन्तु वे ग्रहण नहीं करते थे, संकेत से इनकार कर देते। जीभ बराबर थी, वाचाशक्ति स्पष्ट थी। चैतन्य स्मृति युक्त था, तथापि पूज्यश्री ने संपूर्ण मौन अंगीकार किया था। मौन और ध्यान ये दो ही विषय पूज्यश्री के जीवन में रहे थे। पूज्यश्री की यह अवस्था देख कर देखनेवाले को बड़ी विह्वलता होती, परन्तु उन्हें स्वयं कुछ नहीं लगता था। उनके मुख पर तो ऐसे अवसर पर केवल साधना का स्मित ही लहराता था।

वैशाखी पूर्णिमा गई। कृष्णापक्षकी प्रतिपदा, दूज, तीज और चौथ गई, पंचमी आ पहुँची। आत्माराम में रमते हुए इस महात्मा की मनोदशा शुक्ल–शुक्लतर होती गई, ध्यानाग्नि में कर्म भस्मसात् होने लगे।

उस एक शिष्यको याद आया—महाराजजी ने कहा था कि 'पंचमी की छठ नहीं होगी' तो क्या आज ही महाराजश्री दुनिया से चले जाएँगे? उस शिष्यने अन्य मुनियों से भी बात की। सब चौंके 'क्या आज ही पूज्य श्री विदा ले लेंगे?'

दीपक बुझ जाता है

नवकारसी का समय गया, पोरिसी, साध–पोरिसी का समय भी बीत गया। पुरिमड्ढ का समय भी जाता रहा। पच्चक्खाण में कोई

भी समय हो जाय परन्तु इस ध्यानी महात्माने चतुर्विध आहार का सर्वथा त्याग किया था, अतः उन्हें पच्चक्खाण के समय की आवश्यकता नहीं थी।

दिन का तीसरा प्रहर भी धीरे धीरे बीत गया अपराह्न के साढे तीन का वक्त हुआ। पूज्यश्री अर्धपद्मासन लगाये और नैत्र निमीलित किए बैठे हुए थे। उनका वृद्ध अँगूठा नवकार की संख्या गिनता हुआ अंगुलियों के पोरों पर चल रहा था। उतने में शरीर विदारक प्रकुपित वात का आक्रमण हृदय पर हुआ।

बड़े बड़े डाक्टर तथा वैद्य उपस्थित थे। परन्तु पूज्यश्री पौद्गलिक बाह्य या आन्तरिक उपचार नहीं लेते थे। सब को ऐसा लगने लगा कि अब पूज्यश्री गये, परन्तु अमृत चोघडिये को अभी दो घड़ी की देर थी। देखनेवाले मुनिगण, उपासक वृन्द, शरीर—निष्णात सब पूज्यश्री को भक्तिभाव पूर्वक एक टक निहार रहे थे, जब कि पूज्यश्री तो शरीर पर हुए प्रकुपित रोग के आक्रमण के समय भी बहुत ही स्वस्थचित्त थे।

अमृत चौघडिया आ पहुँचा। पू० आगमोद्धारकश्री के अष्टोत्तर शताधिक शिष्यो में से छत्तीस शिष्य उपस्थित थे। उन्होंने पूज्यश्री को चारों ओर परिक्रमा क्रम से घेर लिया। श्रावकसंघ के नेता उपस्थित थे। साध्वी संघ एवं श्राविका संघ उपस्थित था।

पूज्यश्री ने नेत्र खोले। दोनों हाथ जोड़ कर मौनतः सबकी क्षमापना कर उपस्थित पुण्यवानों पर हास्यमय सौम्य दृष्टि डाली। देखने वालों में से कुछ लोग समझ गये कि पूज्य श्री अंतिम महायात्रा की

अनुमति ले रहे हैं। पूज्यश्री पुनः नेत्र मूँद कर ध्यानारूढ हुए और उनका अंगूठा अंगुलियों के पोरों पर फिरने लगा।

अमृत घटिका क्षण क्षण बीतने लगी। एक घडी पूर्ण हुई। पूज्य श्री स्वयमेव श्रीनमस्कार महामंत्र जप रहे थे। अन्य मुनि भी 'अरिहंते पवज्जामि' का पाठ सुना रहे थे। हृदय पर प्रकुपित महावात का हमला हुआ, और पूज्यश्री की गर्दन दो अंगुल ढल गई। शरीर-निष्णातों ने नाडी जाँचकर बताया कि दीपक बुझ गया है।

भयानक आघात

शिष्यों के हृदय पर वज्रपात का सा आघात हुआ। सब की आँखों से आँसुओं की झडी लग गई। श्रावक वर्ग बालक की तरह चिल्ला कर रोने लगा। कोमल हृदय में भक्ति धारण किये हुए साध्वियाँ एवं श्राविकाएँ सुबक सुबक कर रोने लगीं। यह रुदन सुनना भी दर्दनाक था। उनका हृदय विदारक रुदन पाषाण हृदयों को भी रुला देता था।

सभी जानते हैं कि सब को एक दिन जाना है, परन्तु महापुरुष के चले जाने से भावनाशील लोगों को बहुत दुःख होता है। ज्ञानियों को भी उद्धारक व्यक्ति के जाने का आघात सहना कठिन होता है। परमात्मा महावीर देव के निर्वाण से शासन के सरताज़ गणधर श्री गौतमस्वामीजी बालक की तरह नहीं रोये थे? तब भला यह शिष्य-समूह क्यों न रो पड़े।

आज तो मानो गलियाँ रोती हैं, राजपथ रुदन करते हैं। सूरत रो रहा है, उपाश्रय की दीवारें रोती हैं, पशु-पक्षी भी रोते हैं, जैसे सब कुछ रुदनमय हो गया हो ऐसा उदास वातावरण हो गया।

ये समाचार सभी स्थानों को नभोवाणी तथा शीघ्रवेगी (रेडियो, तार, टेलिफोन) साधनों से भेजे गये। जहाँ ये समाचार पहुँचते वहाँ आघात और शोक छा जाता। श्रावक वर्ग तो रेलगाडी आदि साधनों से पूज्यश्री के अन्तिम दर्शनों के लिए सूरत के आँगन में उमड़ने लगा।

सूरत की गली गली में शोकमय वातावरण देख कर सूर्य भी उदास हो गया। पूज्यश्री आगमोद्धारकजी के निर्वाण के समाचार से वह भी अत्यंत दुःखी हुआ, और यह भयंकर आघात सहन न कर सकने के कारण अस्ताचल की ओर चल पड़ा।

अन्तिम यात्रा

वैशाख कृष्णा (उत्तर में ज्येष्ठ कृष्णा) ६ के दिन दूसरे पहर के प्रारंभ में अंतिम यात्रा निकलने वाली थी। शाम को शहर के प्रसिद्ध स्थपतियों को बुलाया गया था। उनसे कहा गया था कि आज रात भर के समय में इस महात्मा के योग्य एक छोटे मंदिर के समान विशाल और शोभामय 'महाशिबिका' बनानी है।

स्थपतिगण तुरन्त ही भक्ति पूर्वक कार्य में लग गये। सुबह तक तो सात हाथ ऊँची, देव कुलिका की स्मृति करानेवाली कलामय महा-शिबिका तैयार हो गई। ऐसा दिखाई पड़ता था मानो इन्द्र महाराज की आज्ञा से वश्रमणदेवने पूज्यश्रीकी भक्ति के लिए यह 'महाशिबिका' भेज दी है।

आज के प्रथम प्रहर तक में हजारों जैन-जैनेतर दर्शनार्थी अंतिम दर्शन के लिए आ गये। अन्य शहरों और गाँवों से हजार से अधिक भाग्यवान् अन्तिमयात्रा में भाग लेने आये थे।

द्वितीय प्रहर के प्रारंभ में अंतिमयात्रा का आरंभ हुआ। हजारों का मानव समूह उमड़ा हुआ था। 'जय जय नंदा जय जय भद्दा' की ध्वनिपूर्वक महाशिबिका उठाई गई वाद्ययन्त्रों से शोक के सुर निकल रहे थे। सूरत के राजमार्गों से हो कर अंतिमयात्रा अग्नि संस्कार के स्थान पर आ पहुँची।

इन महात्माश्री के महापुण्य से नगर के बीच आगमसंदिर से इक्यासी हाथ दूर अग्नि संस्कार का स्थल था, परन्तु सरकारी नियम ऐसा है कि किसी मानव का अग्नि संस्कार नगर के बीच में नहीं किया जा सकता। फिर भी ये महात्मा मानव नहीं अपितु महामानव थे, अतः यह नियम गौण हो गया। सरकारी अफसर ने आगममंदिर के पास की भूमि का निरीक्षण किया। आस पास रहनेवाले जैनेतरों से भी पूछा गया कि "इन महात्माश्री की स्थूल देह का इस स्थान पर अग्नि संस्कार किया जाय तो आपको कोई उज्र तो नहीं है? जैनेतर भाइयों ने बहुत आनंदपूर्वक व्यक्त किया कि 'ये महात्मा जैनों के हैं उसी तरह हमारे भी हैं। हमें कोई ऐतराज़ नहीं है।' तत्पश्चात् सरकारी अधिकारी ने आगमोद्धारक संस्था की मिलकियत की जगह में अग्नि संस्कार करने के लिए विशिष्ट अधिकार सहित हुकमनामा लिख दिया। फलतः नगर के मध्य में दाह क्रिया हुई।

धर्मपुत्र के हाथों अग्निदाह

शहर के राजपथों पर घूम कर अंतिम यात्रा अग्नि संस्कार के स्थान पर आ गई। इसी स्थान पर अग्नि संस्कार का चढ़ावा बोला गया। क्षत्रिय कुल भूषण जैनरत्न श्री जयंतिभाई वखारिया ने चढ़ावा लिया।

यह भाग्यशाली कह रहे थे 'हमें पूज्यश्री के द्वारा ही धर्म प्राप्त हुआ है। यदि हमें पूज्यश्री का सत्समागम न मिला होता और हमें धर्म–दान न दिया गया होता तो हम न जाने कहाँ मिथ्यात्व-अज्ञान में भटक गये होते। औरोंकी तरह हमें विरासत में धर्म नहीं मिला है, परन्तु इन महात्माश्री ने ही हमें धर्म दिया है। अतः ये हमारे धर्म पिता हैं, मैं इनका धर्मपुत्र हूँ, यह लाभ क्यों जानें दूँ!'

शुद्ध चंदनकाष्ठ की चिता रची गयी। उस पर उपर्युक्त महा-शिबिका रखी गई। उत्तराषाढा नक्षत्र में पूज्यश्री आगमोद्धारकजी के भौतिक स्थूल देह का श्री जयंतिलालभाई वखारिया ने आँसू टपकाते नेत्रों और खिन्न वदन के साथ अग्नि संस्कार किया।

चन्दनचय की महाज्वालाओंने महात्मा के भौतिक स्थूल शरीर की भस्म बना दी। सब लोग आँखों में उदासी लिए वहाँ से बिखर गये।

उपाश्रय में पू० आगमोद्धारकश्रीजी के पट्टधर आचार्यदेवश्री माणिक्यसागरसूरि महाराज की पुण्यनिश्रा में देववंदन किया गया। तत्पश्चात् गुणानुवाद कर सब चले गये।

जो लोग अग्निदाह के स्थान पर गये थे वे स्नान कर के उपाश्रय में आये। उन्हें मांगलिक सुनाया गया।

गुरु–मंदिर

पूज्य आगमोद्धारकश्री के भौतिक स्थूल शरीर को जिस स्थान पर अग्नि संस्कार किया गया था उस स्थान पर पूज्यश्री की स्थायी स्मृति रहे इस आशय से सुन्दर गुरु–मंदिर निर्माण किया गया। आज यह गुरु–मंदिर पूज्यश्री की पुण्य–स्मृति कराता है और कहता है 'इन के

जैसे आगमोद्धारकश्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् कोई नहीं हुए और भविष्य में कब होंगे सो ज्ञानी ही जानते हैं।'

पूज्य आगमोद्धारकजी गये परन्तु अपने पीछे चिरस्थायी अध्यात्ममयी सुवास छोड़ गये हैं।

उस बहुश्रुत महात्मा के चरणारविंदों में वन्दन हो।

*

No. POL

Camp via Surat, $\frac{3rd}{6th}$ May 1950.

Read : letter dated 2-5-50 from Shantilal Chhaganbhai, Trustee of Agamoddharak, Jain Sanstha, Juni Adalat, Gopipura, Ward No. 1, Surat City, requesting cremation of Acharya Sagaranand Surishwarji, Jain saint, in land of plot bearing city survey No. 3394/B.

Order

Permission is granted, as a special case and without the creation of a precedent, to the cremation of the dead body of the Jain Saint Shri Sagaranand Surishwarji in the open space of city survey No. 3394/B, Ward No. 1, Surat City. This permission does not dispense with the permission of Municipal Borough if such permission is necessary.

Sd/- Illegible
District Magistrate Surat.

To.
The Applicant Shantilal Chhaganbhai,
Truetee, Agamoddharak Jain Sanstha, Gopipura,
Surat.

The D. S. P. Surat, w. c.
The President, Surat Borough Municipality, w. c.

आगमोद्धारकश्रीकी यह अंतिमप्रस्तावना
वि० सं० २००५ में प्रकाशित
उपदेशरत्नाकर-भावार्थमेंसे उद्धृत

प्रासंगिकम्

१ यद्यपि 'जयसिरी'त्यादिपदाङ्कितगाथासु तृतीयभागादिषु पदानां क्वचित् क्वचिद् विपर्यासोऽस्ति परमादिपदस्य समानत्वादत्र समा एकत्र धृताः।

२ अत्र निर्दिष्टे प्रथमद्वितीये तटे आद्यमध्यमतटनामायां स्वोपज्ञटीकायां विवृते, तृतीयं तु तस्य अपरतटनामकं संस्कृतप्राकृतभाषायुक्तगाथात्मकं सुगममिति कृत्वा न तत्र विवृतं ततो विवृतमुपदेशरत्नाकरमादृत्य प्राग् मुद्रणस्य कृतत्वात् तत्र न तन्मुद्रितं, ततस्तृतीयतटस्य मुद्रणं नूतनमेव, तदुद्धारार्थमेव कृते प्रस्तुते प्रयत्ने प्राङ्मुद्रितयोः प्रथममध्यमतटयोर्मुद्रणं त्वखण्डार्थं ग्रन्थस्य।

३ अकारादिक्रमे तिसृणामपि तटगतगाथानां विहितोऽनुक्रमः, न च प्राङ्मुद्रिते द्वयोरपि मुद्रितयोस्तटयोरस्त्यकारादिक्रमः।

४ अत्र केषुचित् तरङ्गेष्वंशापरपर्यायेषु मूलादर्शापेक्षया या गाथास्तासामवतरणायानेकत्र वृत्तौ धृता गाथाः पराः तासु च काश्चिद् विवृता अपि सन्ति।

५ विवरणपुस्तकेषु तु 'अंशानां भागास्तरङ्गे'ति नाम्नाऽऽख्याताः।

६ अत्र त्वकारादिक्रमस्त्रयाणामपि तटानां कृतोऽस्ति।

७ आद्ये चत्वारोऽंशाः द्वितीये च चत्वारोऽंशाः तृतीये तु तटेऽष्टांशाः; एवं षोडशांशात्मकोऽयं ग्रंथ इति।

आनन्दसागरः।

पू० आगमप्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म० ने आगमोद्धारकश्रीको 'समर्पण' किए हुए नंदीसूत्रचूर्णिमें से उद्धृत

गंथसमप्पणं

वरसुयसायरवीईतरंतमण-वयण-कायजोगाणं ।
वरजिणआगमपयडणकरणे अपमत्तजोगाणं ॥ १ ॥
जोगाजोगविहन्नूण नूण गंभीरिमाए गरिमाणं ।
'आगमउद्धारय'वरउवाहिमंताण संताणं ॥ २ ॥
आयरियपुंगवाणं सागरआणंदसूरिणामाणं ।
महणायसद्दसच्चावयाण दुसमम्मि कालम्मि ॥ ३ ॥
करकमलकोसमज्झे ताणं संपइ दिवंगयाण मए ।
अप्पिज्जइ गंथोऽयं विणएणं पुण्णविजएणं ॥ ४ ॥

ग्रन्थसमर्पण

जिनका मन-वचन-काययोग श्रेष्ठ श्रुतसागरकी तरंगोमें तैरता था, जो श्रेष्ठ जिनागमके प्रकाशनमें अप्रमत्तयोगसे प्रवृत्त थे, योग-अयोग के विवेक में कुशल थे, गाम्भीर्य गुणकी गरिमासे अन्वित थे, 'आगमोद्धारक'की श्रेष्ठ पदवीसे विभूषित सन्त थे, और दुःषमकालमें जिन्होंने अपने आपमें 'महानाद' शब्दको सत्य सिद्ध किया था ऐसे साम्प्रत कालमें दिवंगत आचार्य श्रेष्ठ श्रीसागरानन्दसूरिजीके पवित्र करकमल रूप कोषमें यह ग्रन्थ विनयपूर्वक समर्पित करता हूँ ।

पुण्यविजय

आगममन्दिरचतुर्विंशतिका ।

आगमोद्धारकप्रणीता ।

भो भव्या ! निपुणेन शुद्धमनसा स्थानं समालोक्य मा-
ऽऽख्यान्तु प्राप्य समुद्धुशं पदतति स्यां लोकविद्या श्रियै !
यस्मिन्नेतदुवाच शास्त्रविततिः श्रुत्वा वचस्तादृशं
भव्यैः शाश्वतसिद्धिदाननिपुणो दिष्टस्त्वयं 'शैलराट्' ॥१॥

स्थानं नैव परं त्रिलोकवलये कैवल्यबोधान्वितै-
र्दृष्टं सेवयतो 'युगादिजिनपो' वारात् परार्घात् पराः ।
अत्राऽऽगत्य दिदेश भव्यततये मोक्षाध्वसेवानिभां
सेवामस्य यतोऽगुरिद्धहिततोऽनन्ताः पदं शाश्वतम् ॥२॥

क्षेत्रप्रभावमसमं 'गिरिराज'सत्कं
श्री'पुण्डरीकगणधारिण'माप्य जातम् ।
भव्यो दधाति हृदये सततं यदत्र
लेभे स मुक्तिपदवीं 'गिरिराट्'प्रभावात् ॥३॥

चित्रं जैनेन्द्रधर्मे स्वबलकृतशिवे 'पुण्डरीको' गणेशः
कोट्युन्मानान् मुनीशाञ्छिवपदमनयत् सार्धमेवात्मना यत् ।
स्थित्वाऽत्रोच्चैः प्रभावाद् 'गिरि'महिमबलाज्ज्ञी 'युगादीश'दिष्टा
मन्ये लाभं विदित्वा मनसि गणधरोऽस्थाद् गुरुभ्यः पृथक्त्वे ॥४॥

कालोऽनुक्षणमुत्तमार्थनिधने बद्धादरस्तत्र किं
स्यात् ते भावि पदं श्रियै इति वचः शास्त्रावलेर्नो मतम् ।
आत्मार्थोद्यतधीमतां शिवपदं तीर्थं तृतीयेऽभव-
दारेऽसङ्ख्यतमा गताः शिवपुरं जीवास्तथा नो पुरा ॥५॥

शैलेय्यः प्रतिमाः पुरा न सुलभा वक्रस्वभावे नृपे
स्वच्छो ग्रावचयोऽधुनाऽतिविशदो देशान्तरे प्राप्यते ।
तन्मां ग्रावसमुच्चये सुविधिनोत्कीर्यात्र चेत् स्थापये-
दातीर्थं भविनां मनोरथततिं सन्मार्गगां पूरये ॥६॥

वैद्योपदिष्टमतिमिष्टमिवातुरोऽद्ः
श्रुत्वा वचः परपदाप्तिसमुद्यतोऽयम् ।
सङ्घोऽत्र शास्त्रवितते: स्थिरतां चिकीर्षु-
श्चक्रे सदागमयुतं 'जिनमन्दिरं' द्राक् ॥७॥

परो लक्षाञ्श्लोकान् विशदलिपिनोत्कीर्य विशदे
शिलोच्छाये शुभ्रे शिवसुखलभोऽस्त्रागमततेः ।
न्यधत्ताशेषाणां हिततति कृते तं सुविशदे
कृते चैत्येऽशीत्या शतयुतजिनार्चालिविमले ॥८॥

क्रियात् पवित्रं निजजीवमाशु भव्यो जनस्त्वित्थमुदारबुद्ध्या ।
जिनेशिनामेत्र पुरस्तदीयाऽऽगमावलीमत्रगतां न्यधत्त ॥९॥
दिव्यानि चैत्यानि पुराण्यशीत्या शतेन युक्तानि जिनेशबिम्बैः।
तद्बाणवेदप्रमितानि कृत्वा चतुर्मुखानि व्यदधात् तथाऽत्र ॥१०॥

विधिद्वयं श्रीजिनराजिभावे स्यात् केवला विंशतिरिद्धरूपा।
युता चतुर्भिश्च चतुर्भिराढ्यं युग्मं समन्तात् शुचिविंशतेरिह ॥११॥

तिर्यग्लोके जिनपजननं तन्महार्थं सुरेशाः
स्वर्गादीयुर्निजहितकरं कर्त्तुमर्हद्विभूनाम्।
जन्मस्नात्रं शिरसि 'विबुधाद्रे'श्च ते पञ्च शैलाः
मत्वाऽत्राऽधाद् विबुधसहितः 'पञ्च मेरून्' सुसङ्घः ॥१२॥

न शाश्वतेष्वेषु जिनालयेषु हित्वाऽर्हतां तुर्यमवाप्यतेऽन्यत्।
नामेति मध्येऽत्र विशालचैत्ये 'चतुर्मुखो शाश्वतनामधेया' ॥१३॥

जगत्यां जीवाद्याः सततभविनो भावनिचया
अतोऽर्थः शास्त्राणां विबुधततिभिर्नित्य उदितः।
दिशन्तस्तान् भावान् निखिलविदुपाऽऽवेद्य जिनपा
मतः शास्त्राणां ते निरूपणचणा अर्थनिचये ॥ १४ ॥

सूत्राणां ग्रथनं तु तद्वचनतश्चक्रुर्गणेशाः समं
तत्तीर्थं निखिलाङ्गितारणसहं श्रीद्वादशाङ्गात्मकम्।
तत्पट्टान् गणधारिणां समजिनव्रातस्य सन्मन्दिरे
ह्यासन्ने विदधौ विधानकुशलः सङ्घो गणेशाङ्किते ॥१५॥ युग्मम्

तीर्थमेतदिह पुस्तकावलिं धारयन्नितरथाऽस्ति नैव तत्।
पुस्तकानि च चकार 'देवयुक् सद्गणी' प्रमितिधाम सर्वदा ॥१६॥

५ २

एवं पट्टा गणधरनिलये बाणयुग्माङ्कितास्तान्
काले क्षेत्रे सुकृतपरिमिते यानि सर्वत्र लोके ।
पूज्यान्य 'र्हं' त्प्रमुखनवपदीयुक्तसत्सिद्धचक्रा-
न्युद्देष्टयाथो परित उपरतो ह्येनसः सङ्घ आधात् ॥ १७ ॥

'मेर्वा'दयो यद्वदमी जगत्यां शश्वद्भवाः शास्त्रकृता सुगीताः ।
'सिद्धाद्रि'रेषोऽपि तथैव मानं परं न नित्यं न ततस्तथोक्तः ॥१८॥

यावत् 'तीर्थं' भविकजनतामोक्षसिद्ध्यै सहायं
'तीर्थं' ह्येतद् बुधजनमतं शुद्ध 'शत्रुञ्जयाख्यम्'
मत्वा सङ्घो विमलपदवीप्राप्तिहेतोः सदाऽत्र
भक्तौ प्रह्वो सुविदिततमं ध्यातवांश्चैत्ययुग्मम् ॥ १९ ॥

अधित्यकायां जिनचैत्ययोर्न सुखावहा स्यात् कृतिरुग्रमूल्या ।
पयोदकाले श्रमणादिसङ्घो नेयादितीमे विहिते अधस्तात् ॥२०॥

चत्वारिंशत् सहस्री तदपरनिलया यात्रिकाणां क्षणेऽस्मिन्
द्रष्टुं चैत्योत्सवं तज् 'जिनपतिनिचयाचविलेरञ्जने'ऽत्र ।
चैत्येषु स्फुर्तितेषु द्रविणचय 'कृतेष्वासितुं जैनमूर्तीः'
प्राप्ता नो तत्र कोऽपि मृतिमुपगतवानुत्सवाहान् नितान्तम् ॥२१॥

५ ४

शिलोच्चये 'शरवेदसङ्ख्या आचारमुख्याः' सुविशुद्धरूपाः ।
उत्कीरिताः सन्ति जिनागमास्ते 'सूर्ये पुरे' 'ताम्रपटेषु' नान्ये॥२२॥

'भाण्डागारेषु' विज्ञैरनुपममतिभिस्स्वागमानां सुपेटाः
स्थाने स्थाने जिनेशोदिततनतिममला रक्षितुं न्यस्तपूर्वाः।
त्रेधं तद् रक्षितुं श्रीजिनपतिवचनान्मादृतं सङ्घमुख्यै-
र्मत्वैतत् सर्वलोकाः प्रतिपदमनिशं संस्तुवन्त्यागमालिम् ॥२३॥

फलं यत्नाल्लभ्यं बुधततिगदितं वाक्यमेतद् विचिन्त्य
'त्रिधा' धत्ते यत्नो जिनपतिगदितां रक्षितुं 'शास्त्रवीथिम्'।
भविष्यन्त्यां सङ्घो जिनवरकथितां शास्त्रवीथिं पवित्रां
न किं रक्ष्यां मत्वा सततमवधृतिं शास्त्रधृत्यै विधाता ॥२४॥

४ ० ० २

वेदखयुग्मकरप्रमितेऽब्दे 'सूर्यपुरे'स्थितसुश्रमणाद्यैः।
भूरिधनैर्निरमायि किलैष चारुमहोत्सव उज्ज्वलबोधैः ॥*२५॥

×'અંજનાશલાકા' વી૦ સં૦ ૨૪૬૯, વિ. ૧૯૯૯ ના મહા વદ બીજને સોમવારે (તા. ૨૨-૨-૧૯૪૩) પાલીતાણામાં કરાઈ હતી અને 'પ્રતિષ્ઠા' મહા વદ પાંચમને ગુરૂવારે (તા. ૨૫-૨-૧૯૪૩) કરાઈ હતી.

*છંદો-ઉપજાત-પદ્યાંક-૯,૧૦,૧૧,૧૩,૧૮,૨૦,૨૨, ચંદ્રલેખા-૧૭ દોધક-૨૫. મંદાક્રાન્તા-૧૨. ૧૯; રથોદ્ધતા-૧૬, વસન્તતિલકા-૩, ૭. શાર્દૂલવિક્રીડિત-૧,૨,૫,૧,૧૫. શિખરિણી-૮, ૧૪, શોભા-૨૪.સ્રગ્ધરા-૪,૨૧,૨૩.

पूज्य-गच्छाधिपति-आचार्य-श्रीमाणिक्यसागरसूरीश्वरप्रणीता

श्रीवर्धमानजिनागममन्दिर-प्रशस्तिः

श्रीसिद्धभूभृत्तलहट्टिकास्थितं समुन्नतं देवविमानसन्निमम् ।
विलोक्य जैनागममन्दिरं वरं प्रयाति को भव्यजनो मुदं न हि? ॥१॥

सच्चतुःशिखरिचैत्यखार्णव-मानदेवकुलिकाविभूषितम् ।
राजते गगनचुम्बि बन्धुरं यत्र शाश्वतजिनाह्वमन्दिरम् ॥२॥

सिद्धचक्रगवरमण्डलाखिल तीर्थकृद्गणधरादिमूर्तियुग् ।
सिद्धचक्रगणभृद्गृहं तथा तद् जिनागमगृहं न कः स्तुते? ॥युग्मम्

विशाले श्रीतपागच्छे कल्पद्रुमोपमे वरे ।
श्रेष्ठसाधुगणा शाखा समस्ति सागराभिधा ॥४॥

तत्राऽभवन् जिनेन्द्रस्य शासनस्य प्रभावकाः।
मुनीश्वरा 'जयवीर'-सागरा ज्ञानसागराः ॥५॥जहूवेरेति प्रसिद्धाः

आसंस्तेषां शिष्यरत्नाः श्रुतसंयमशालिनः ।
आगमोद्धारकाः सूरी-श्वरा आनन्दसागराः ॥६॥

यैर्मुनीनां वाचनादि-सौकर्यार्थं स्वयं समे ।
संशोध्य रम्यपत्रेषु प्रकाशिता जिनागमाः ॥७॥

सिद्धान्तवाचनाः सप्त पुरेषु पत्तनादिषु ।
श्रुतार्थिभ्यो मुनिभ्यो ये प्रायच्छन् ज्ञानवृद्धये ॥८॥

उत्कीर्यन्ते शिलासु चे-दागमांश्चिरस्थायिनः ।
भवेयुरिति सङ्कल्पः सूरीणामेकदाऽभवत् ॥ ९ ॥

४ ९ ९ १
युगनिध्यङ्कचन्द्राब्दे वैक्रमे शुभवासरे ।
सूरीणां तीर्थयात्राया उपदेशाद् वराशयौ ॥१०॥

इभ्यौ श्रीपोपटभाई-चूनीलालेति सञ्ज्ञकौ ।
दानवीरौ धर्मिश्रेष्ठौ भूरिश्रमणश्रावकम् ॥११॥

सौराष्ट्र तीर्थयात्रायाः सङ्घं रीषट्कपालकम् ।
निरकासयतां जाम-नगराद् जिनगेहयुक् । ॥१२॥त्रिभिर्विशेषकम्

तत्र सङ्घे सूरिवर्या विहरन्तः पुरात्पुरम् ।
तीर्थं शत्रुञ्जयं नन्तुं पादलिप्तपुरेऽगमन् ॥१३॥

सङ्घेन सह सिद्धाद्रिं रम्यचैत्यालिराजितम् ।
आरुह्य सूरयो नाभि-नन्दनं जिनमस्तुवन् ॥१४॥

ततः सूरिवराः सिद्ध-गिरिप्रभावमद्भुतम् ।
पुनः पुनः संस्मरन्तो गिरिराजादवातरन् ॥१५॥

तत्रागमान् शिलारूढान् निर्मातुं गुरवोऽदिशन् ।
तथा तदागमन्यास-कृते मन्दिरनिर्मितिम् ॥१६॥

श्रुत्वोपदेशं सूरीणां तत्कृते सङ्घशेखराः ।
पोपटभाई जहर-मोहनभाईमुख्यकाः ॥१७॥

वर्धमानजिनागम-मन्दिराख्यां सुश्रावकाः ।
संस्थामस्थापयन् तत्र पृथक्पृथक्पुरस्थिताः ॥१८॥

आरासरीयशिलासु धवलासु दृढासु च ।
५ ४
शरवेदान् ततः संस्था सिद्धान्तानुदकीरयन् ॥१९॥

उत्कीर्णागमशिलाभिः सहागमप्रणायिनाम् ।
प्रतिमाः स्युस्तदा भव्य-मिति पूज्यैर्विचारितम् ॥२०॥

ज्ञात्वा विचारं सूरीणां संस्था च निरमापयत् ।
भव्याकृतीस्तथा मानो-पेता मूर्तीः परःशताः ॥२१॥

शिलारूढागमानां च प्रतिमानां जिनेशिनाम् ।
संस्थापनाय मन्दिरं संस्थयाऽथ विचारितम् । ॥२२॥

आसीत् सूर्यपुरे श्राद्धः फूलचन्द्रेतिसञ्ज्ञकः ।
उदारस्तस्य च्छगन-भाईत्याख्यो वरः सुतः ॥२३॥

जवेहरी शान्तिचन्द्रोऽस्ति तत्सूनुर्गुरुभक्तिमान् ।
सहस्रै रूप्यकैस्तस्य बाणलोचनसंमितैः ॥२४॥

क्रीता च तलहट्टिका-समीपस्था वसुन्धरा ।
संस्थयाऽऽगमन्दिर-निर्माणार्थं नृपान्तिकात् ॥२५॥

४ ९ ९ १
वैक्रमीये नदीशाङ्क-नन्देन्दुवत्सरे तिथौ ।
दशम्यां राधशुक्लस्य समहं विधिपूर्वकम् ॥२६॥

उमाभाईसुपुत्रेण पन्नालालेति श्रेष्ठिना ।
संस्था जिनागमसद्म–खातं तत्र व्यधापयत् ॥२७॥ युग्मम् ॥

उत्कीर्णागमशिलानां स्थापनार्थं क्रमेण च ।
संस्था निरमापयत् तत्र भव्यमागममन्दिरम् ॥२८॥

आगमौकसि निष्पन्ने प्रतिष्ठार्थं च मण्डपे ।
संस्थापिताः पीठिकायां जिनेशप्रतिमाः ततः ॥२९॥

९ ९ ९ १

तासां च नवनिध्यङ्क–चन्द्राब्दे वैक्रमे विधो ।
माघासितद्वितीयायां मुहूर्ते समहोत्सवम् ॥३०॥

शुभाञ्जनशलाकार्हन्मूर्तीनां विधिना कृता ।
माणिक्याब्धियुतैः सूरी–श्वरैरानन्दसागरैः ॥३१॥

ततश्च नवनिध्यङ्कचन्द्राब्दे वैक्रमे कृता ।
माघस्य कृष्णपञ्चम्यां प्रतिष्ठागममन्दिरे ॥३२॥

समुत्कीर्णागमाः शिला आगमालयभित्तिषु ।
मुहूर्त्तैर्योजिताः सम्यग् रत्नानीव गणेशितुः ॥३३॥

तच्चैत्योद्घाटनं राज–नगरस्थेन निर्मितम्
धर्मिमाणिकलालेन मनःसुखेभ्यसूनुना ॥३४॥

आरब्धो माघशुक्लैका–दशीदिनाद् महोत्सवः ।
जिनागमालये रम्ये कुम्भस्थापनपूर्वकः ॥३५॥

नवग्रहार्चनमहा–पूजाङ्गरचनादिकः ।
द्वादशान दिवसान् यावत् प्रावर्त्तत प्रमोदतः ॥३६॥ युग्मम्

प्रत्यहं तत्र स्वधर्मि–वात्सल्यमभवत् तथा ।
प्रभावनादीनि धर्म–कृत्यानि च विशेषतः ॥३७॥

दिवसेऽन्त्ये महास्नात्र–मष्टोत्तरशताह्वयम् ।
जेमयित्वा जनान् सर्वान् ग्रामश्च निर्धूमीकृतः ।३८॥

प्रतिष्ठावसरे तत्र भूयांसो मुनयो वराः ।
तं महं द्रष्टुमायाताः श्रावकाश्च सहस्रशः ॥३९॥

विलोक्य मुदिताः सर्वे प्रशंसन्तो महोत्सवम् ।
अदृष्टपूर्वं इत्येष स्वस्वस्थानमयुर्जनाः ॥४०॥

इत्युत्सवो महानेष मनुष्यमरणोज्झितः ।
निर्विघ्नं पूर्णतां प्रापत् पादलिप्तपुरे वरे ॥४१॥

आचार्यानन्दसागर–सूरिपट्टधरो मुदा ।
प्रशस्तिमेतामलिखत् सूरिर्माणिक्यसागरः ॥४२॥

णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्रीवर्धमानजैनताम्रपत्रागममंदिर-

प्रशस्तिः

जिनेन्द्रा यदीयात् प्रभावात्समस्ता,
यतः शाश्वतत्वं जिनेशागमानाम् ।
स्वतः सिद्धभावास्ततः सङ्घसार्था,
नितान्तं नतिं कुर्वते शुद्धभक्त्या ॥ १ ॥

जनानन्याकाङ्क्षा भवति विपुला साऽऽगमतते-
स्ततस्तां देवेशाः स्फुटतरमुदाऽर्हन्ति सततम् ।
समस्तार्थोद्योतां सुरनरनिकायप्रकटिकां,
जगत्यां धर्मोऽयं जयतु सततं ह्यागममयः ॥२॥

श्रीवीरजिनेश्वरस्य २४७४ तमे श्री विक्रमार्कस्य २००४ तमे हायने माघशुक्लतृतीयायां श्रीसिद्धक्षेत्रीयागममन्दिरानुकृति-मति श्रीसुरत-गोपीपराभूषणे श्रीआगमोद्धारकाख्यसंस्थया कारिते श्रीवर्धमानजैनताम्रपत्रागममन्दिरे विंशत्यधिकशतेन जिनबिम्बानां पञ्चचत्वारिंशता ताम्रपत्रीयागमानां च शोभिते प्रतिष्ठा कारिता श्रीमत्तपोगच्छीयागमोद्धारकानन्दसागरसूरिणा श्रेयसे स्तात्तीमर्थ ॥

गुरुवर्याष्टकम् ।

प्रणेता-श्रीमाणिक्यसागरसूरीश्वरः

प्रभावक ! श्री जिनशासनस्य प्रज्ञानिधे ! संयमशालिमुख्य ! ।
जिनागमोद्धारक ! सूरिवर्य ! श्रीसागरानन्दगुरो ! सुपूज्य ! ॥१॥
खगेषु हंसः कुसुमेषु पद्मं शक्रः सुरेषु द्रुषु कल्पवृक्षः ।
यथा तथा साम्प्रतकालवर्ति-संवेगिषु त्वं गुरुराज ! मुख्यः ॥२॥
(युग्मम्)

अनन्यसाधारणबुद्धिमत्त्व-मुख्यान् गुणान् वीक्ष्य मुदं दधानः ।
गुरो ! महान् सूर्यपुरीयसङ्घ-स्त्वां भूषितं सूरिपदेन चक्रे ॥३॥
संशोध्य टीकादियुतं समस्तं जिनागमं शास्त्ररहस्यवेदिन् ! ।
स्वाध्यायसौकर्यकृते मुनीनां प्रकाशितः सूरिवर ! त्वयाऽहो ॥४॥
वीराय वाचंयमवृन्दवन्द्य-पादारविन्दाय जितेन्द्रियाय ।
रताय मोक्षाध्वनि संयमादौ तुभ्यं नमः सूरिपुरस्सराय ॥५॥
जिनागमस्योद्धृत्ति-वाचने च श्रीमालवे चैत्यसमुद्धृतिश्च ।
इत्यादिकार्याणि महत्त्ववन्ति त्वत्तः प्रवृत्तानि गुरो ! बहूनि ॥६॥
तवोपदेशेन गुरो ! सलाना-राज्याधिपो भूपदिलीपसिंहः ।
सर्वाष्टमीपर्युषणादिनेषु न्यस्तारयत् स्वाखिलपुर्यहिंसाम् ॥७॥

निर्ग्रन्थमाणिक्य ! गुरो ! गुणाढ्य !
त्वयि प्रतिज्ञा दृढता च धैर्यम् !
व्याख्यानशैली च तथाऽद्वितीया
क्वान्यत्र दृग्गोचरमेति पूज्य ! ॥८॥

गुरुदेवाष्टकम् ।

प्रणेता—श्रीमाणिक्यसागरसूरीश्वरः

आगमोद्धारक ! श्रीमान ! दिलीपनृपबोधक ! ।
मुनिचर्यासमासक्त ! आचार्यानन्दसागर ! ॥१॥

गुरो ! त्वं सर्वशास्त्रज्ञ-स्त्वं वादिगजकेसरी ।
श्री जैनशासनाम्भोधि-चन्द्रमास्त्वं चिरं जय ॥२॥

मन्यन्ते गुरुवर्य ! त्वां बुधा बुद्धया बृहस्पतिम् !
गाम्भीर्येण पयोराशिं धैर्येण मन्दराचलम् ॥३॥

गुरो ! सत्ररहस्यज्ञ ! त्वया सिद्धान्तवाचनाम् ।
दत्त्वा श्रमणवृन्दाय महत्युपकृतिः कृता ॥४॥

अप्रमत्त! सदाऽऽसक्त-शास्त्रसंशोधनादिके ।
गुरुराज ! नमस्तुभ्यं मुनिवृन्दनमस्कृतम् ! ॥५॥

प्रावर्तन्त गुरो ! त्वत्तः परार्थार्पितजीवन ! ।
नैकाः संस्थाः समित्याद्या आगमादिप्रकाशिकाः ॥६॥

गुरो ! तवोपदेशेन दया पर्यूषणादिषु ।
दिलीपसिंहराजेन स्वपुरेषु प्रवर्तिता ॥७॥

गुरो ! दृढप्रतिज्ञत्वं निःस्पृहत्वं च यत् त्वयि ।
तथा जिनागमज्ञानं नान्यत्र क्वापि दृश्यते ॥८॥

आगमोद्धारक–आचार्यदेव १००८

श्री आनन्दसागरसूरीश्वरस्तुत्यष्टकम् ।

श्रीजैनशासननभोमिहिरायमाणं
सज्ज्ञानसंयमशमादिगुणाम्बुराशिम् ।
आप्तागमोद्धृतिकरं कृतभूपबोध-
मानन्दसागरगुरुं प्रणमामि सूरिम् ॥१॥

आसीज्जनुः कपडवंजपुरे यदीयं
नाम्ना च यस्य यमुना जननी सुशीला ।
श्रीमग्नलाल इति यज्जनकः प्रशान्त
आनन्दसागरगुरुं प्रणमामि सूरिम् ॥२॥

७ ४ ९ १
यो वैक्रमे मुनियुगाङ्कमृगाङ्क (१९४७) वर्षे
जह्वेरसागर–मुनीश्वरपादपद्मे ।
आदत्त चारु चरणं शिववर्त्म धीरं
आनन्दसागरगुरुं प्रणमामि सूरिम् ॥३॥

प्राचीनपुस्तकसमुद्धरणाय देव–
चन्द्रादिनामकलितः प्रथितः सुकोशः ।
यस्योपदेशमधिगम्य जनि प्रपन्न
आनन्दसागरगुरुं तमहं प्रवन्दे ॥४॥

प्रापज्जनिं सदुपदेशमवाप्य यस्य
श्री आगमोदयसमित्यभिधा सुसंस्था ।
सिद्धान्तवाचनप्रकाशनकारिका श्री
आनन्दसागरगुरुं तमहं प्रवन्दे ॥५॥

निर्युक्ति–भाष्य–वरवृत्तियुतानि सम्यग्
यः प्रापयत्प्रवचनानि विशोध्य यत्नात् ।
भव्योपकाररसिकं श्रुतभक्तिभाज-
मानन्दसागरगुरुं तमहं प्रवन्दे ॥६॥

यो वाचनां समुददान्मुनिमण्डलाय
ज्ञानं प्रचारयितुमाप्तजिनागमानाम ।
सम्यग् जिनागमरहस्यविदां वरेण्य-
मानन्दसागरगुरुं तमहं प्रवन्दे ॥७॥

एवं कृताऽन्यशुभशासनकृत्यजात-
विख्यातशारदशशिप्रभशुभ्रकीर्तिम् ।
आचार्यमौलिमुकुटं मुनिवृन्दवन्द्य-
मानन्दसागरगुरुं प्रणमामि सूरिम ॥८॥

पूज्य आगमोद्धारक-आचार्यप्रवर-श्री आनन्दसागरसूरीश्वर-

गुण-स्तुति :

प्रवर्त्तमानतीर्थेशं वन्दित्वा ज्ञातनन्दनम् ।
स्तवीमि सूरिराजं सद्-गुरुमानन्दसागरम् ॥१॥

देशे मनोहारिणि गूर्जराख्ये
श्रीविक्रमाद् भूगुणनन्दचन्द्रे (१९३१) ।
वर्षे पुरं कप्पडवञ्जसञ्ज्ञं व्यधात्
पवित्रं निजजन्मना यः ॥२॥

मुन्यब्धिनिध्यब्जसमे (१९४७)
गणीनां जह्वेरवारांनिधिसद्गुरूणाम्
पादारविन्दे ललनादिसङ्गं हित्वा
व्रतं यः स्व्यकरोद् युवत्वे ॥३॥

यं वत्सरे, वेदहयाङ्कचन्द्रे (१९७४)
सूर्ये पुरे सूरिपदेन पूज्यम् ।
व्यभूषयत् सङ्घकृतोत्सवेन गुणोदधिः श्रीकमलाख्यसूरिः ॥४॥

वाचंयमानां च परःशतानां श्रुतार्थिनां पत्तनमुख्यपुर्षु ।
षाण्मासिकीः सप्त जिनागमानां यो
वाचना अर्पितवान् श्रुतज्ञः ॥५॥

निर्युक्तिभाष्यादियुतं कृतान्त-
मांचारमुख्यं गणभृत्प्रणीतम् ।
यः शोधयित्वा स्वयमेव सम्यक्
प्राकाशयत् शासनबद्धरागः ॥६॥

सूर्यात् पुरात् सिद्धगिरेः सुसङ्घं यन्निश्रया जीवनचन्द्र इभ्यः।
चकर्ष षटसप्तनिधीन्दुवर्षे (१९७६)
'रीषट्क'पालं बहुसाधुभाद्यम् ॥७॥

यदाज्ञया पोपटलालश्रेष्ठी श्रीजामपूर्वान् नगरात् सुपुण्यः ।
अकर्षयत् सिद्धगिरेः सुसङ्घं
'षड्री'युतं वेदनवाङ्कगोऽब्दे (१९९४) ॥८॥

सुदीर्घकालस्थितये श्रुतस्य शुभोपदेशं समवाप्य यस्य ।
मनोरमे देवविमानतुल्ये जाते शुभे आगममन्दिरे द्वे ॥९॥

शत्रुञ्जयाद्रेस्तलहट्टिकायां शिलासमुत्कीर्णकृतान्तमेकम् ।
द्वैतीयिकं सुन्दरताम्रपत्रो-त्कीर्णागमं सूरतबन्दिरे च ॥१०॥

अन्यान्यपीत्थं सुकृतानि जैन-बिम्बप्रतिष्ठाप्रमुखानि सूरिः ।
विधाय षट्शून्यनभोऽक्षिवर्षे (२००६)
ध्यानस्थितः सूर्यपुरेऽगमद् धाम् ॥११॥

इति स्तुतः संयमादि-गुणमाणिक्यसागरः ।
सदा जयतु सूरीश आचार्याऽऽनन्दसागरः ॥१२॥

पू० आगमोद्धारक-आचार्यप्रवरश्रीआनन्दसागरसूरीश्वर-

गुण-स्तुतिः ।

प्रवर्त्तमानतीर्थेशं वन्दित्वा ज्ञातनन्दनम् ।
स्तवीमि सूरिराजं सद्-गुरुमानन्दसागरम् ॥१॥

देशे मनोहारिणि गूर्जराख्ये,
श्रीविक्रमाद् भूगुणनन्दचन्द्रे १९३१ ।
वर्षे पुरं कप्पडवञ्जसञ्ज्ञं,
व्यधात् पवित्रं निजजन्मना यः ॥२॥

नेमावणिग्वंशभवोऽभवत् पिता,
श्रीमगनलालेत्यभिधो यदीयः ।
माता सुशीला यमुनाभिधाना,
भ्राता सुधीः श्रीमणिलालनामा ॥३॥

संसारनैर्गुण्यविदौ यदीयौ, वृद्धः पिता ज्येष्ठसहोदरश्च ।
प्रपन्नवन्तौ विनयाभिधान-गुरोः पदाब्जे चरणं जिनोक्तम् ॥४॥

मुन्यब्धिनिध्यब्जसमे (१९४७) गणीनां,
जह्वेरवारांनिधिसद्गुरूणाम् ।
पादारविन्दे ललनादिसङ्गं,
हित्वा व्रतं यः स्व्यकरोद् युवत्वे ॥५॥

यः शब्दतर्कागमशास्त्रवेत्ता, विशुद्धपञ्चाचरणैः पवित्रः ।
आपञ्चमाङ्गं विधिनोढयोगः, सद्देशनाकारिषु चाग्रगण्यः ॥६॥

धैर्येण गाङ्गेयगिरिः सुधांशुः, सौम्येन गीर्वाणगुरुः सुबुद्ध्या ।
परार्थकारित्वगुणेन मेघः, सिन्धुश्च गम्भीरतयाऽभवद् यः ॥७॥

यः तत्त्वप्रश्नोत्तर–जैनगीते, सिद्धप्रभानामकशब्दशास्त्रम् ।
न्यायावतारे द्वयविंशिकायां
वृत्तिं तथाऽन्या ऽयदधात् कृतीश्च ॥८॥

यं वत्सरे वेदहयाङ्कचन्द्रे, (१९७४)
सूर्ये पुरे सूरिपदेन पूज्यम् ।
व्यभूषयत् सङ्घकृतोत्सवेन,
गुणोदधिः श्रीकमलाख्यसूरिः ॥९॥

वाचंयमानां च परःशतानां, श्रुतार्थिनां पत्तनमुख्यपुर्षु ।
षाण्मासिकीः सप्त जिनागमानां
यो वाचनां अर्पितवान् श्रुतज्ञः ॥१०॥

तत्रादिमा संवति वैक्रमीये,
भूम्यश्वनन्देन्दुमिते (१९७१) वितीर्णा ।
सुचारुजैनेन्द्रगृहेऽणहिल्ल–पुरे प्रतीते श्रुतवाचनैका ॥११॥

द्रङ्गे तथा कपडवञ्जसञ्ज्ञे, स्वजन्मना पूततमे द्वितीया ।
अहम्मदावादपुरे तृतीया, सद्वाचना जैनपुरीतिवित्ते ॥१२॥

जिनालयैरागममन्दिराद्यै....र्विभूषिते सूर्यपुरे प्रसिद्धे ।
दत्ते चतुर्थी किल पञ्चमी च,
मनोहरे आगमवाचने द्वे ॥१३॥

षष्ठी च शत्रुञ्जयतीर्थभूमौ, श्रीपादलिप्ताभिधरम्यपूर्याम् ।
दत्ताऽन्तिमा मालवदेशरत्ने, ख्याते पुरे श्रीरतलामसञ्ज्ञे ॥१४॥

अन्यान्यसङ्घाटकसन्मुनीनां, सिद्धान्तबोधस्य विवर्धनाय ।
एवं वितीर्य श्रुतवाचनाली-
मनुग्रहं यो व्यदधन् महान्तम् ॥१५॥

निर्युक्तिभाष्यादियुतं कृतान्त-माचारमुख्यं गणभृत्प्रणीतम् ।
यः शोधयित्वा स्वयमेव सम्यक्,
प्राकाशयत् शासनबद्धरागः ॥१६॥

सूर्यात् पुराद् सिद्धगिरेः सुसङ्घं
यन्निश्रया जीवनचन्द्र इभ्यः !
१९७६
चकर्ष षट्सप्तिनिधीन्दुवर्षे,
'रीपद्रक'पालं बहुसाधुश्राद्धम् ॥१७॥

यदाज्ञया पोपटलालश्रेष्ठी, श्रीजामपूर्वान् नगरात् सुपुण्यः !
अकर्षयत् सिद्धगिरेः सुसङ्घं
'षड्री'युतं वेदनवाङ्कगोऽब्दे (१९९४) ॥१८॥

न्यवारयन् मालवदेशसैला-नेशं दिलीपं नृपतिं प्रबोध्य ।
अजादिहिंसां तदधीनदेशे, घस्नेषु यः पर्युषणादिकेषु ॥१९॥

सुदीर्घकालस्थितये श्रुतस्य, शुभोपदेशं समवाप्य यस्य ।
मनोरमे देवविमानतुल्ये, जाते शुभे आगममन्दिरे द्वे ॥२०॥

शत्रुञ्जयाद्रेस्तलहट्टियां, शिलासमुत्कीर्णकृतान्तमेकम् ।
द्वैतीयिकं सुन्दरताम्रपत्रो-त्कीर्णागमं सूरतबन्दिरे च ॥२१॥

भोपावराख्यं जिनशान्तिनाथ-विभ्राजितं विश्रुतसुप्रभावम् ।
यस्योपदेशादगमत् प्रसिद्धिं,
तीर्थं शुभं मालवमण्डलस्थम् ॥२२॥

अन्यान्यपीत्थं सुकृतानि जैन-बिम्बप्रतिष्ठाप्रमुखानि सूरिः ।
विधाय षट्शून्यनभोऽक्षिवर्षे (२००६),
ध्यानस्थितः सुर्यपुरेऽगमद् द्याम् ॥२३॥

इत्थं स्तुतः श्रुतधरः शुचिसंयमादि-
माणिक्यसिन्धुरनगारगणाऽऽनताङ्घ्रिः ।
जह्वेरसागरगणीश्वरपट्टदीप,
आनन्दसागरगुरुर्जयतात् स सूरिः ॥२४॥

आगमोद्धारकाऽऽचार्यश्री-आनन्दसागरसूरीश्वर—

स्तुत्यष्टकम् ।

जयन्तु सूरिराजास्ते सार्वशासनमण्डनाः ।
आगमोद्धारकाः पूज्या आचार्याऽऽनन्दसागराः ॥१॥
वाचनासुगमत्वार्थं निर्युक्ति-वृत्तिभूषिताः ।
सूत्रङ्गैरागमाः सर्वे यैः संशोध्य प्रकाशिताः ॥२॥
यैः सद्भिर्जैनसाहित्य-सेवाऽर्पिताऽऽत्मजीवनैः ।
प्राच्याः परःशता ग्रन्था विशोध्य प्रकटीकृताः ॥३॥
मुनीनां श्रुतबोधाय पत्तनादिपुरेषु यैः ।
षाण्मासिक्यः शुभा सप्त दत्ता आगमवाचनाः ॥४॥
तलाटिकायां सिद्धाद्रे-स्तथा सूरतबन्दिरे ।
जाते यदुपदेशेन रम्ये आगममन्दिरे ॥५॥
भोपावराऽभिधं तीर्थं मालवाऽवनिमण्डनम् ।
येभ्यः प्रसिद्धिमापन्नं श्रीशान्तिजिनभूपितम् ॥६॥
प्रबुद्धो मालवे येभ्यो दिलीपसिंहभूपतिः ।
प्रावर्त्तयत् स्वग्रामेष्व-मारिं पर्युषणादिषु ॥७॥
यैरादिविंशिकावृत्तिः श्रीपञ्चसूत्रवार्तिकम् ।
तथा कर्मार्थसूत्रं चे-त्यादिग्रन्था विनिर्मिताः ॥८॥
जिनबिम्बप्रतिष्ठादि-कृत्यान्येवं विधाय ये ।
ऋतुखद्वयहस्ताब्दे सूर्यपुरे दिवं गताः ॥९॥

श्रीआगमोद्धारक-गुरुदेव-
विरहवेदनागर्भस्तुत्यष्टकम् ।

येनोद्धृतो निखिलआगम आदरेण,
दत्ता जिनेश्वरवराऽऽगमवाचना च ।
तं भूपमौलिमणिचर्चितपादपद्म-
मानन्दसागरगुरूं प्रणतः स्तुवेऽहम् ॥१॥

ताम्रांङ्कितागमसुमन्दिरमण्डितेऽस्मिन् ,
श्रीसूरते गुरुपदाम्बुजचञ्चरीके ।
शारीरिकीं शिथिलतां समवाप्य धीमान्,
वर्षाणि किञ्चिदुपशान्तमना उवास ॥२॥

तत्रापि लक्षपरतो विरचय्य गाथाः
सज्ज्ञानभक्तिमतुलां नितरां चकार ।
एतादृशं विमलसंयमिनं सुबुद्ध्या,
स्तोतुं मनो भवति कस्य न भव्यदृष्टेः ? ॥३॥

मुक्त्वा समग्रममतां श्रुतपारदृश्वा,
धृत्वा समाधिमतुलां वरध्यानयोग्याम् ।
पद्मासने शुचिमनाः प्रणिधाय देवं
शृण्वन् नमस्कृतिसुघोषमियाय नाकम् ॥४॥

गोपीपुरीयवरनिम्बसमाश्रये स-
च्छ्रीवैक्रमे षडधिके द्विसहस्रवर्षे ।
राधेऽसिते शरतिथौ शनितूर्ययामे,
सूरीश्वरोऽस्तमितवान् जिनशासनार्कः ॥५॥

नव्यां सुवर्णशिखरां शिबिकां वहद्भिः,
श्रीखण्डचन्दनर्चितां प्रविधाय रम्याम् ।
मध्येपुरं ! दहनकर्मकृतं सहस्रै-
राश्चर्यरूममनघैर्गुरुभक्तवृन्दैः ॥६॥

गीतार्थसार्थपरिपूजितपादपद्म !,
कारुण्यसागर ! गुणाकर ! सौम्यदृष्टे !
कस्मै वदामि मम दुःखभरं ? निरीह !
दृष्टिं कृपारसमयीं मधुरां विधेहि ॥७॥

सूरीश ! दुःखकलितान् कलिकालभारा-
क्रान्तान् विहाय सहसा क्व गतोऽसि ? नाथ ! ।
अस्मान् शरण्यरहितान् किमुपेक्षसे त्वं ?
हा हन्त ! हन्त ! शरणं कमनुव्रजामः ? ॥८॥

सिद्धाचले रूचिरआगमचैत्यराजि-
ज्येष्ठाष्टमीसितदिने द्विसहस्रषट्के ।
आनन्दसागरसूरीश्वरपादरेणुः,
सूर्योदयो व्यरचयत् वरबालशिष्यः ॥९॥

आगमोद्धारक-स्तवः ।

प्रणेता—प्राध्यापको हीरालालः
(कार्पाडयेत्युपाह्वः श्रीयुतरसिकदासात्मजः)

जातः कर्पटवाणिज्ये यो वंशे धर्मसंस्कृते ।
अग्रजोऽनुसृतो येन दीक्षावर्त्मनि यौवने ॥१॥
शास्त्राभ्यासः कृतोऽनल्पः स्वयं गुरौ दिवंगते ।
सूर्यपुरेऽत्र यस्याभूत् 'सूरि' पदमहोत्सवः ॥२॥
अददाद् वाचना नैका आगमानां च योऽग्रणीः ।
देशनासु सभां गूढ-प्रश्नोत्तरैररञ्जयत् ॥३॥
निरभिमानिनो यस्य शासनेऽनुपमा रतिः ।
संस्था अस्थापयन्नाना-शास्त्रबोधाय यो यमी ॥४॥
शिलासु ताम्रपत्रेषु चालेखयद् य आगमान् ।
आगमोद्धारकाभिख्या[1] यस्य दिगन्तविस्तृता ॥५॥
जैनगीतादिकान् ग्रन्थान् यो जग्रन्थ गिरात्रिके ।
शाब्दिकस्तार्किकः शास्त्र-संशोधनक्रियोद्यतः ॥६॥
स्थविरत्वेऽपि यस्यासीत् स्मृतिशक्तिर्विकस्वरा ।
समाधिमरणाकाङ्क्षी धीरो व्याधिभरे सुधीः ॥७॥
त्यक्त्वा मोहं शरीरेऽपि निर्वाणमधुनाऽगमत् ।
सार्वशासनहीरं तं स्तुवे आनन्दसागरम् ॥८॥—कुलकम्

(१) अभिख्या = बिरुदम् ।

प्रकीर्णस्तुतयः ।

येोऽदत्तागमवाचनाः सुशमिनां येनोद्धृता आगमा
यश्चारोहितवान् श्रुतान् वरशिला-सत्ताम्रपत्रेषु वै ।
ग्रन्था येन परःशताः विरचिता यस्याऽमलः संयमः
श्रीआनन्दपयोनिधिर्विजयते पूज्यः स सूरीश्वरः ॥१॥

योऽदादागमवाचनाः प्रशमिनां येनोद्धृता आगमा
ज्ञानं यस्य समग्रशास्त्रविषयं चारित्रमत्युज्ज्वलम् ।
यो राजप्रतिबोधकृद् मुनिवरः सद्धर्मदेष्टा सदा
श्री आनन्दपयोनिधिर्विजयते नित्यं स सूरीश्वरः ॥२॥

दत्ता येन शमेशिना मुनिगणायाप्तागमानां श्रुतिः
सच्छास्त्रोद्धृतिकर्मठः स्थितिकृते शैलेषु ताम्रेषु च ।
सिद्धाद्रौ सुरते च चैत्ययुगलेऽध्यारोहयच्चागमान्
सिद्ध्यै स्तान् नृपबोधनो मुनिपतिः सूरीश आनन्दयुक् ॥३॥

आगमोद्धारकर्तारं शैलाणेशप्रबोधकम् ।
ध्यानस्थ-स्वर्गतं नौमि सूरिमानन्दसागरम् ॥४॥

योदादागमवाचनाः शमभृतां सिद्धान्तसत्तत्त्ववित्
सच्छास्त्रोद्धृतिकर्मठः स्थितिकृते शैलेषु ताम्रेषु च ।
सिद्धाद्रौ सुरते च चैत्ययुगलेऽध्यारोहयच्चागमान्
आनन्दाब्धिगुरुं स्तुवे सुविदितं प्रान्ते समाधिस्थितम् ॥५॥

विद्वद्वृन्दमनोज्ञकाव्यततिभिर्यः स्तूयते सर्वदा
भूपेन्द्रप्रतिबोधको गुरुमतिः सिद्धान्तपारङ्गमी ।
व्याख्याने च विचक्षणः शुभगुणैर्विख्यातकीर्तिः सुधी-
रानन्दाब्धिमुनीश्वरं गणपतिं वन्दे महाज्ञानिनम् ॥६॥

परिशिष्ट-२

णमो तित्थस्स

अनन्ततीर्थङ्करगणधरादिसमलङ्कृताय परमपावनाय सकल-
तीर्थसार्वभौमाय तीर्थाधिराजाय श्रीसिद्धगिरिभगवते नमो नमः

श्रीसिद्धाचलतीर्थ की तलहटी में संस्थापित भव्य
श्रीवर्धमान जैन आगममंदिर की

अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव

के निमित्त

श्रीसंघ निमंत्रणपत्रिका

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभस्वामिनं स्तुमः ॥१॥

भव्याः भक्तिभरान्तराः शुचिगिरो धर्मोल्लसद्दीप्तय-
स्त्रैलोक्याङ्गिनिकायपावनकरं सेवध्वमेतं गिरिम् ।
कोटीपञ्चकसंवृताय ददिवान् श्रीपुण्डरीकाय यः
कैवल्यान्वितमोक्षमादिजिनयुग् शश्वच्छ्रियां धारकः ॥२॥

शश्वत्सौख्यनिधानदाननिपुणं शक्रादिसङ्घार्चितं
श्रीमद् गौतममुख्यमुख्यमुनिपैर्दध्वाऽर्पितं मुक्तये ।

श्रीसङ्घाय सदा सदागमवरं ज्ञानादिरत्नाकर-
माळोक्यागममन्दिरे शुचिधियः सन्तु प्रसन्नाः सदा ॥३॥
अर्हन्तो भगवन्त इद्धगुणदाः सिद्धाः सदाचारिण
आचार्या वरपाठकाः श्रुतधरा मोक्षोद्यताः साधवः ।
दृग्ज्ञानाचरणैस्तपोभिरुदिता सेव्येयमाप्तोदिता
शश्वत्सौख्यकरी पदावलिरिह श्रीसिद्धचक्राश्रिता ॥४॥
जिणबिंबपइट्ठं जे करंति तह कारवेंति भत्तीए ।
अणुमन्नंति पइदिणं सव्वे सुहभाइणो हुंति ॥५॥
दव्वं तमेव मन्ने जिणबिंबपइट्ठणाइकज्जेसु ।
जं लग्गई त सहलं दुग्गइजणणं हवइ सेसं ॥६॥
योऽदादागमवाचना प्रशमिनां येनोद्धृता आगमा
ज्ञानं यस्य समग्रशास्त्रविषयं चारित्रमत्युज्ज्वलम् ।
यो राजप्रतिबोधकृद् मुनिवरः सद्धर्मदेष्टा सदा
श्रीआनन्दपयोनिधिर्विजयते नित्यं स सूरीश्वरः ॥७॥

स्वस्ति श्री परमपावन मंगलकारी सर्व तीर्थंकर भगवानों तथा परमतरणतारण जैनागमको नमस्कार करके श्री जिनचैत्य-उपाश्रयादि धर्मस्थानों से बिभूषित महाशुभस्थाने......... देवगुरुभक्ति कारक नमस्कार-महामंत्र स्मारक सर्वज्ञ शासनोपासक, श्रमणोपासक श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य आदि संघसमस्त योग्य श्री पालीताना नगर से श्री वर्धमान जैन आगममंदिर संस्था का सादर प्रणाम स्वीकृत हो ।

यहाँ तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी की शीतल छाया तथा देवगुरुधर्म के प्रभाव से आनंद मंगल है और आप श्री संघ के भी आनंद मंगल की कामना करते हैं। विशेष में सविनय निवेदन है कि हमारे परम पुण्योदय से परमपूज्य आराध्यपाद, आगम-वाचना दाता, जैनागमपारदृष्टा, सकलागमग्रन्थादि अनेक ग्रंथ संदर्भ संशोधक, सिद्धप्रभाव्याकरणादि अनेक ग्रन्थ रचयिता, श्री जैन शासन संरक्षणैकबद्धलक्ष्या आगमोदय समित्यादि अनेक संस्था संस्थापक, शैलानानरेशप्रतिबोधक, आगमोद्धारक, प्रातःस्मरणीय, आचार्यदेव श्रीमद् आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब की अपूर्व आगम भक्ति तथा तीर्थभक्ति किसी के अविदित नहीं है। शासन प्रभावना-मय उपदेशामृत से भावित हुए सुश्रावकवर्ग ने, जिस के कंकड कंकड पर अनन्त सिद्ध गति के प्राप्त हुए ऐसे परम पुनीत **श्री सिद्धा-चल तीर्थाधिराज की तलहटी** में श्री वर्धमान जैन आगममंदिर संस्था स्थापित की है, और उस में उनके उपदेश से ही अभूत-पूर्व ज्ञान–दर्शन–चारित्र के प्रतीक स्वरूप **'श्री सिद्धचक्र गणधर मंदिर'** तथा **'श्री श्रमणसंघ पुस्तक संग्रह'** का निर्माण किया गया है।

परम तारक परम पूज्य आचार्य देव 'हा अणाहा कहं हुंता न हुंतो जो जिणागमो'—यदि जिनेश्वर भगवान् का आगम न होता तो हाय! हम जैसे अनाथों का क्या होता?—इस पद का निरंतर स्मरण करते हुए सकल आगम के संगमरमर की शिलाओं में

उत्कीर्ण करवा कर परमपावन जैनागमों को चिरकाल संरक्षित कर के श्री जैनागमों की अविच्छिन्नता चाहते थे। यह भावना सं. १९९३ में जामनगर के चातुर्मास में अंकुरित हुई और आखिर वे श्री चतुर्विध संघ के साथ यहाँ यात्रार्थ पधारे। सं. १९९४ की बैशाख वदी (उत्तर में जेठ वदी) दशमी के दिन श्री गिरिराज की तलहटी में उनकी भावना के अंकुर स्वरूप खात मुहुर्त हुआ। परम पूज्य आचार्य देव की आगमपरिणत देशना से अत्यल्प समय में ही सकल जैनागमों को संगमरमर की शिला में उत्कीर्ण करनेवालों तथा मुख्य मंदिर, चार दिशाओं के चार मंदिर, परिक्रमा की चालीस देहरियाँ, अरिहंतादि की प्रतिमाएँ तथा मंडल सहित श्री सिद्धचक्र मंदिर, सगणधर तीर्थंकरों के मूर्तिपट्ट तैयार करनेवालों के पुनीत नामों की सूचि बन गई और बहुत ही थोड़े समय में मंदिर, देहरियाँ, सिद्ध चक्र गणधर मंदिरादि सब भव्य प्रकार से बनकर तैयार हो गये हैं।

उपर्युक्त भव्य मंदिरों में—मुख्य मंदिर में शाश्वत चार तीर्थंकर परमात्माओं के चौमुख बिंब तथा श्री सिद्धचक्र गणधर मंदिरमें अरिहंतादि पंचपरमेष्ठि की मूर्तियाँ तथा गणधर-मूर्तियोंवाले पट्टोंमें ऋषभदेवादि चौबीस तीर्थंकर तथा आगमों को पुस्तकारूढ करनेवाले श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के आचार्यों के पट्ट में श्री सुधर्मास्वामीजी की प्रतिमा स्थापित करनी है। उक्त जिनबिंबादि की अंजनशलाका शास्त्रीय विधिविधान से भव्य महोत्सवपूर्वक करवाने का निर्णय किया है।

महामहोत्सव के मंगलकारी महामुहूर्त

माघ सुदी १० रविवार ता. १४–२–४३ जलयात्रा का जलूस।

माघ सुदी ११ सोमवार ता. १५–२–४३ मंडप–स्थापन, मंडप में प्रभु को पधराना, कुंभ स्थापना, दीप स्थापना, जवारारोपणादि।

माघ सुदी १२ मंगलवार ता. १६–२–४३ नंदावर्त, नवग्रह, दशदिक्पाल, अष्ट मंगल, अधिष्ठायकदेवपूजन।

माघ सुदी १३ (प्रथम) बुधवार ता. १७–२–४३ शासनाधिष्ठायक विद्यादेवी तथा इन्द्राद्याह्वान, सिद्धचक्र मंदिर में सिद्धचक्र पूजन, विंशति–स्थानक पूजन।

माघ सुदी १३ (द्वितीय) गुरु ता. १८–२–४३ च्यवन कल्याणक महोत्सव का जलूस।

माघ सुदी १४ शुक्र ता. १९–२–४३ जन्म कल्याणक दिक् कुमारिका महोत्सव, इन्द्रों द्वारा मेरुगिरि पर किया गया जन्मोत्सव आदि।

माघ सुदी १५ शनि ता. २०–२–४३ प्रभुजी का नाम स्थापन, विवाह मंडप, पाणि ग्रहण, राज्याभिषेक, अट्ठारह अभिषेक ध्वजादंडपूजन, कलशपूजन, दीक्षा कल्याणक का जलूस, वार्षिक दान, दीक्षा–महोत्सव।

माघ वदी १ रवि ता. २१–२–४३ शांति विधान, दीक्षा ग्रहण के बाद की अवशिष्ट क्रियाएँ, अधिवासना आदि आदि।

माघ वदी २ सोम ता. २२–२–४३ केवल ज्ञान कल्याणक तथा शुभ लग्न में अंजनशलाका आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरिजी के वरद हस्तों से होगी। केवल ज्ञान का जलूस, समवसरण, मोक्षकल्याणक, बृहदभिषेक।

माघ वदी ३ मंगल, ता. २३–२–४३ अष्टोत्तरी स्नात्र महोत्सव।

माघ वदी ४ बुध, ता. २४–२–४३ चैत्याभिषेक।

माघ वदी ५ गुरु, ता. २५–२–४३ प्रभुजी को गद्दी पर बिराजमान करना तथा भव्य बृहत् शांति–स्नात्र।

माघ वदी ६ शुक्र २६–२–४३ द्वारोदघाटन, सत्रहभेदीपूजा, आदि।

अब आप पूज्य श्री संघ से हमारा विनयपूर्वक नम्र निवेदन है कि आप उपर्युक्त अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव आदि मांगलिक प्रसंगों पर उपस्थित रह कर महोत्सव का लाभ लेते हुए हमारे आनन्द एवं शासनशोभा की अभिवृद्धि कीजिएगा।

यहाँ पधारने से सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयी के कारणभूत परम पावन तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरि के दर्शन पूजन के लाभ के साथ साथ यहाँ बिराजमान तथा यहाँ महोत्सव में पधारनेवाले पूज्य आचार्य महाराजाओं तथा उपाध्यायजी महाराजाओं, पन्यासजी

महाराजाओं तथा मुनिमहाराजाओं तथा साध्वीजी महाराजाओं के दर्शन एवं भक्ति का लाभ भी प्राप्त होगा। अतः आप इस प्रसंग पर अवश्य उपस्थित हों ऐसा सादर अनुरोध है।

भवदीय,

श्री संघचरणोपासक, श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर के ट्रस्टीगण

संघवी नगरसेठ पोपटलाल धारशीभाई (अध्यक्ष)
संघवी सेठ चुनीलाल लक्ष्मीचंदभाई, जामनगर
दोशी अमृतलाल कालीदास वीरजीभाई, जामनगर
झवेरी सेठ जमनादास मोनजीभाई, जामनगर
सेठ लालजीभाई हरजीभाई, जामनगर
ह. मगनभाई रमणिकलाल
सेठ माणेकलाल चुनीलाल जे. पी. अहमदाबाद
झवेरी शांतिचंद छगनभाई सूरत
संघवी सेठ नगीनदास करमचंद, पाटन
सेठ गिरधरलाल छोटालाल अहमदाबाद
सेठ झवेरचंद पन्नाजी, बुहारी

वीर संवत्
२४६९
विक्रम संवत्
१९९९
पौष सुदी ११
रविवार
ता. १७-१-४३
श्री आगममंदिर
संस्था सिद्ध क्षेत्र
पालीताना

णमो तित्थस्स

आसन्नोपकारिसाम्प्रतीयशासनाधिपतिश्रमण-भगवच्छ्री वर्द्धमानस्वामिने नमः।

श्री सूर्यपुर गोपीपुरामध्ये श्रीवर्धमान
जैन ताम्रपत्र आगममंदिर के
प्रतिष्ठा-महोत्सव के निमित्त

श्रीसंघ-निमंत्रणपत्रिका

यो मेरुं समचालयज्जनिमहे क्रीडाक्षणेऽहेठयद्,
वेतालं विदुषं तु पाठनपटुं न्यक्षं समासूत्रयत्।
आश्चर्योदधिमग्नमिद्धममरीभावं निनायोरगं,
यस्तीर्थं प्रणिनाय मोक्षसुखदं वीरः श्रिये वः सदा ॥१॥

आदौ देवाचले यो हरिततिभिरभिस्नापि (क्षालि) तो जन्मकाले
देवैः क्लृप्तश्च वंशो नरपतिपदवीं प्रार्थितां लोकवृन्दैः।
चक्रे देवाधिपादिर्जनपदनयनं योऽकरोल्लोकसाम्ने
वृत्तो जैनेन्द्रभावे शिवपदमगमत्स श्रियेऽस्त्वादिदेवः ॥ २ ॥

आदेयनामधर आर्हतवृन्दपूज्यस्तीर्थानि यस्य च बहुनि जगज्जनेषु।
नागेन्द्रराजरचितप्रवरप्रभावः सोऽस्तु श्रिये भवभृतां भुवि पार्श्वनाथः॥

जिनागमानां जितरागमाना स्तुत्योद्गमानां स्तुतिरप्तमाना।
जीयाद्यथा सिद्धगिरौ च सूर्य-पुरे शिलाताम्रपटे जिनौकसी ॥

अर्हन्तः सुरनाथपूजितपदाः सिद्धाश्च सिद्धिं गताः
आचार्या जिनशासनोन्नतिपराः पाठोद्यता वाचकाः ।
अङ्गानां निपुणाश्च संयमधृतौ पूज्या मुनीनां गणाः
तत्सर्वं विदितं भवेद्धृदि यदि स्यादागमानां मतिः ॥

रम्यैषा गुर्जरत्रा जिनपतिभवनैः साधुभिः सज्जनाद्यैः,
श्राद्धैस्तीर्थादिभक्तैः शुभतरकरुणैः पात्रपोषैकदक्षैः ।
यावत्सा क्रोडभागे धरति गुणगणाधारवेलाकुलं तु
तापी तापापहारप्रगुणमहपदं पत्तनं सूर्यनाम ॥

दत्ता येन शमेशिना मुनिगणायाऽऽगमानां श्रुतिः,
सिद्धाद्रौ सुरते च चैत्ययुगलेऽध्यारोहयच्चागमान् ।
सच्छास्त्रोद्धृतिकर्मठः स्थितिकृते शैलेषु ताम्रेषु च ।
सिद्धयै स्तान्नृपबोधनो मुनिपतिः सूरीश आनन्दयुक् ॥

स्वस्ति श्री परमपावन मंगलकारी सुरासुरेन्द्रपूजित सर्व तीर्थंकर भगवानों को तथा परम सारभूत जैनागम को नमस्कार करके श्री जिनचैत्य उपाश्रयादि अनेक धर्मस्थान विभूषित महाशुभ स्थाने........ ......देवगुरु भक्तिकारक नमस्कार महामंत्र स्मारक, सर्वज्ञ शासन रसिक श्रमणोपासक श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य......आदि संघ समस्त योग्य श्री सूर्यपुर (सूरत) से श्री आगमोद्धारक संस्था का सादर प्रणाम स्वीकृत हो ।

अत्र श्री देवगुरु धर्म के प्रसाद से आनंद मंगल है, आप श्री संघ के भी आनंद मंगल की कामना करते हैं।

विशेष में सविनय निवेदन है कि हमारे श्री संघ के परम पुण्योदय से प. पू. आराध्यपाद गणधर–श्रुत–स्थविर गुम्फित आगम सिद्धान्तादि अनेक अमुद्रित ग्रंथ संशोधक, श्री जैन शासन साम्राज्य संरक्षणैक बद्धलक्ष्य, श्री तीर्थाधिराज सिद्धक्षेत्र में श्री वर्धमान जैनागम मंदिर संस्थापक, आगमोदय समिति, दे० ला० पु० फंड इत्यादि अनेक सुधर्म संस्थाओं के संस्थापक, प्रथम शिलोत्कीर्ण–ताम्रपत्रारूढ आगम–प्रारंभक, वर्तमान श्रुत के ज्ञाता, आगम दिवाकर, आगमोद्धारक, प्रातः स्मरणीय आचार्यदेवेश **श्रीमद् आनन्दसागर सुरीश्वरजी महाराज** की अपूर्व आगम साहित्य सेवा तथा वीतराग प्रवचन तीर्थ भक्ति जनेतरों में सुविख्यात है। जिनके अमृतमय उपदेश सींचन से सकल संघ निरंतर पल्लवित होता ही जाता है, उन पूज्यश्री का श्री संघ पर निरुपम उपकार है। उनके उपदेश से और हम पर उपकार की स्मृतिरूप में **श्री आगमोद्धारक संस्था** स्थापित हुई है। तथा श्री संघ से प्राप्त आर्थिक आदि विविध अचिंतित सहयोग से अत्यल्प समय में ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रतीक रूप एक गगनचुम्बी, तीन मंजिलवाला **श्री वर्धमान–जैन ताम्रपत्र आगम-मन्दिर** निमित हुआ है जिसमें एक भव्य भूमिगर्भ भाग, बीच में विशाल मूल मंदिर और उसके ऊपर एक मंजिल है।

भूमिगर्भ भाग में मूलनायक जी पार्श्वनाथ भगवान् की सहस्रफनों वाली श्याम प्रतिमाजी विराजमान होंगी। वहीं पर रंग मंडप में दोनों ओर संग मरमर के सिद्धचक्र मंडल विराजमान किये जाएँगे। मूल गर्भगृह में चरम तीर्थपति श्री महावीर प्रभु की भव्याकृति मूर्ति विराजमान की जाएगी। सर्वोच्च मंजिल पर मूलनायकजी श्री आदीश्वर भगवान् की मूर्ति विराजमान होगी। रंगमंडपों में समवसरण तथा गोखों में भगवान के बिंब विराजमान किये जाएँगे। दीवारों पर पैंतालीसों आगमों के ताम्रपत्र सुन्दर चेनल में फिट करके चिपकाये जाएगे। संवत् १९९९ के वर्ष में अनन्त तीर्थंकरों, गणधरों आदि से परम पवित्र हुए सिद्धक्षेत्र में जिनकी अंजनशलाका हुई उनमें से १२० जिन-बिंब लाकर हमने अलग मकान में बिराजमान किये हैं; उन जिन-बिंबोंका शास्त्रोक्त विधि-विधान के साथ भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव करनेका निर्णय किया है।

: महा महोत्सव के मंगलकारी महामुहूर्त :

पौष वदी १० बुधवार ता. ४-२-४८ सुबह कुंभ स्थापना, तथा प्रभुजीका प्रवेश, दीपस्थापना और जवारा स्थापना।

पौष वदी ११ गुरुवार ता. ५-२-४८ जलयात्रा विधि।

पौष वदी १२ शुक्रवार ता. ६-२-४८ नवाणु प्रकारी पूजा।

पौष वदी १२ (द्वितीय) शनिवार ता. ७-२-४८ ग्रहपूजन, दशदिक्पाल। पूजन, अष्ट मंगल पूजन तथा नन्दावर्त पूजन।

पौष वदी १३ सोमवार ता. ८–२–४८ अट्ठारह अभिषेक।

पौष वदी १४ सोमवार ता. ९–२–४८ पंचकल्याणक पूजा।

पौष वदी अमावस्या मंगलवार ता. १०–२–४८ पैंतालीस आगम–पूजा।

माघ सुदी १ बुधवार ता. ११–२–४८ ध्वजादंड पूजन, कलश पूजन, तथा यक्ष–यक्षिणी पूजन।

माघ सुदी २ गुरुवार ता. १२–२–४८ प्रतिष्ठा, तथा पीठ पूजन।

माघ सुदी ३ शुक्रवार ता. १३–२–४८ प्रतिष्ठा–गद्दी पर प्रभुजी को बिराजमान किया जाएगा तथा बृहत्स्नात्र, रातको वृष्टि तथा विसर्जन।

माघ सुदी ४ शनिवार ता. १४–२–४८ उद्‌घाटन।

आप श्री संघ की सेवा में हमारा नम्र निवेदन है कि आप इस परम पवित्र प्रतिष्ठा महोत्सव आदि के मांगलिक प्रसंगों पर उपस्थित रह कर लाभ लेते हुए हमारे श्री संघ के आनन्द में एवं शासनकी शोभा के कार्यों में अभिवृद्धि कीजिएगा।

यहाँ पधारने से सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयी के कारणभूत स्थावर तीर्थरूप जिनमंदिर के दर्शन तथा जंगम तीर्थरूप आचार्य भगवानों

तथा अन्य मुनिवरों, पू० श्री साध्वी महाराजादि के दर्शन और भक्ति का लाभ प्राप्त होगा। अतः ऐसे महापुण्योदय से किसी समय प्राप्त होनेवाले प्रसंग पर उपस्थित रहने की सादर बिनती है।

वीर संवत्
२४७४
विक्रम संवत्
२००४
पौष सुदी ६
शनिवार
ता. १७-१-४८
श्री आगमोद्धारक
संस्था
गोपीपुरा, सूरत

भवदीय
संघचरणकमलोपासक
मोतीचंद गुलाबचंद झवेरी
जैकिशनदास लल्लूभाई बखारिया
रायचंद गुलाबचंद अच्छारीवाला
अमरचंद मूलचंद झवेरी
ठाकोरभाई दयाचंद मलजी
झवेरचंद पन्नाजी बुहारीवाला
मोतीचंद कस्तूरचंद चोकसी
पानाचंद साकेरचंद मद्रासी
शांतिचंद छगनभाई झवेरी

परिशिष्ट-३

पूज्यपाद आगमोद्धारकश्रीजी के चातुर्मासों तथा विशिष्ट प्रसंगो की रूपरेखा

वि सं १९४७ में सौराष्ट्र के लिंबडी गाँव में पूज्यवर्य श्री झवेरसागरजी महाराजश्री के वरद हस्तों से दीक्षा और वहीं चातुर्मास ।

वि. सं. १९४८ पूज्य गुरुदेवका स्वर्गारोहण और अहमदाबाद में चातुर्मास ।

वि. सं. १९४९ उदयपुर (मेवाड़) में चातुर्मास-श्री आलमचंदजी के पास विद्याध्ययन, शेषकाल में ग्राम्यप्रदेश में विहार।

वि. सं. १९५० पाली में चातुर्मास और ठाणांग सूत्रका सभा में वाचन। स्थानकवासियों का पराभव, अमूर्तिपूजकों के आक्रमण से मूर्तिपूजकों की रक्षा ।

वि. सं. १९५१ सोजत (राजस्थान) में चातुर्मास, अपूव धर्मजागृति, धर्म के बीज सुदृढ बनाये ।

वि. सं. १९५२ पेटलाद में मुनिराज जीवविजयजी महाराज (पूर्वावस्था में पिताजी) की सेवा और उनका स्वर्गारोहण। संवत्सरी महापर्व की शास्त्रीय परंपरा के आधार पर संघसहित आराधना, तपस्वियों को सेठ मनसुखभाई भगुभाई की ओर से सुवर्ण की अंगूठी की प्रभावना ।

वि. सं. १९५३ छाणी गाँव में चातुर्मास, न्याय शास्त्रोंका अध्ययन, सैद्धान्तिक अध्ययन ।

वि. सं. १९५४ पार्श्वचन्द्र गच्छ तथा जैनेतर आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ, कलोल में स्थानकवासियों के साथ शास्त्रार्थ, विजयोल्लास-पूर्वक खंभात में चातुर्मास ।

वि. सं. १९५५ साणंद में चातुर्मास और प्रभावना ।

वि. सं. १९५६ अहमदाबाद में चातुर्मास ।

वि. सं. १९५७ पुनः अहमदाबाद में चातुर्मास, देशनाओं (उपदेशों)का प्रचार, व्याख्यान में लोगोंकी भीड़, बहुतों का धर्म-मार्ग पर प्रयाण ।

वि. सं. १९५८ अहमदाबाद में चातुर्मास । पाटम का भीषण दुष्काल । पूज्यश्री के उपदेश से 'दुष्काल राहत निधि' में अपूर्व धनवर्षा ।

वि. सं. १९५९ भावनगर में चातुर्मास, अनेक आत्माओं को देश-विरति आदि में लगाया ।

वि. सं. १९६० अहमदाबाद में योगोद्वहन की क्रियाओंके साथ शास्त्रीय विधिपूर्वक गणीपद और पंन्यासपद की प्राप्ति । वहीं चातुर्मास तथा साहित्य-सेवा अथवा श्रुत-भक्ति का विशिष्ट प्रारंभ ।

वि. सं. १९६१ पेथापुर में प्रान्तीय परिषद् में ओजस्वी व्याख्यान, और कपडवंज में चातुर्मास । व्याख्यान के कारण अनेक आत्माओं में चारित्र की भावना जगी ।

वि. सं. १९६२ भावनगर में चातुर्मास ।

वि. सं. १९६३ सूरत में अपूर्व चातुर्मास, धर्मदेशना में अपूर्व जागृति, भक्ति और भावना की बाढ–उसके परिणाम स्वरूप—

वि. सं. १९६४ सूरत में भव्य नगर–यात्रा—जिन मंदिरों में चतुर्विध संघ के साथ यात्रा। सेठ श्री देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फंड की स्थापना । शिखरजी पर्वत की पवित्रता के लिए आन्दोलन, सम्पूर्ण शिखरजी पहाड़ को खरीदना । बंबई लालबाग में चिरस्मरणीय चातुर्मास ।

वि. सं १९६५ बंबई से झवेरी अभयचंद स्वरूपचंद की ओर से अंतरिक्षजी तीर्थका छह 'री' पालते हुए संघ। अंतरिक्षजी में दिगम्बरों के दंगाल पर विजय, न्यायालय ने पूज्य श्री की निर्दोषिता घोषित की। यूरोपीय न्यायाधीश भी पूज्य श्री के भक्त बने। येवला (महाराष्ट्र) में चातुर्मास और उपधान।

वि. सं. १९६६ सूरत में चातुर्मास, उपधान तप की आराधना अपूर्व जागृति ।

वि. सं. १९६७ सूरत में चातुर्मास ।

वि. सं. १९६८ सूरत में 'जैन तत्त्व बोध पाठशाला' की स्थापना। खंभात में चातुर्मास।

वि. सं. १९६९ छाणी में चातुर्मास। व्याख्यान के द्वारा अनेक आत्माओं की भावना संयम मार्ग की ओर।

वि. सं. १९७० पाटन में चातुर्मास, दुष्काल राहत में पूज्य श्री के उपदेश के कारण दानवीरों द्वारा बिपुल दान।

वि. सं. १९७१ श्री भीलडियाजी तीर्थका छह 'री' पालते हुए संघ। वहाँ से भोयणीजी तीर्थ की स्पर्शना, वहाँ पर आगमों के मुद्रणार्थ माघ सुदी १० को समिति की स्थापना। आगम सेवा का प्रारंभ—पूर्व की आगम-वाचनाओं की स्मृति करा दे ऐसी आगमवाचना नंबर १ (प्रथम) पाटन में और वहीं चातुर्मास।

वि. सं. १९७२ कपडवंज में आगमवाचना नं २, अहमदाबाद में चातुर्मास और आगमवाचना नं ३।

वि. सं. १९७३ अहमदाबाद में 'श्री राजनगर जैन धार्मिक हरिफाई परीक्षा' नामक संस्था की स्थापना। सूरत में दो आगम-वाचनाएँ-(नं ४ और ५) तथा चातुर्मास।

वि. सं. १९७४ सूरत संघ में कई वर्षों से चले आते हुए वैमनस्य के बीजों का उच्छेदन, संघ में पूर्ण एकता। अपूर्व उत्साहके

साथ आचार्य पद–प्रदाम। बंबई म चातुर्मास। अपने उपदेशों द्वारा दुष्काल राहत निधि को धन से छलका देना।

वि. सं. १९७५ आचार्य पद पर आरूढ होने के बाद का सूरत में प्रथम चातुर्मास। श्री जैनानंद पुस्तकालय की स्थापना, उपधान तप, चार मुनिवरोंको गणीपद प्रदान।

वि. सं. १९७६ पूज्यश्री के उपदेश से माघ वदी (शास्त्रीय फाल्गुन वदी) ८ को पूज्यश्री के नेतृत्व में जीवनचंद नवलचंद झवेरी की ओर से सूरत से सिद्धगिरिका छह 'री' पालते संघ। पालीताना म चातुर्मास और आगमवाचना नं ६ तथा उपधान।

वि. सं. १९७७ रतलाम में आगमवाचना नं ७; मालवदेश में विहरण, शैलाना नरेश को प्रतिबोध। शैलाना में चातुर्मास, राज्य में अमारि प्रतह की घोषणा।

वि. सि. १९७८ रतलाम में चातुर्मास, जिन मंदिर आदि धार्मिक संस्थाओं का कारोबार सुचारु रूप से चलाने के लिए 'सेठ ऋषभदेवजी केशरीमलजी' की स्थापना। उपधान तप की आराधना।

वि. सं. १९७९ भोपावर तीर्थका उद्धार, मांडवगढ तीर्थका स्टेट (रियासत) के साथ समाधान, पंचेड तथा सेमलिया नगर के

ठाकुर को प्रतिबोध । त्रिस्तुतिकों के साथ शास्त्रार्थ और विजय । रतलाम में चातुर्मास ।

वि. सं. १९८० बंग देशकी ओर विहार । कलकत्ते में चातुर्मास, उपाश्रय, ज्ञान,—मंदिर, हिन्दी साहित्य प्रकाशन आदि कार्यों के लिए उपदेश द्वारा विशाल निधि ।

वि. सं. १९८१ पवित्र कल्याणक भूमियों की स्पर्शना, अजीमगज में चातुर्मास । अपूर्व शासन प्रभावना, बाबू परिवार में धर्म जागृति, जैन हिन्दी साहित्य के लाभार्थ फंड ।

वि. सं. १९८२ सादडी में चातुर्मास, पोरवाल संघका समाधान । शेषकाल में दिगंबरों तथा तेरापंथियों से शास्त्रार्थ और उन पर विजय । उपधान तप की आराधना ।

वि. सं. १९८३ दिगंबरों के उत्पात के बीच श्री केशरीयाजी तीर्थ में ध्वजदंड आरोपण, प्रतिष्ठा । उदयपुर में चातुर्मास । धर्म जागृति के लिए 'श्री जैनामृत समिति' नामक संस्था की स्थापना ।

वि. सं. १९८४ श्री तारंगाजी तीर्थ में उद्यान में स्थित देवकुलिका में माघ वदी (शास्त्रीय–फाल्गुन वदी) ५ को श्री अजितनाथ भगवानकी पादुका की प्रतिष्ठा । अहमदाबाद में चातुर्मास । सेठ माणिकलाल मनसुख भाई की ओर से अपूर्व रीति से

ओली की आराधना, पैंतालीस आगमों के महातप की आराधना। श्रावकों में धर्म भावना एवं विरति भावना जागृत और स्थिर हो, इस हेतु से 'देशविरति धर्म आराधक समाज' नामक संस्थाकी स्थापना।

वि. सं. १९८५ पूज्य श्री के वरद करकमलों से उद्यापन महोत्सव एवं योगोद्वहन करवाकर मुनिराज श्री माणिक्य सागरजी महाराज को गणीपद, पंन्यास पद तथा भोयणी तीर्थ में उपाध्याय पद अर्पण। शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा-रक्षा के लिए लाखों रुपयों का फंड। शत्रुंजय पर्वत की तलहटी में नवपदजी की ओलीका विशाल सामूहिक आराधन। जामनगर में चातुर्मास। अनेक तपों की आराधना।

वि. सं. १९८६ पूज्यश्री की देखरेख में अनेक आत्माओं ने सूरत में सामूहिक रूप से नवपद की महा आराधना की। श्री रत्नसागरजी जैन विद्याशाला का स्थायी फंड, तथा सेठ नगीनभाई मंछुभाई जैन साहित्योद्धारक फंड' नामक संस्थाकी स्थापना। 'नवपद आराधक समाज' 'दि यंगमेन्स जैन सोसायटी' और 'देशविरति धर्म आराधक समाज' इन तीनों संस्थाओं का विशाल सम्मेलन। खंभात में चातुर्मास।

वि. सं. १९८७ पूज्यश्री के उपदेश और मार्गदर्शन से अहमदाबाद में विशाल 'जैन साहित्य प्रदर्शन'। अहमदाबाद में चातुर्मास।

वि. सं. १९८८ बंबई में चातुर्मास, धर्म के प्रचार और ज्ञानार्थ 'सिद्ध-चक्र साहित्य प्रचारक समिति' नामक संस्था की स्थापना। पुण्यात्माओं द्वारा तप की आराधना कराई।

वि. सं. १९८९ सूरत में चातुर्मास, शास्त्रीय परंपरानुसार संवत्सरी की सकल संघ से आराधना करवाई। आराधक आत्माओं से उपधान तप की आराधना करवाई।

वि. सं. १९९० अहमदाबाद में जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ के मुनि सम्मेलन को अपूर्व कार्यवाही द्वारा सफल बनाया। बडोदा राज्य द्वारा बनाये गये 'बाल संन्यास–दीक्षा–प्रतिबंधक' नामक अन्यायी कानूनका मुँहतोड मुकाबला। मेहसाना में चातुर्मास। ब्राउन द्वारा आगमधर की प्रशंसा।

वि. सं. १९९१ जामनगर में सेठ पोपटलाल धारशीभाई के द्वारा भव्य उद्यापन महोत्सव और देशविरति आराधक समाजका अधिवेशन। पालीताना में चातुर्मास। आराधकों को उपधान तप की आराधना कराई।

वि. सं. १९९२ पालीताना में वैशाख सुदी ४ के दिन उपाध्याय श्री माणिक्य सागरजी गणी आदि चार सुयोग्य मुनिवरों को आचार्य पद प्रदान। उसी रोज आचार्य–पदारूढ हुए आचार्यदेव श्री माणिक्यसागर सूरीश्वरजी की स्वपट्ट पर स्थापना की। जामनगर में श्री लक्ष्मी आश्रम तथा श्री जैनानंद ज्ञान मंदिर की स्थापना। जामनगर में चातुर्मास। श्री संघ को शास्त्रीय परंपरानुसार संवत्सरी पर्वका आराधन कराया।

वि. सं. १९९३ जामनगर में 'देव बाग' उपाश्रय का निर्माण। सेठ चुनीलाल लक्ष्मीचंदभाई के द्वारा भव्य उद्यापन और चातुर्मास, आयंबिल शाला एवं भोजनशाला की स्थापना। शास्त्रीय परंपरा के अनुसार श्री संघ को संवत्सरी पर्व की आराधना करवाई।

वि. सं. १९९४ पूज्यश्री के उपदेश से संघवी पोपटलाल धारशीभाई तथा चुनीलाल लक्ष्मीचंदभाई की ओर से श्री शत्रुंजय तथा गिरनारजी आदि तीर्थो का छह 'री' पालते (पैदल) संघ। श्री सिद्धगिरिराज की पवित्र तराई में 'श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर' का प्रारंभ हुआ, और खात मुहुर्त प्रसंग पर प्रथम रु. २५००० देकर सूरत निवासी छगनभाई फूलचंद के सुपुत्र शांतिचंद झवेरी ने १७,००० का मंदिर और १०,००० का आगम लिखाया, संगमरमर की चट्टानों पर आगम खुदवाने का प्रारंभ, हुआ। पालीताना में चातुर्मास। उपधान तप की भव्य आराधना कराई।

वि. सं. १९९५ पूज्यश्री के उपदेश से श्राद्धवर्य श्री मोहनलाल छोटालालने अहमदाबाद में पूज्य श्री की देखरेख में भव्य स्मरणीय उद्यापन करवाया अहमदाबाद में चातुर्मास, पालीताना में 'श्रमण संघ पुस्तक संग्रह' नामक ज्ञान-प्याऊ की स्थापना।

वि. सं. १९९६ अहमदाबाद में गणी श्री क्षमासागरजी महाराज को पंन्यास पद अर्पण। पालीताना में चातुर्मास। उपधान तप की आराधना कराई।

वि. सं. पालीताना में पंन्यासजी श्री क्षमासागरजी गणीको उपाध्याय पद तथा चन्द्रसागरजी को गणी और पंन्यास पद प्रदान।

सिद्धचक्र गणधर मंदिरका आरंभ। पालीताना में चातुर्मास। उपधान तप की आराधना कराई।

वि. सं. १९९८ पालीताना में चातुर्मास, आगम मंदिर के कार्य एवं आगमों के कार्य में अधिक वेग। उपधान तप की आराधना कराई।

वि. सं. १९९९ *पालीताना में भव्यातिभव्य अंजनशलाका–प्रतिष्ठा उत्सव*, द्विसहस्राधिक जिनबिंबों की माघ वदी (शास्त्रीय–फाल्गुन वदी) २ के दिन अंजनशलाका। माघ वदी ५ के दिन श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर में जिनबिंबों तथा गणधर–बिंबों की मंगलमय प्रतिष्ठा। कपड़वंज में नवपदजी की ओली की सामूहिक आराधना। देशविरति धर्म आराधक समाज का पूज्यश्री की देखरेख में सम्मेलन हुआ। कपड़वंज में चातुर्मास, मुनि हेमसागरजी को गणी और पंन्यास पद प्रदान।

वि. सं. २००० सूरत में सामूहिक शहर जिन मंदिर यात्रा। बंबई में चातुर्मास। जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्स के जैन धर्म विघातक उपद्रवी प्रस्तावों का सख्त मुकाबला। पुण्यात्माओं में धर्म–जागृति।

वि. सं. २००१ सूरत में चातुर्मास और धर्म–जागृति।

वि. सं. २००२ सूरत में श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी पाठशाला की स्थापना। श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्र आगम मंदिर के कार्य के लिए 'श्री आगमोद्धारक संस्था' की स्थापना। बाजीपुरा गाँव में प्रतिष्ठा और सूरत में चातुर्मास।

वि. सं. २००३ श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्र आगम मंदिर का प्रारंभ । सूरत में चातुर्मास । भारत–पाकिस्तान विभाजन के समय आपत्ति में पड़े हुए श्रावकों के उत्थान के लिए फंड ।

वि. सं. २००४ श्री वर्धमान जैन ताम्रपत्र आगममंदिर में माघ सुदी ३ के दिन १२० तीर्थंकर–प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा । सूरत में चातुर्मास । श्री संघ को शास्त्रीय परंपरानुसार संवत्सरी महापर्व का आराधन कराया ।

वि. सं. २००५ क्षीण जंघाबल के कारण सूरत में स्थिरता, चातुर्मास। ज्ञानध्यान में विशेष जागरूकता । श्री जैन पुस्तक प्रचारक संस्था की स्थापना ।

वि. सं. २००६ सूरत में आराधना । 'आराधना मार्ग' नामक ग्रन्थ–अन्तिम ग्रन्थ–की अपूर्व रचना । वैशाख शुक्ला पंचमी की रात्रि से अर्ध पद्मासन मुद्रा में सम्पूर्ण मौन के साथ कायोत्सर्ग का प्रारंभ । वैशाख वदी (शास्त्रीय जेठ वदी) पंचमी शनिवार तृतीय प्रहर की चार घड़ी के बाद अमृत चौघड़िये में पचहत्तर वर्ष की अवस्था में उनसठ वर्ष का दीक्षा–पर्याय पालकर अपने पट्टधर शान्तमूर्ति आचार्यदेवश्री माणिक्यसागर सूरीश्वरजी महाराज आदि चतुर्विध संघ के मुख से श्री नमस्कार महामंत्र का श्रवण करते हुए स्वर्गारोहण ।

चातुर्मास-सूचि

१	१९४७	लींबडी
२	१९४९	उदयपुर
३	१९८३	उदयपुर
४	१९५०	पाली
५	१९५१	सोजत
६	१९५२	पेटलाद
७	१९५३	छाणी
८	१९६९	छाणी
९	१९५४	खंभात
१०	१९६८	खंभात
११	१९८६	खंभात
१२	१९५५	साणंद
१३	१९५९	भावनगर
१४	१९६२	भावनगर
१५	१९६५	येवला
१६	१९७७	शैलाना
१७	१९७८	रतलाम
१८	१९७९	रतलाम
१९	१९८०	कलकत्ता
२०	१९८१	अजीमगंज
२१	१९८२	सादडी
२२	१९८५	जामनगर
२३	१९९२	जामनगर
२४	११९३	जामनगर
२५	१९६१	कपडवंज
२६	१९९१	कपडवंज
२७	१९७०	पाटन
२८	१९७१	पाटन
२९	१९४८	अहमदाबाद
३०	१९५६	अहमदाबाद
३१	१९५७	अहमदाबाद
३२	१९५८	अहमदाबाद
३३	१९६०	अहमदाबाद
३४	१९७२	अहमदाबाद
३५	१९८४	अहमदाबाद
३६	१९८७	अहमदाबाद
३७	१९९५	अहमदाबाद
३८	१९९०	मेहसाना

३९	१९६४	बम्बई	४९	१९६३	सूरत
४०	१९७४	बम्बई	५०	१९६६	सूरत
४१	१९८८	बम्बई	५१	१९६७	सूरत
४२	२०००	बम्बई	५२	१९७३	सूरत
४३	१९७६	पालीताना	५३	१९७५	सूरत
४४	१९९१	पालीताना	५४	१९८९	सूरत
४५	१९९४	पालीताना	५५	२००१	सूरत
४६	१९९६	पालीताना	५६	२००२	सूरत
४७	१९९७	पालीताना	५७	२००३	सूरत
४८	१९९८	पालीताना	५८	२००४	सूरत
			५९	२००५	सूरत

✸

(अ) पूज्य श्री के पतित पावन तत्त्वावधान में सूत्र के पठन पाठन की शास्त्रीय योग्यता की प्राप्ति के लिए कराये गये उपधान-तप :—

स्थान	संवत्	स्थान	संवत्
१ येवला	१९६५	८ बंबई	१९८८
२ सूरत	१९६६	९ सूरत	१९८९
३ सूरत	१९७५	१० पालीताना	१९९१
४ सिद्धगिरिजी	१९७६	११ पालीताना	१९९४
५ रतलाम	१९७८	१२ पालीताना	१९९६
६ रतलाम	१९७९	१३ पालीताना	१९९७
७ सादडी	१९८२	१४ पालीताना	१९९८

(आ) पूज्य श्री के उपदेश से स्थापित विशिष्ट संस्थाए, ज्ञानमंदिर, उपाश्रय आदि :—

विक्रम संवत् १९६४	सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड	सूरत
वि. सं. १९६८	श्री जैन तत्वबोध पाठशाला	सूरत
वि. सं. १९७१	श्री आगमोदय समिति	भोयणी
वि. सं. १९७३	श्री राजनगर जैन श्वे. मू. धार्मिक इनामी परीक्षा	अहमदाबाद
वि. सं. १९७५	श्री जैनानन्द पुस्तकालय	सूरत
वि. सं. १९७७	श्री ऋषभदेव केशरीमलजी की पेढ़ी	रतलाम
वि. सं. १९७८	शैलाना (मालवा) जैन उपाश्रय	शैलाना
वि. सं. १९८०	श्री जैन श्वे. मू. तपगच्छ उपाश्रय. ९६, केनींग स्ट्रीट,	कलकत्ता
वि. सं. १९८०	श्री विनयमणि जीवन ज्ञान मंदिर	कलकत्ता
वि. सं. १९८१	श्री हिन्दी जैन साहित्य प्रचारक फंड	अजीमगंज
वि. सं. १९८३	श्री जैनामृत समिति	उदयपुर
वि. सं. १९८४	श्री नवपद आराधक समाज	अहमदाबाद
वि. सं. १९८५	श्री वर्धमान तप आयंबिल-भवन	जामनगर
वि. सं. १९८६	श्री नगीनभाई मंछुभाई जैन साहित्योद्धारक फंड	सूरत
वि. सं, १९८८	श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति	बंबई
वि. सं. १९९२	श्री जैन आनन्द–ज्ञानमन्दिर	जामनगर
वि. सं. २००२	श्री आगमोद्धारक–संस्था	सूरत
वि. सं. २००२	श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी पाठशाला	सूरत
वि. सं. २००५	श्री जैन पुस्तक प्रचारक संस्था	सूरत

आगमोद्धारक - रचित कृतिसंदोह

१ अचित्ताहारक द्वात्रिंशिका
२ अधिगम-सम्यक्त्वैकादशी
३ अध्यक्षोपयोगिता-षोडशिका
४ अनंतार्थाष्टक
५ अनानुगामिकावधिविचार
६ अनुकरण संचय याने सदनुकरण
७ अनुक्रम-पंचदशिका
८ अनेकांतवाद विचार
९ अपूर्वचतुर्विंशिका याने जिनवर स्तुति
१० अभव्यनवक याने भव्याभव्यप्रश्न
११ अमृतसागर-चरित्र
१२ अमृतसागर-तीर्थयात्रा
१३ अमृतसागर-स्तव
१४ अमृतसागर-स्तुति
१५ अर्हच्छतक
१६ अष्टकर्बिंदु
१७ अंगपुरुष-पंचविंशतिका
१८ आगममंदिर-चतुर्विंशतिका
१९ आगममहिमा
२० आगममहिमा स्तव
२१ आगम समिति स्थापना स्तव
२२ आगम सुगमतास्तव
२३ आगमाधिकार षट्त्रिंशिका
२४ आगमार्थ प्राधान्य स्तव
२५ आचेलक्य
२६ अभिग्रहिकानाभोग-मिथ्यात्व याने मिथ्यात्व विचार
२७ आप्तस्तुतिवृत्ति अपूर्ण
२८ आराधना मार्ग
२९ आर्यत्रिभेदी विचार याने आर्यानार्य विचार
३० आर्यरक्षित याने अनुयोग-पृथक्त्व
३१ ईडरनगर-शान्तिनाथस्तव
३२ ईर्या-द्वापंचाशिका
३३ ईर्यापथ परिशिष्ट
३४ ईर्यापथिका निर्णय
३५ उत्सर्पणार्थ विचार
३६ उत्सूत्र भाषण फल याने उत्सूत्र भाषण विमर्श

३७ उद्यम-पंचदशिका
३८ उद्यापन विचार
३९ उपदेश
४० उपकार-द्वादशिका याने उपकार विचार
४१ उपदेश-नवशति याने यतिधर्मोपदेश
४२ कर्मग्रंथसूत्राणि
४३ कर्मफल विचार
४४ कल्पसूत्र विवेचन (सामानिक तक)
४५ केवलीभुक्ति (अपूर्ण)
४६ केशरियाजी वर्णन
४७ (धूलेवामंडन) केशरियाजी-वर्णन
४८ केशरियाजी स्तुति-पंचदशिका
४९ क्रियाद्वात्रिंशिका
५० क्रियास्थान वर्णन
५१ क्षमा-विंशतिका
५२ क्षायिकभव-संख्या विचार
५३ क्षायोपशमिक भावविचार याने क्षायोपशमिक भाव
५४ गणधरसार्धशतक दर्पण
५५ गर्भापहार सिद्धिषोडशिका
५६ गर्ह्यकृत्य विचार
५७ गुणग्रहणशतक
५८ गुरुमाहात्म्य
५९ चान्दनिकी षोडशिका
६० चैत्यद्रव्योत्सर्पण (अपूर्ण)
६१ जमालिमत खंडन
६२ जयसोम सिक्खा (अपूर्ण)
६३ जिनमहिमा
६४ जिनस्तुति
६५ जिनस्तुति
६६ जिनस्तुति
६७ जीवसिद्धि याने पापभीति
६८ जैन-गीता
६९ जैनपुस्तकभांडागार स्तव
७० जैनपूर्णत्वाष्टदशिका
७१ जैनेन्द्रस्तुति
७२ ज्ञातपर्युषणा
७३ ज्ञानपद्यावली
७४ ज्ञानपंचविंशतिका
७५ ज्ञानभेद-षोडशिका
७६ तत्त्वार्थ परिशिष्ट
७७ तात्त्विक-प्रश्नोत्तराणि

७८ तारंगाजितनाथस्तव
७९ तिथिदर्पण
८० तिथिपट्टक
८१ तीर्थमाला (अपूर्ण)
८२ त्रयीतत्व द्वादशिका
८३ त्रिपदी–पंचषष्टिका
८४ दयाविमर्श
८५ दानादिधर्म विचार याने दानधर्म
८६ दिगंबर-मतनिराश
८७ दुष्प्रतिकार विचार
८८ दुःखवर्जन–षोडशिका याने भिक्षा–षोडशिका
८९ दृष्टांत तत्व चतुर्विंशतिका याने सम्यक्त्वज्ञातानि
९० देवद्रव्य विचार याने देव-द्रव्य द्वात्रिंशिका
९१ देवस्तुति निर्णय याने देवता-स्तुति निर्णय
९२ द्रव्यबोध–त्रयोदशी
९३ दृष्टिसंमोह विचार
९४ द्वेषजयद्वादशिका
९५ धनार्जन–षोडशिका
९६ धर्मतत्व विचार
९७ धर्मदेशना (अपूर्ण)
९८ धर्मास्तिकायादि विचार
९९ धर्मोपदेश
१०० नक्षत्रभोगादि
१०१ नग्नाटशिक्षा शतक
१०२ नयविचार
१०३ नयविचार–द्वात्रिंशिका
१०४ नयषोडशिका
१०५ नयानुयोगाष्टक
१०६ नरतत्व व्याख्यान (अपूर्ण)
१०७ निक्षेपशतक
१०८ निर्जरादि
१०९ निर्याण याने निर्याण विचार
११० निषद्यैकादशिका याने निषद्या विचार
१११ निसर्गदर्शी
११२ न्यायपद्धति
११३ न्यायावतार दीपिका
११४ पद्मनाभस्तव
११५ परमाणु–पंचविंशतिका
११६ पर्युषणा–चत्वारिंशिका याने पर्युषणारूपम्

११७ पर्युषणा–परावृत्ति

११८ पर्युषणा–प्रभा (अपूर्ण)

११९ पर्वतिथि–प्रकरण

१२० पर्वतिथि–सूत्राणि

१२१ पर्वतिथि–सूत्राणि

१२२ पर्वविधान

१२३ पर्षदिकल्पवाचन याने पर्ष-
त्कल्पवाचन

१२४ पंचसूत्र तर्कावतार

१२५ पंचसूत्रवार्तिक

१२६ पंचसूत्री

१२७ पंचासरा पार्श्वनाथस्तव

१२८ पुरुषार्थ–जिज्ञासा

१२९ पोसीनापार्श्वनाथस्तव

१३० पौषध कर्तव्यता निर्णय याने
पौषध परामर्श

१३१ प्रकीर्णक–पद्यावली

१३२ प्रज्ञप्तपद–द्वात्रिंशिका

१३३ प्रतिदिवस–प्रतिनियतार्थ
विचारणादि याने पौषध
विमर्श

१३४ प्रतिमापूजा–द्वात्रिंशिका

१३५ प्रतिमा–शतक टिप्पण (अपूर्ण)

१३६ प्रमाणप्रमेय विचार

१३७ फलप्राप्तिरीति

१३८ बुद्धिगुण समुच्चयो

१३९ मध्यमसिद्धिप्रभा व्याकरण

१४० महानिशीथ लघु अवचूरि
(अपूर्ण)

१४१ महाव्रत विचार

१४२ मंगल–प्रकरण

१४३ मंगल–विचार

१४४ मंगलादि विचार

१४५ मासकल्पसिद्धि

१४६ मूर्तिमीमांसा

१४७ मूर्तिस्थापना

१४८ मोक्ष–पंचविंशतिका

१४९ मौनषट्त्रिंशिका

१५० यज्ञे हिंसाविचार

१५१ यथाभद्रक–धर्मसिद्धि

१५२ रात्रिभोजन परिहार

१५३ रात्रौ चैत्यगमन

१५४ लघुतम नामकोष

१५५ लघुसिद्ध प्रभाव्याकरण

१५६ लुंपक कौटिल्य

१५७ लोकवार्ता समुच्चय

१५८ लोकाचार

१५९ लोकोत्तर तत्व–द्वात्रिंशिका

१६० लोपकपाटिशिक्षा

१६१ वर्तमान तीर्थस्तव

१६२ वर्धापनिका

१६३ विधिविचार

१६४ विवाहचर्या याने विवाहविचार

१६५ विंशविंशिका दीपिका
भाग १ (प्रस्तावनाविंशिका)

१६६ विंशविंशिका दीपिका भा-२

१६७ विंशविंशिका दीपिका भा-३

१६८ वीतरागत्व विरोध–समाधान

१६९ वीरदेशना

१७० वीरविवाह विचार

१७१ वेसमाहप्प

१७२ व्यवहारपंचक

१७३ व्यवहारसिद्धि–षट्त्रिंशिका

१७४ व्यवहाराव्यवहारराशि
याने व्यवहार राशि

१७५ शमस्वरूप–पंचाशिका याने
शमनिर्णय

१७६ शरण–चतुष्क

१७७ शास्त्र वार्ता परिशिष्ट

१७८ शिक्षाक्रम

१७९ शिष्ट क्रिया याने शिष्टविचार

१८० शिष्य निष्फेटिका स्वरूप याने
शिष्य निष्फेटिका

१८१ शिष्य–शतकादि याने श्रुतस्तुति

१८२ श्रमणधर्म सहस्रो

१८३ श्रमण–श्राद्धदिनचर्या (अपूर्ण)

१८४ श्रमणो भगवान् महावीरः

१८५ श्रावण–षट्कृत्य वर्णन

१८६ श्रुतशील–चतुर्भंगी

१८७ षोडशकालोक (दो षोडशक
तक)

१८८ सचूल धर्माष्टक याने
चारित्र धर्माष्टक

१८९ सत्संग वर्णन

१९० सद्धर्माष्टक

१९१ समवसरण यंत्रक

१९२ समीपार्श्वनाथस्तव

१९३ सम्यक्त्वभेद तत्वाष्टत्रिंशिका
याने सम्यक्त्वभेद बिचार

१९४ सम्यक्त्वभेद निर्णय थाने
सम्यक्त्वभेद

१९५ सम्यक्त्व–षोडशिका

१९६ संघाचार

१९७ संहननानि
१९८ सल्लक्षणानि
१९९ सामायिकेर्यास्थान निर्णय
२०० सांवत्सरिक निर्णय
२०१ सिद्धगिरि महिमा
२०२ सिद्धगिरिराजाष्टक
२०३ सिद्धगिरिस्तव
२०४ सिद्धप्रभा व्याकरण
२०५ सिद्धप्राभृत व्याख्या (अपूर्ण)
२०६ सिद्धषट्त्रिंशिका
२०७ सियवाओ (अपूर्ण)
२०८ सुखदुःख वेदन
२०९ सूतक निर्णय पंचविंशतिका
२१० सूर्योदय सिद्धांत याने सूर्योदय विचार
२११ सौख्य-षोडशिका
२१२ स्तवनादि गुर्जरादि पद्य साहित्य
२१३ स्त्रीपूजा निर्णय
२१४ स्थापनार्चाद्वात्रिंशिका याने प्रतिमापूजा
२१५ स्थापना विचार याने प्रतिमाष्टक
२१६ स्थापनासिद्धि याने गुरुस्थापनाविधि
२१७ स्थापनासिद्धि-षष्टिका याने प्रतिमा पूजासिद्धि
२१८ स्थापनासिद्धि-षोडशिका
२१९ स्याद्वादद्वात्रिंशिका
२२० हरिभद्रसूरि समयदीपिका
२२१ हिंसकत्वाहिंसकत्वे याने अहिंसाविचार

*

आगमोद्धारक-कृतिसन्दोह

(मुद्रित)

१ तात्त्विक-विमर्श
२ पर्षत्कल्प-वाचनम्
३ अधिगम-सम्यक्त्वम्
४ पर्युषणा परावृत्तिः
५ अव्यवहार राशिः
६ संहननम्

७ क्षायोपशमिक भावः
८ अर्हच्छतकम्
९ उद्यम–पंचदशिका
१० क्रिया–द्वात्रिंशिका
११ अनुक्रम–पंचदशिका
१२ क्षमा–विंशतिका
१३ अहिंसा विचार
१४ आचेलक्यम्
१५ उपकार विचारः
१६ मिथ्यात्व विचार
१७ उत्सूत्र भाषण विमर्शः
१८ ज्ञान–पंचविंशतिका
१९ इर्यापथिका–निर्णय
२० सामायिकेर्यास्थान–निर्णय
२१ इर्यापथपरिशिष्टम्
२२ श्रुतशील–चतुर्भंगी
२३ चैत्यद्रव्योत्सर्पणम्
२४ देवायभंजकशिक्षा
२५ उत्सर्पशब्दार्थ विचारः
२६ देवनिर्याणमार्ग
२७ अचित्ताहार द्वात्रिंशिका
२८ पौषध परामर्शः
२९ पौषध परामर्शः
३० श्रमणो भगवान् महावीरः
३१ श्रीवीरविवाहविचार
३२ सल्लक्षणानि
३३ पर्युषणाप्रभा
३४ इर्या–द्वापंचाशिका
३५ जयसोम–सिक्खा
३६ दुष्प्रतिकार विचारः
३७ श्रमणधर्म सहस्रो
३८ सिद्धगिरिस्तवः
३९ मंगलादिविचारः
४० नयविचारः
४१ नय–षोडशिका
४२ निक्षेप–शतकम्
४३ लोकोत्तर तत्वद्वात्रिंशिका
४४ व्यवहार सिद्धि षट्त्रिंशिका
४५ कर्म फल–विचारः
४६ परमाणु–पंचविंशतिका
४७ भव्याभव्य प्रश्नः
४८ अष्टक–बिंदुः
४९ स्याद्वाद–द्वात्रिंशिका
५० अनंतार्थाष्टकम्
५१ पर्वविधानम्
५२ सूर्योदयसिद्धांतः

५३ सांवत्सरिक निर्णयः
५४ पर्युषणा रूपम्
५५ ज्ञात पर्युषणा
५६ श्रुतस्तुतिः
५७ ज्ञानभेद-षोडशिका
५८ अनानुगामुकावधिः
५९ प्रज्ञप्तपद-द्वात्रिंशिका
६० अनुयोग पृथक्त्वम्
६१ निषद्या विचारः
६२ सम्यक्त्व-षोडशिका
६३ सम्यक्त्व भेद विचार
६४ सम्यक्त्व भेदाः
६५ सम्यक्त्वज्ञातानि
६६ क्षायिक भवसंख्याविचारः
६७ शम निर्णयः
६८ प्रतिमापूजा-द्वात्रिंशिका
६९ प्रतिमापूजा
७० प्रतिमापूजासिद्धि
७१ प्रतिमाष्टकम्
७२ जिनवरस्तुतिः
७३ देवद्रव्य-द्वात्रिंशिका
७४ रात्रिचैत्यगमनम्
७५ देवतास्तुति निर्णयः
७६ गुरुस्थापनासिद्धिः
७७ दानधर्मः
७८ यथाभद्रकधर्मसिद्धिः
७९ धर्मोपदेशः
८० सम्यक्चारित्र धर्माष्टकम्
८१ मौन-षट्त्रिंशिका
८२ भिक्षा-षोडशकम्
८३ मासकल्पसिद्धिः
८४ वेसमाहप्प
८५ शिष्य निष्फेटिका
८६ क्रियास्थानवर्णनम्
८७ सदनुकरणम्
८८ शरण-चतुष्कम्
८९ मोक्ष-पंचविंशतिका
९० आर्यानार्य विचारः
९१ व्यवहार-पंचकम्
९२ लोकाचारः
९३ गुणग्रहण-शतकम्
९४ गर्ह्य कृत्यम्
९५ धनार्जनषोडशिका
९६ सूतकनिर्णय-पंचविंशतिका
९७ वर्धापनानि

९८ सत्संगवर्णनम्
९९ शिष्ट विचारः
१०० विवाद विचारः
१०१ पापभीतिः
१०२ रात्रिभोजन परिहारः
१०३ पंचासर–पार्श्वनाथस्तवः
१०४ जिनस्तुतिः
१०५ जिनस्तुतिः
१०६ इडरनग–शान्तिनाथस्तवः
१०७ पंचसूत्रवार्तिकम्
१०८ जैन–गीता
१०९ आगम–महिमा
११० मुनिवसन सिद्धिः
१११ श्रमण दिनचर्या
११२ जिनमहिमा
११३ कर्मसाम्राज्यम्
११४ गर्भापहारसिद्धि-षोडशिका
११५ नग्नाटशिक्षा-शतकम्
११६ त्रिपदी–पंचसप्ततिका
११७ गणधरसार्धशतकसमालोचना
११८ तीर्थपंचाशिका
११९ विद्वद्–षट्त्रिंशिका
१२० सिद्धगिरि–पंचविंशतिका
१२१ गिरनार–चतुर्विंशतिका
१२२ गणधरपट्ट–द्वात्रिंशिका
१२३ अनेकान्त वाद विचारः
१२४ अमृतसागर–गुणवर्णनम्
१२५ अमृतसागर–कृततीर्थयात्रा
१२६ अमृतसागर–स्तुत्यष्टकम्
१२७ अमृतसागर–स्तवः
१२८ पंचसूत्रतर्कावतारः
१२९ पंचसूत्री
१३० पुरुषार्थ–जिज्ञासा
१३१ कर्मार्थः (कर्मग्रन्थसूत्राणि)
१३२ पर्वविध्यानुष्ठानम्
१३३ तिथ्युपनिषद्
१३४ वाद–विवरणम्
१३५ तिथिदर्पणम्
१३६ युगमासतिथ्यादि विचारः
१३७ पर्वतिथिः
१३८ तात्त्विक–प्रश्नोत्तराणि
१३९ न्यायावतार–टीका
१४० लोक–विंशिका खंड १–२
१४१ अधिकार–विंशिकानी टीका
१४२ आगमधिकार–षट्त्रिंशिका

१४३ आगमस्तवः
१४४ आगममंदिर–चतुर्विंशतिका
१४५ अंगपुरुष–पंचविंशतिका
१४६ द्वेषजय–द्वादशिका
१४७ आगममहिमस्तवः
१४८ आगमसुगमतास्तवः
१४९ आगमसमिति स्थापनास्तवः
१५० आगमार्थ प्राधान्यस्तवः
१५१ जैनपूर्णत्वाष्टादशिका
१५२ द्रव्यबोधत्रयोदशी
१५३ सौख्य–षोडशिका
१५४ धर्मास्तिकायादि विचारः
१५५ अमालिमत खंडनम्
१५६ धर्मतत्व विचारः
१५७ सिद्धचक्रमंदिर–द्वात्रिंशिका
१५८ श्री जैनपुस्तकभाण्डागारस्तव
१५९ दृष्टिसंमोह विचारः
१६० विधिविचारः
१६१ लोपकपाटी शिक्षा
१६२ नयानुयोगाष्टकम्
१६३ चान्दनिकी–षोडशिका
१६४ आराधना मार्ग
१६५ स्थापनासिद्धि
१६६ मूर्तिस्थापनम्

*

श्री आगमोद्धारकश्री–संपादित ग्रंथ–सूचि

प्रताकारे

१ आचारांग चूर्णि
२ आचारांग सूत्र भाग १
३ आचारांग सूत्र भाग २
४ आचारांग सूत्र भाग १ नयी आवृत्ति
५ आचारांग सूत्र भाग २ नयी आवृत्ति
६ सूत्रकृतांग चूर्णि
७ सूत्रकृतांग सूत्र
८ स्थानांग सूत्र भाग १

९ स्थानांग सूत्र भाग २
१० समवायांग सूत्र
११ भगवती सूत्र भाग १
१२ भगवती सूत्र भाग २
१३ भगवती सूत्र भाग ३
१४ भगवती सूत्र भाग १
नयो आवृत्ति द्वि. आ.
१५ भगवती सूत्र भाग २
नयी आवृत्ति द्वि. आ.
१६ भगवती सूत्र भाग ३
नयी आवृत्ति द्वि. आ.
१७ भगवती सूत्र दानशेखरसूरि
१८ ज्ञाताधर्म कथा
१९ उपासक दशांग
२० अंतकृतदशा–नूत्तरोपपातिक
दशांग विपाक
२१ प्रश्न व्याकरण
२२ अंगाकारादि विषयानुक्रम
२३ उपांग–प्रकीर्णक विषयानुक्रम
२४ औपपातिक सूत्र
२५ राजप्रश्नीय सूत्र
२६ जीवाभिगमोपांग सूत्र
२७ प्रज्ञापनोपांग सूत्र भाग १
२८ प्रज्ञापनोपांग सूत्र भाग २
२९ प्रज्ञापनोपांग सूत्र
३० सूर्य प्रज्ञप्ति
३१ जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति भाग १
३२ जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति भाग २
३३ तंदुलवैयालिक चतुःशरण
३४ चतुशरणादि प्रकीर्णक दशांक
३५ गच्छाचार प्रकीर्णक
३६ कल्पसूत्र बारसा
३७ कल्पसूत्र वृत्ति
३८ कल्पसूत्र वृत्ति
३९ कल्पसूत्र वृत्ति
४० कल्पकौमुदी
४१ कल्प समर्थन
४२ आवश्यक चूर्णि भाग १
४३ आवश्यक चूर्णि भाग २
४४ आवश्यक सूत्र भाग १
४५ आवश्यक सूत्र भाग २
४६ आवश्यक सूत्र भाग ३
४७ आवश्यक सूत्र भाग ४
४८ आवश्यक सूत्र भाग १
मलयगिरिजी

४९ आवश्यक सूत्र भाग २
मलयगिरिजी
५० आवश्यक सूत्र भाग ३
मलयगिरिजी
५१ षडावश्यकसूत्राणि
५२ पाक्षिक सूत्र
५३ विशेषावश्यक भाग १
५४ विशेषावश्यक भाग २
५५ विशेषावश्यक गाथानामकारादि
५६ ओघनिर्युक्ति
५७ दशवैकालिक चूर्णि
५८ दशवैकालिक सूत्र
५९ पिंडनिर्युक्ति
६० उत्तराध्ययनानि चूर्णि
६१ उत्तराध्ययन सूत्र भाग १
शांतिसूरि
६२ उत्तराध्ययन सूत्र भाग २
शांतिसूरि
६३ उत्तराध्ययन सूत्र भाग ३
शांतिसूरि
६४ नंदीसूत्र चूर्णि टीका,
६५ नंदीसूत्र
६६ नंदादिगाथाकारादि
६७ अनुयोगद्वाराणि चूर्णि टीका
६८ अनुयोगद्वार सूत्र भाग १
६९ अनुयोगद्वार सूत्र भाग २
७० अनुयोगद्वार सूत्र
७१ आगमीयसूक्तावल्यादि
७२ अध्यात्ममत परीक्षा
७३ अध्यात्मकल्पद्रुम
७४ आचारप्रदीप
७५ ईर्यापथिकी आदि
७६ उत्पादादिसिद्धि
७७ उपदेश माला
७८ उपदेश माला
७९ उपमितिभवप्रपंचकथा
भाग १
८० उपमितिभवप्रपंचकथा
भाग २
८१ ऋषिभाषितसूत्राणि
८२ कथा कोष
८३ कर्मग्रंथ भाग १
८४ कर्मग्रंथ भाग २
८५ कर्मप्रकृति
८६ कृष्ण चरित्र
८७ गुणस्थानकक्रमारोह

८८ छंदोनुशासन
८९ जल्पकल्पलता
९० जीवसमास प्रकरण
९१ ज्योतिष्करंडक प्रकीर्णक
९२ तत्त्वतरंगिणी
९३ तत्त्वार्थ सूत्र
९४ तत्त्वार्थ सूत्र
९५ तिथि हानि वृद्धि विचार
९६ त्रिषष्टीयदेशनादिसंग्रह
९७ त्रैविद्यगोष्ठी
९८ देववंदन भाष्य
९९ धर्मकल्पद्रुम
१०० धर्मबिन्दु
१०१ धर्मपरीक्षा कथा
१०२ धर्मसंग्रह भाग १
१०३ धर्मसंग्रह भाग २
१०४ नवपद प्रकरण
१०५ नवपद प्रकरण
१०६ नमस्कार माहात्म्य
१०७ नवस्मरणानि गौतमरास क्षामणाकुलकम्
१०८ पंचवस्तुक ग्रंथ
१०९ पंचसंग्रह
११० पंचाशकाकारादिक्रम
१११ पंचाशकाकारादि मूल
११२ पंचाशक
११३ पंचाशक
११४ पयरणसंदोह
११५ परिणाम माला
११६ परिणाम माला
११७ पर्युषणा दशशतक
११८ पर्युषणाष्टाह्निका व्याख्यान
११९ प्रकरण समुच्चय
१२० प्रत्याख्यानादि
१२१ प्रवचन परीक्षा भाग १
१२२ प्रवचन परीक्षा भाग २
१२३ प्रवचन सारोद्धार भाग १
१२४ प्रवचन सारोद्धार भाग २
१२५ प्रव्रज्याविधान कुलक
१२६ प्रशमरति प्रकरण
१२७ सेनप्रश्न
१२८ बुद्धिसागर
१२९ भवभावना भाग १
१३० भवभावना भाग २
१३१ भवभावना छाया
१३२ मध्यमसिद्धप्रभा व्याकरण

१३३ मलयासुंदरी चरित्र
१३४ महावीर चरियम्
१३५ यतिदिनचर्या
१३६ यशोविजयजी कृत ग्रंथमाला
१३७ युक्तिप्रबोध
१३८ ललितविस्तरा
१३९ ललितविस्तरा
१४० लोकप्रकाश भाग १
१४१ लोकप्रकाश भाग २
१४२ लोकप्रकाश भाग ३
१४३ लोकप्रकाश भाग ४
१४४ वंदारुवृत्ति
१४५ वंदारुवृत्ति
१४६ विचारामृतसार संग्रह
१४७ विचारामृतसार संग्रह
१४८ वीतराग स्तोत्र
१४९ शास्त्रवार्तासमुच्चय
१५० श्राद्धदिनकृत्य भाग १
१५१ श्राद्धदिनकृत्य भाग २
१५२ श्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र
१५३ श्रीपाल चरित्र प्राकृत
१५४ श्रीपाल चरित्र संस्कृत
१५५ श्रावक धर्म देशना
१५६ श्रेणिक चरित्र
१५७ षट्पुरुष चरित्र
१५८ षोडशक प्रकरण
१५९ संसर्ग गुणदोषप्रकाश
१६० संस्कृत प्राचीन प्रकरणादि
१६१ सम्यक्त्व परीक्षा उपदेशशतक
१६२ सवासो आदि स्तवनो
१६३ साधर्मिकवात्सल्यप्रकाश
१६४ सामाचारी प्रकरण
१६५ सिद्धप्रभा व्याकरण
१६६ सिद्धसेनदिवाकरकृतग्रंथमाला
१६७ सूक्तमुक्तावली
१६८ सुबोधा समाचारी
१६९ स्तोत्ररत्नाकर भाग १
१७० स्थूलभद्र चरित्र
१७१ स्याद्वाद भाषा
१७२ स्वाध्यायप्रकाश
१७३ हिंसाष्टकादि

पू० आगमोद्धारकश्री द्वारा वर्गीकृत

आगमिक ५३ विषय

आगमों की महत्ता समझने वाले विद्वानों की दृष्टि में आगम तथा उन के आधार पर रचित प्रौढ़ कृतियाँ सर्वस्व के समान हैं। उन्हें आगमों का अन्यान्य दृष्टिकोण से अवलोकन करने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पूज्यश्री ने आगमिक साहित्य सम्बन्धी निम्नलिखित ५३ विषयों पर विचार कर सुव्यवस्थित ढंग से लिखा है :—

१ विषयोंका विस्तृत अनुक्रम
२ अधिकारों का (विषयोंका) संक्षिप्त अनुक्रम
३ विशेष उपयोगी
४ विशिष्टताएँ
५ साक्षीभूत अवतरणोंका अकारादिक्रम
६ वाद
७ लक्षण तथा दूषण
८ विशेष नाम
९ इतिहास
१० भूगोल
११ ज्योतिष
१२ ग्रन्थकारके समयमें प्रचलित मत
१३ व्याकरण
१४ छंद विचार
१५ अलंकार
१६ न्याय
१७ साक्षीभूत ग्रंथ
१८ विवेचन (उपोद्घात) तथा प्रशस्ति
१९ आचार्यों के नाम
२० प्राचीन मत
२१ विभिन्न मतों का समाधान
२२ सूक्तावली (पद्यात्मक)
२३ राजकीय
२४ प्रज्ञाप्य
२५ लोकोक्ति

२६ व्याख्यांतर (अन्य व्याख्याएँ)
२७ खंडन पक्ष
२८ पाठांतर
२९ प्रस्तावना (अतिदेश)
३० सूत्रादि का अकारादिक्रम
३१ शंका तथा समाधान (प्रश्नोत्तर)
३२ कठिन (शब्दोंके) अर्थ
३३ सुभाषित वाक्य (गद्यात्मक)
३४ निक्षेप संग्रह
३५ वायु तथा वृष्टि
३६ समानार्थी शब्दोंके अर्थ
३७ विभिन्नगच्छ तथा पट्टावली
३८ दृष्टांत
३९ संप्रदाय
४० वैद्यक
४१ नय
४२ स्थापना (संस्थानादि की)
४३ विधि
४४ एकार्थिक शब्द
४५ अल्पबहुत्व
४६ अनुमान
४७ संकलना
४८ प्रत्येकबुद्धोंकेनाम
४९ विसंवाद
५० संग्रह श्लोक
५१ स्थलनिर्देश
५२ सामुद्रिक
५३ निसीह के भास की गाथाओंके आद्यपद तथा उनके अधिकारों का (विषयोंका) अनुक्रम

इनके अतिरिक्त व्याख्याताने आगमकोश रचा है। आगमोंमें प्रयुक्त शब्द तथा टीकाकारों द्वारा किये शब्दार्थ इसमें दिये गये हैं। इस ग्रंथ 'अल्पपरिचित सिद्धांतिक शब्दकोश' को चार भागोंमें मुद्रित किया गया है।

आचार्यदेवेश पूज्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी कृत

—: आगमिक संपादित कृतियाँ :—

अंगानि

	संवत्
१ आचारांग चूर्णि	१९९८
२ आचारांग सटीक	१९७२
३ सूत्रकृतांग चूर्णि	१९९८
४ सूत्रकृतांग सटीक	१९७३
५ स्थानांग सटीक	१९७५
६ समवायांग सटीक	१९७४
७ भगवती सटीक(अभय)	१९७४
८ भगवती टीका (दानशेखर)	१९९२
९ ज्ञाताधर्मकथा	१९७५
१० उपासक सटीक	१९७६
११ अंतगड—अनुत्तर—विपाक सटीक	१९७६
१२ प्रश्नव्याकरण सटीक	१९७५
१३ अंग अकारादि	१९९३

*

उपांगानि

	संवत्
१ औपपातिक सटीक	१९७२
२ राजप्रश्नीय सटीक	१९८१
३ जीवाजीवाभिगम सटीक	१९७५
४ प्रज्ञापना सटीक (मलय.)	१९७४
५ प्रज्ञापना सटीक (हारि.)	२००३
६ सूर्यप्रज्ञप्ति सटीक	१९७६
७ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक	१९६७
८ उपांग प्रकीर्णक विषयानुक्रमादि	२००५

पयन्ना

	संवत्		संवत्
१ तंदुलवैचारिक सटीक चतुःशरण सावचूरिक	१९७८	२ चतुःशरणादि मरण-समाध्यन्त प्रकीर्ण-दशक	१९८३
		३ गच्छाचार प्रकीर्ण सटीक	१९८०

मूलसूत्राणि

	संवत्		संवत्
१ आवश्यक सटीक (हारि·)	१९७२	१२ उत्तराध्ययन सटीक	१९७२
२ आवश्यक सटीक (मलय०)	१९८४	१३ नंदीसूत्र चूर्णि नंदीसूत्र वृत्ति (हारि)	१९८४
३ आवश्यक चूर्णि	१९८४	१४ नंदीसूत्र सटीक	१९८०
४ षडावश्यक सूत्राणि	१९९२	१५ अनुयोगद्वार चूर्णि अनुयोगद्वार वृत्ति (हारि.)	१९८४
५ पाक्षिक सूत्र	१९९७	१६ अनुयोगद्वार सटीक	१९७२
६ विशेषावश्यक (को०)	१९९३	१७ नंद्याद्यकारादि	१९८४
७ ओघनिर्युक्ति सटीक	१९७५	१८ आगमीय सूक्तावल्यादि	२००५
८ दशवैकालिक चूर्णि	१९८९		
९ दशवैकालिक सटीक	१९७४		
१० पिंडनिर्युक्ति सटीक	१९७४		
११ उत्तराध्ययन चूर्णि	१९८९		

आगमरत्न-मंजूषा (४५ आगम मूलनिर्युक्ति सहित) १९९९

श्री जैन आगमोदय समिति की स्थापना

पाटन—विक्रम संवत् १९७१ भाद्रपद शुक्ला १०–११, शनि, रवि।

इस अत्युत्तम और उपयोगी संस्था की स्थापना तो पंन्यासजीश्री आनन्दसागरजी, पं० मेघविजयजी, पं० मणिविजयजी आदि अनेक मुनिराजों की सम्मति से उनकी उपस्थिति में गत माघ सुदी १० को श्री भोयणी तीर्थ में की गई थी; परन्तु उसकी आधुनिक काल के अनुसार कमिटी आदि की व्यवस्था अनेक कारणों से तुरन्त नहीं हो सकी थी, सो भादों सुदी १०–११ इन दो दिनों में श्री पाटन में मिल कर की गई है।

विक्रम संवत् १९७१ माघ सुदी १० से उपर्युक्त समिति के कार्य का प्रारंभ किया गया है। समिति के निम्नलिखित दो मुख्य कार्य निर्धारित किये गये हैं :–

(१) जैनागम–पंचांगी सहित–मुनिराज से शुद्ध करवा कर श्रेष्ठ कागज पर सुन्दर टाइप में छपाने की व्यवस्था करना।

(२) आगम के बोधवाले विद्वान् मुनिराज से जैनागम की वाचना अनेक मुनिराज ले सकें ऐसी योजना करना।

उपरिलिखित दोनों कार्यों में से प्रथम कार्य के लिए पंन्यासजी आनन्दसागरजी की देखरेख में आगमों की टीका सहित शुद्ध प्रेस कॉपी बनवाने का कार्य शुरू होने पर उसे छपाने के लिए निर्णय सागर प्रेस में प्रबन्ध किया। उस के लिए खास ऑर्डर से श्रेष्ठ कागज मँगवा कर उस पर मुद्रण शुरू किया गया है।

फिलहाल समिति की ओर से **श्री आवश्यकसूत्र** हारिभद्रीय टीका सहित और **श्री आचारांगसूत्र** शीलांकाचार्यकृत टीका सहित

छप रहे हैं। सेठ देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फंड की ओर से **श्री अनुयोगद्वारसूत्र** और श्री उत्तराध्ययन सूत्र टीका सहित छपाने की व्यवस्था की गई है। उक्त चारों सूत्रों के कुछ फर्में छप चुके हैं। तदुपरांत **श्री उववाइसूत्र** की प्रेस कॉपी तैयार हो गई है, **श्री पिंडनिर्युक्ति** की तैयार हो रही है और अन्य सूत्रों के लिए भी प्रयत्न जारी है।

इस कार्य के लिए सेठ वेणीचंद सुरचंद के प्रयासों से आर्थिक सहायता प्राप्त करना भी शुरू किया गया है, और उस में भी अच्छी रकम प्राप्त हुई है। आगे प्रयत्न जारी है।

द्वितीय कार्य के लिए स्थान श्री पाटण निश्चित कर गत वैशाख वदी ६ से वाचना का कार्य प्रारंभ किया गया है। पंन्यासजी आनन्दसागरजी वाचना देते हैं, और तीस मुनिराज तथा दस साध्वियाँ उसका लाभ ले रहे हैं। दो बार दो दो घंटे वाचना चलती है। सुबह **श्री दशवैकालिक** हारिभद्रीय टीका की वाचना चलती थी सो अब पूर्ण हो गई है। अतः दोपहर को चलती हुई सूत्रकृतांग सूत्र की वाचना अब दोनों जून चलती है। चातुर्मास समाप्ति तक उसके पूर्ण होने की संभावना है।

विक्रम संवत् १९७१ के भाद्रपद सुदी १० और ११ को *जो मीटिंग हुई थी उस में समिति के सुव्यवस्थित संचालन* के लिए एक जनरल कमिटी नियुक्त की गई है, मंत्रियों की नियुक्ति की गई है और समिति सम्बन्धी नियम पास किये गये हैं। इस का सारा विवरण उपर्युक्त समिति की ओर से छप कर प्रकाशित होनेवाला है।

यह कार्य अत्युत्तम और हर प्रकार से सहायता देने योग्य है। पूर्वकाल में विद्यमान आगमवाचना की उत्तम शैली का इससे पता लगता है। साथ ही आगमों की अशुद्ध प्रतियों को शुद्ध करने का और एक प्रति शुद्ध होने के बाद उसकी जितनी प्रतियाँ छपाई जाएँ उन्हें लेनेवाले सब को यह लाभ प्राप्त होने का यह शुभ प्रसंग है।

उत्तम जीवों के लिए दोनों कार्यों के सम्बन्ध में अपने तन-मन-धन से लाभ लेना योग्य है। उक्त कार्यों में हमारी हार्दिक सहानुभूति है।

श्री पालीताना में इस शुभ दिन को पूज्य आचार्य श्री आनंदसागरसूरिजी के स्वामित्व में आगम वाचना का प्रारंभ हुआ है। अभी प्रारंभ में श्री ओघनिर्युक्ति और पिंडनिर्युक्ति की वाचना शुरू की गई है। ये दो सूत्र पूर्ण होने के बाद चातुर्मास में श्री भगवती सूत्र की वाचना होगी, जो लगभग चातुर्मास के अन्त तक चलेगी। यह वाचना सुबह शाम दो बार करीब पाँच घंटे चलती है। आचार्यश्री सूत्र पढ़ते हैं और वाचना में भाग लेनेवाले भीतर ही भीतर उसका मनन कर लेते हैं। वाचना का दृश्य सचमुच दर्शनीय-आकर्षक है। वाचना में भाग लेने के लिए पं. मणिविजयजी आदि बहुत से गुणी मुनि महाराजा पालीताना में चातुर्मास करनेवाले हैं। पालीताना में इस बार चातुर्मास में मुनि महाराजों और साध्वियों की अच्छी खासी संख्या होगी ऐसी हमारी धारणा है। हमारा अनुमान है कि इस शुभ प्रसंग का लाभ पाने वाचना में भाग लेने और सुपात्र दान का आनन्द लूटने के लिए धनवान जैन बंधु बड़ी संख्या में पालीताना चातुर्मास करने आएँगे।

इस समय श्री सिद्धाचल तीर्थ में अनेक साधु साध्वी चातुर्मास के लिए रहे हुए हैं। श्रीमान् आनन्दसागरसूरिजी उन सब को श्री भगवतीजी और प्रज्ञापना इन दोनें महान् सूत्रों की वाचना अप्रतिम लाभ हररोज चार घंटों तक देते हैं। सुज्ञ मुनिमहाराज और कतिपय सुज्ञ साध्वियाँ उसका अविच्छिन्न लाभ लेते हैं। श्रावक श्राविकाएँ भी जो इस अपूर्व वाचना का एवं मुनिदान आदि का लाभ लेने के लिए वहाँ चातुर्मास रह रहे हैं, वाचना सुनने बैठते हैं। श्रावक वर्ग के सूत्र–श्रवण करने का ही अधिकार होने के कारण कोई श्रावक श्राविका उन सूत्रों की प्रति हाथ में रख कर पढते नहीं परन्तु एकाग्रचित्त से श्रवण करते है। उस में भी कम लाभ नहीं है। हमने भी थोडे थोडे दिन वहाँ रह कर इस तरह अपूर्व लाभ प्राप्त किया है। हमें तो यह चौथे आरे की अथवा पाँचवे आरे के प्रथम भाग की बानगी प्रतीत होती है। ऐसा प्रसंग न तो हमने देखा है न पिछले सौ वर्षों में हुआ सुना है। हम चतुर्विध संघ से यह अपूर्व लाभ लेने के लिए सविनय प्रार्थना करते हैं।

हमें प्राप्त समाचार के अनुसार पालीताना में ये पर्व के दिन बहुत ही आनन्द–पूर्वक शासन की शोभा में अत्यधिक वृद्धि हो इस तरह अनेक प्रकार की तपस्याओं–प्रभावनाओं सहित व्यतीत हुए हैं। आचार्य श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी ने इस चातुर्मास की वाचना पालीताने में रखी है। इस लिए बहुत से मुनिराजों और साध्वियों ने इस क्षेत्र में वास किया है। वाचना का कार्य बहुत सुचारु रूप से चल रहा है। वाचना में अभी भगवतीजी तथा पन्नवणाजी पढ़े जाते हैं। वाचना का दृश्य आकर्षक, आह्लादजनक, और प्राचीनकाल की स्मृति करानेवाला है। अनेक मुनि महात्मा

एकत्र हो कर चर्चा करते हैं। इस प्रकार साधु समुदाय के प्रसंग के कारण पर्यूषण पर पालीताना में श्रावक बन्धुओं की अच्छी खासी संख्या उपस्थित थी। बहुत से सज्जन चातुर्मास करने आये हैं, और पर्यूषण करने भी बहुत से सज्जन आये थे। इस शुभ प्रसंग पर पालीताना में सोने चाँदी का रथ आने पर उसके प्रवेश महोत्सव में पालने और सपनों के घी आदि की बहुत अच्छी आय हुई थी। सेठ नगीनचंद कपूरचंद झवेरी की धर्मपत्नी रुक्मिणी बहन की ओर से कल्पधर के रोज व्याख्यान में रुपये की प्रभावना हुई थी और बाबूसाहब जीवनलालजीने रु १००१ से कल्पसूत्र वहोराया था। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी प्रभावनाएँ थीं।

एक साध्वीजीने दे मास के उपवास किये थे। इसके अतिरिक्त पैंतीस उपवासवाले १, एक मास के उपवास वाले २०, पन्द्रह और उससे अधिक उपवासवाले १०५, अट्ठाई और उससे अधिकवाले १७१ व्यक्ति—इतनी तपस्याएँ हुई थीं। सेठ पोपटलाल धारसीभाइ जामनगरवाले यहाँ चातुर्मास रहे हुए हैं और बहुत उदारता पूर्वक द्रव्य व्यय करते हैं। उनकी ओर से पारणे के दिन सब साधर्मिक बन्धुओं को पारणा कराया गया था और तपस्वियों की यथोचित भक्ति की गई थी। धन-प्राप्ति का यह सद्व्यय है। समयानुकूल धनव्यय करने की इच्छा प्रकट करनेवाले बन्धुगण पालीताना क्षेत्रमें जो उदारता पूर्वक धनव्यय हुआ उसका वृतान्त सुनकर आश्चर्यचकित हो जाएँ यह संभव है। सभी मार्गों में धन व्यय उत्तम है इच्छानुसार उत्तम मार्ग में धन व्यय करनेवाले की सर्वदा प्रशंसा होती है। धन व्यय करने का जो उपदेश देता है परन्तु अपने पास का धन खर्च नहीं करता, ममता—मूर्च्छा का त्याग नहीं करता उसकी अपेक्षा धन व्यय कर के अपनी प्राप्त सम्पत्ति का आनंद लेनेवाला बहुत श्रेष्ठ और प्रशंसापात्र है। इच्छा की वृद्धि हो उस तरह समयानुसार धन खर्च करने का हम सभी बन्धुओं को सुझाव देते हैं।

विक्रम संवत् १९७६

[illegible]

શ્રી ... સાગર સૂરીશ્વરજી મહારાજ શ્રી ...

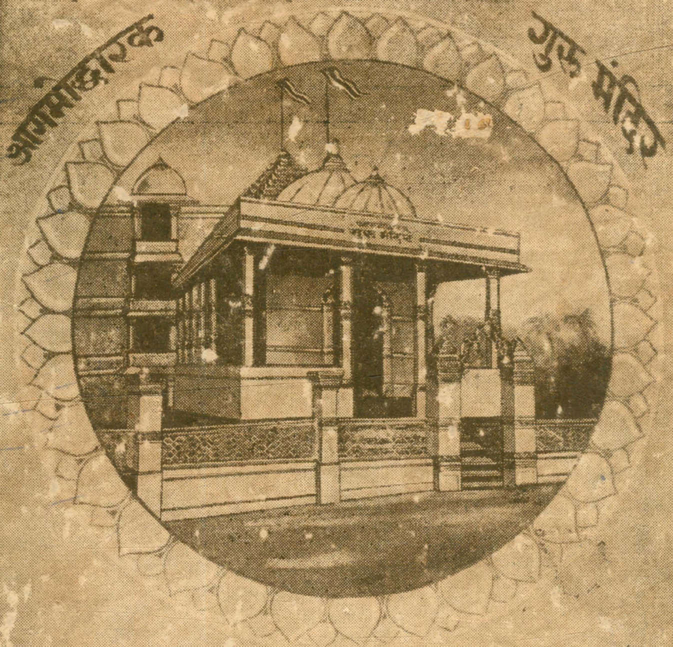

પરમ પૂજ્ય આગમોદ્ધારક આચાર્યદેવશ્રી આનંદસાગર સૂરીશ્વરજી મહારાજના શિષ્યરત્ન મુનિરાજ શ્રી
અભ્યુદયસાગરજી મહારાજના ઉપદેશથી
ઝવેરી હઠીસીંગ ગોપાલજીના ધર્મપત્ની દયાકોરબેન તરફથી ભેટ ...